* श्रीराधावल्लभो जयति *

* श्रीहित हरिवंशचन्द्रो जयति *

श्रीराधासुधानिधि
में
निकुंजलीलायुक्त भावनाओं का चिन्तन

सङ्कलनकर्ता :
राजवैद्य लक्ष्मीनारायण

चतुर्थ प्रकरण

* श्री जी *

।। श्रीराधावल्लभोजयति ।।

रसिक अनन्यनि मुख्य गुरु वंशी अवतार
१००८ श्री हरिवंश महाप्रभु
विरचित

श्री राधा-सुधा-निधि
में
निकुंज लीलायुक्त भावनाओं का चिंतन

सङ्कलनकर्ता

श्री राधाचरणारविन्द परागसेवी भक्तवृन्दजन दासानुदास

वैद्य लक्ष्मीनारायण

प्रेमगली, वृन्दावन

चतुर्थ प्रकरण

प्रकाशक
राजवैद्य लक्ष्मीनारायण
प्रेमगली पुराना शहर
वृन्दावन

प्रथम संस्करण
५०० प्रति

मुद्रक
प्रीतमलाल गोस्वामी
रतनप्रेस अठखंभा
वृन्दावन

न्योछावर
केवल प्रेम

निवेदन

हों निज सखियन की बलिहारी।
युगल प्रीति अरु रूप जिनके जीवन यह सुधारि।
नेननि मग ह्वै पान करत दिन तिहिं रस रहें लीन।
सहिन सकत पल पलकन अंतर जैसे जलतें मीन।।
छिन छिन नवल प्रिया सुख चाहत और न मन कुछ भावत।।
हित ध्रुव जिहिं विधि रूचि प्यारी मन तिहिं तिहिं भांति लड़ावत।।
सखियनि को सुख कहा कहों मेरी मति इति नांहि।
यह रस उनकी कृपाते, जो रहै ध्रुव मन मांहि।।
भाग पाई ठहराहि जो, यह रस पारो प्रेम,
ताके उर झलकत रहै, गौर नील मनि हेम।
मेरी मति तो कौन है यह रस परस्यो जाई,
एक लाड़लीलाल की शक्ति लेत बनाई।

जीव के लिये मानव शरीर की क्षणभंगुरता का संकेत

कुंडलिया—बहुबीती थोड़ी रही सोऊ बीती जाई।
हित ध्रुव वेगि विचारि के बसि बृन्दावन आई।।
बसि वृन्दावन आइ लाजतजि के अभिमाने।
प्रेम लीन ह्वै दीन आपकों तृनसम जाने।।
सकल भजन को सार सार तू गहि रस रीति।
रे मन देखुविचारि रही कछु इक बहु बीति।।

सहचरिगण केवल श्याम श्यामा के प्रेम में आसक्त हैं उनको नेम (काम-चेष्टाएँ आदि) स्पर्श नहीं करते। ये तो केवल उनको सुखी देखना चाहती हैं, अपना सुख स्वप्नमें भी नहीं चाहतीं।

'अटकी है निजु प्रेम रस परसत तिनही न नेम'

दोहा—भजन न होई संग विनु, भजन विना नहिं प्रेम।
छिनहू भजन न छांडिये, धरिये ध्रुव यह नेम ।।
भजन न करे निमित्त ले, परे सहज रस ढार।
जैसे रोकी रुकत नहीं, प्रबल नदी की धार ।।
रे मन अरु सब छांडिके जो अटके इक ठौर।
वृन्दावन घनकुंज में, जहां रसिक शिरमोर ।।
रे मन अलि तू छुवे जिन, विषय सुमन शठ मंद।
युगल चरन अरविंदको, करहि पान मकरंद ।।
विषय चुगा जिन चुगै मन चुगत कछुक सुख होई।
फिर फांसी ऐसी परै तेहि सम दुःख न कोई।

सोरठा—चलत रहो दिन रैन, प्रेम वारि धारा नयन।
जाग्रत अरु सुख सैन, चितै चितै दोउ कुंवर छवि ।।

इस श्रीराधा-सुधा-निधि रसग्रंथकी पूर्ति १६ षोड़श प्रकरणों में हुई है। जिन लीलाओं का साक्षात्कार प्रत्यक्ष व मानसिक में भगवत् भक्तजन तथा श्री आचार्य चरणों ने प्राप्त किया है एवं गान किया है वही लालाएँ यहाँ लिखी गई हैं। मनगढ़न्त व कपोल कल्पित इसमें ग्रहीत नहीं हुई हैं।

श्रीमहात्मा रतनदास के शब्दोंमें—

रसिक जनोंसे विनती, सुनियो परम सुजान।
मेरी कछु न मानियो, पायो कृपा प्रसाद ।।
अपनी वस्तु जानिके, लीजो आप अपनाय।
न्यूनाधिक विधि अविधि जो कहि कहि जाय ।।

संवत् २०२२
माघ शु०, वसंत पञ्चमी।

दासानुदास
वैद्य लक्ष्मीनारायण

प्रस्तावना

तृतीय प्रकरण में श्री राधासुधानिधि ग्रन्थ के प्रथम से पाँचवें श्लोक तक की विस्तृत व्याख्या हुई। अब छटे श्लोक "तन्नः प्रतिक्षण चमत्कृत" से व्याख्या चतुर्थ प्रकरण (चतुर्थ खंड में आरम्भ हुई है इस ग्रन्थ में श्लोकों के पदच्छेद अन्वय अर्थ (संस्कृत हिन्दी) भाषा में वर्णित हैं और साथ साथ निकुञ्जों की लीला एवं रसिक भक्तों की जीवन घटनाएं जिनमें श्री वृन्दावनेश्वरी की कृपा प्राप्त हुई है तथा कृपा प्राप्त महापुरुषों के पद जिनमें श्री प्रिया प्रीतम का विहार वर्णित है लिखे हैं।

श्री वृज वृन्दावन में रसिक जिज्ञासु तथा साधक भक्तों को भक्ति वर्द्धनार्थ तथा प्रेम वर्द्धनार्थ ब्रजरज और लता मंडल के साथ ही रसिक आचार्य और भक्तों के पद (जो ब्रज की अद्भुत रसरीति और वृन्दावन के अद्भुत अनुपम प्रेम प्यार को समझाने के लिये यहाँ के (ब्रज के) बड़े बड़े रसिक महानुभावों के पद) ही एक मात्र आधार हैं इन पदों ने ही वृन्दावन (ब्रज भूमि को हरी-भरी बना रक्खी है और इन्हीं का श्रवण करके आज भी अनेक संतों के मन, बुद्धि, अन्तःकरण शीतल हो रहे हैं। यहाँ वृन्दावन में आचार्य महाप्रभु श्री हित हरिवंशजी महाराज के भी पदों ने अनेक संसारी जीवों को महापुरुष बना दिया है उनमें से स्वनाम धन्य श्री सेवक जी महाराज (गढहा के श्री दामोदर दास जी महाराज ओरछा के राजगुरु श्री हरिराम जी(व्यास)महाराज जैसे साधारण गृहस्थी भी लोकातीत महापुरुष हो गये हैं यह राधा सुधानिधि ग्रन्थ संस्कृत भाषा का पद्यात्मक ग्रन्थ है महा पुरुष के पदही हैं इन पदों से परात्पर श्री कृष्ण सच्चिदानन्द को परदेवता श्री-

वृन्दावनेश्वरी राधा की कृपा निश्चित ही होती है यह परम पावन ग्रन्थ श्री हित महाप्रभु गुरुदेव की कृपा स्वरूप ही है इसलिये भगवान को प्राप्त करने की चाह वालों को उन महापुरुषों तथा उन रसिक भक्तों के चरणों का आश्रय (संग) करना ही चाहिये जो रात दिन श्री श्यामा श्याम के चरणारविंदों का संग करने वाले दृढ रसिक भक्त हैं। यही बात श्री हरिराम व्यास जूको श्री हित महाप्रभु ने आज्ञा की थी—

'हित हरिवंश प्रपंच बंच सब काल व्याल को खायो'

'यह जिय जान श्याम-श्यामा पद कमलसंगी शिरनायो'

यह यथार्थ ही है कि, यह सब प्रपंच (संसार) तो जीव को ठगने वाला ही है और नाशवान है। इसमें तो कोई भी बुद्धिमान मनुष्य अपना पूरा मन लगाय ही नहीं सकेगा तो फिर इस मन को कहाँ लगाना चाहिये।

'यह जिय जान श्याम-श्यामा पद कमल संगी सिर नायो'

इस को तत्व रूप (यथार्थ) समझकर 'श्री हिताचार्य आज्ञा करते हैं उन्हीं श्यामा श्याम के चरण कमलन को रात्रि दिन संग करने वाले रसिक भक्तों को मैं प्रणाम करता हूँ।

इस महा उपदेशामृत वाक्य जो महाप्रभुजी ने गाया है उसका सार अर्थ यही है कि इस एक अपने मन को जगत के सब विषयों से हटाकर एक मात्र रसिक भक्तों के चरणों में लगा देना चाहिये तब ही अविराम (नित्य निरंतर सुख) को पा सकेगा। श्री श्यामा श्याम के चरण कमलों में इस मन को न लगाकर भक्तों के चरणों में लगाना क्यों कहा। इसलिये कहा है कि वस्तुतः भगवान हैं इस बात को विवाद और शंका रहित सिद्ध करने वाला कोई भी ग्रन्थ नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि ऐसा ग्रन्थ रचाभी नहीं जा सकता है। यह निर्णय विद्वानों की बुद्धिअगम्य है। क्योंकि ईश्वर मन वाणी के परे का तत्व है अतः वर्णा-नातीत ही है अर्थात मन वाणी से परे है और सब ही ग्रन्थ तो मन

वाणी ही के विलास हैं अतः ईश्वर प्राप्ति इनसे अप्राप्य ही है । ये ग्रन्थ केवल भगवान की 'ईश्वर की' सत्ता ही का संकेत मात्र कर सकते हैं ये ईश्वर को प्रत्यक्ष नहीं करा सकते हैं । ईश्वर को प्रत्यक्ष रूप से प्रकट कराने वाले केवल भक्त गण ही हैं । ऐसे ही भक्त भगवान के प्रकट प्रमाण होते हैं और उन्ही में भगवान की मन मोहिनी छबि के दर्शन भी होते हैं । इसलिये भक्तों को नमस्कार इस पद में श्री हित महाप्रभु ने गाकर बताया है । रसिक भक्त सदा सर्वत्र प्राप्त नहीं होते हैं उनके अनुभव स्वरूप पद ही ईश्वर का प्रेम और साक्षात्कार कराने के अमोघ साधन हैं । श्री हित महाप्रभु के पदों ही से श्री सेवक जी महाराज और श्री व्यास 'श्री हरिराम' जी कल्प वृक्ष के समान भक्ति-रस में साक्षात कल्प वृक्ष ही हैं ।

परम पावन रसिक मण्डली मण्डन श्री हित महा भु इस जगत् के लिये साक्षात भगवान् ही के स्वरूप भगवान ही हैं श्री हित महाप्रभु सारा सार विवेकत कोविद बहु गुणी व्यास जी का हृदय कह गया कि वेदों का सारभूत भगवत प्रिय उज्वल प्रेम रूप भजन के दाता अनन्त गुणालंकार विभूषित हैं 'हरि गुरु भेद न होई' भगवान और गुरु में भेद है ही नहीं सेवकजी भी श्री हित महाप्रभु और हरि 'भगवान्'में भेद ही नहीं बताते हैं जिन्होंने ईश्वर को साक्षात कर दिखाया और दिखाया अपने ही स्वरूप में श्री सेवक जी महाराज ने श्री गुरुदेव में ही "श्री-हरिवंशजी ही में" गोद में खेलते हुए श्री श्यामा-श्याम को प्रत्यक्ष किया अर्थात अपने गुरुदेव ही में प्राणनाथ श्री श्यामा-श्याम को पाया अतः श्री हरिवंश ही साक्षात ईश्वर हैं ऐसा दुन्दुभी बजाकर कहा इसी के अनुरूप अनेकों रसिक राधाबल्लभीय भक्तों ने भी पाया अतः भावुक भक्त अपने आचार्य गुरुदेव तथा संतों में ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन पाते हैं । सेवक जी की तरह अपने २ गुरुदेव आचार्यों में ईश्वर की प्राप्ति करते हैं की हैं और करेंगे श्री हित हरिवंश महाप्रभुने कलियुग के जीवों

के लिये वेदों में छिपे हुए गुप्त से गुप्त रहस्यमय परम प्रेम उपासना जो लोकातीत देव मुनि दुर्लभ है उसको स्वयं आचरण कर मानव साध्य करके संसार में प्रचलित कर अनेक जीवों को निज निकुञ्ज मंदिर के अधिकारी बना दिये हैं। श्री राधा प्यारी की सहचरी साधना को सुगम करके दिखाया संसार के महान् पुरुषों ने जिस प्रेमोपासना को मानवातीत अगम्य बताई उसका हस्तामलक कर मधुरोपासना का प्रसार कर सहजतया राधा को प्राप्ति को सरल बनाया यह् अद्भुत असाध्य चमत्कार किया है हित महाप्रभु करुणा के सागर जगत उद्धारक प्रेम के ही साक्षात अवतार हैं हित महाप्रभु के गुणों की महिमा का वर्णन शेष शारदा वृहस्पति भी करने में पार नहीं पासकते फिर जीव की क्या बात है इन महाप्रभु के गुणगान कर के मानव अपने मन वाणी को पवित्र करता है। सब ही आचार्य भगवान अतिनिकट वर्ती हैं सब ही अपने शरणागत जीवों को भगवत् प्राप्ति करादेने वाले हैं सबही जीवों को ब्रह्म सम्बन्ध कराके अटूट सुख के परम उदारदाता हैं अपने २ कृपापात्र शिष्य भक्त, प्रेमियों के लिये अपने-२ आचार्य और गुरु भगवान् ही के स्वरूप होते हैं इसलिये इस ग्रन्थ की भूमिका में अनेक आचार्य अनेक संतों को भगवान शब्द से "नाम के पूर्व श्रीभगवान्" संबोधित किये हैं भगवान की विभूति स्वरूप कोई अंश कोई कलारूप को आवेश रूप इत्यादि अनेक विध के अवतारों में से आचार्य श्री भगवान् के अंशादि अवतार हैं इसलिये सब आचार्य महापुरुषों के नामके पूर्व भगवान् शब्द लिखा गया है भगवत प्राप्ति कराने में आचार्य गुरुदेव ही मूल कारण हैं शरणागतों के लिये प्रथम भगवान ये ही हैं इनही के पदों को गाने से और पदों का आश्रय लेकर भक्ति महाराणी की प्राप्ति होती है।

यह् श्री राधा सुधानिधि भी महापुरुष का गाया हुआ प्रेम भक्ति मधुररस ही है। इस रसार्णव का विपुल विस्तार रसिक महानुभावों के

पदों से गाथाओं से किया गया है इसमें अवगाहन करने से भगव-ल्लीलाओं का आस्वादन "प्रत्यक्ष की तरह" प्राप्त हो सकता है।

इस चतुर्थ प्रकरण की भूमिका में ऐसी घटना का उल्लेख है जो वर्तमान के निकटवर्ती समय के भक्तों की प्रत्यक्ष घटनायें जो सत्य ही लिखी गई हैं

ये घटना रूपी सत्य चरित्र पढ़कर भावुकों के हृदय और मन में श्री राधा जी के चरणों में अनुराग आसक्ति उत्पन्न होगी यही एक कारण ऐसी घटनाओं के लिखने का है अन्य नहीं।

यहाँ लिखित घटनायें तब तक ही असम्भव प्रतीत होंगी जब तक कोई वृन्दावन "ब्रज"के रसिक प्रेमी अनन्य भक्तों का संग प्राप्त न होगा वृन्दावन के रसिक अनन्य भक्त जिनके हृदय में संसारासक्ति छूटकर श्रीश्यामा-श्याम का प्रेमरस हृदय की वस्तु बनगई है उनके समक्ष अनेक अनुभव प्रत्यक्ष रूप से आज भी होते हैं। उनके संग से यह असंभव हस्तामलक होजाते हैं॥

दयालु भक्तजनों से प्रार्थना

यह दास (मैं) बहुत ही अल्प पढ़ा है। अतः इस दास के लिखने में अशुद्धियां रहती हैं और न भाषा सौन्दर्य है न शब्द लालित्य ही लेख में रहता है, जिसको सुन्दर लेख कहते हैं वह तो है भी नहीं, अपितु कहीं कैसी भाषा कहीं कैसी भाषा इस ग्रन्थ में लिखी गई है जो पढ़नेवालों को सुखद और मनोहारी नहीं है इतनी भारी अयोग्यता रहने पर भी सर्वोच्च रस ग्रन्थ जो भक्ति (प्रेम लक्षणा भक्ति) का दाता है और साहित्य के अलकारादि विविध उच्चतम रत्नों से परिपूर्ण है ऐसे इस श्री राधासुधानिधि में निकुञ्ज लीला युक्त भावनाओं का चिंतन लिखने की चाह और दु:साहस कर रहा हूँ यह इस दास का महान धृष्टता पूर्ण अपराध है। यह समझता हुआ भी श्री राधायशोगान के लोभ को संवरण नहीं कर सका हूं। इस दास को यह पूर्ण विश्वास है कि आप परम दयालु और उदारचेता पूज्य गुरु, संत प्रेमो भक्त मुझको उसी प्रकार क्षमा प्रदान करेंगे जैसे माता पिता अपने अबोध बालक की टूटीफूटी अशुद्धता की भाषा को सुनकर क्षमा प्रदान करते हुए आत्मीयता के नाते प्रसन्न ही होते हैं।

रस परिपूर्ण निकुञ्ज की मधुराति मधुर लीलाओं को जो सखी सहचरीगण निकुञ्ज मंदिर से भूतल पर अवतार धारणकर आचार्य संत रूप में पधारती हैं उन्होंने करुणार्द्र चित्त से दैवी जीवों पर द्रवित होकर गा गा कर निकुञ्ज रस प्रदान किया यह उनका संग्रहरूप और इस कराल कलिकाल में भी हमारी करुणामयी प्रेममूर्ति श्री किशोरी जी की अहैतुकी कृपा वश सहज करुणा से जिन जीवों को अपना दर्शन और लीला माधुर्य का साक्षात्कार कराया है और कराती हैं उन ही घटनाओं को लिखकर इस दासानुदासने अपने हृदय, बुद्धि, मन, अंत:करण, हाथों को पवित्र करने की भावना को व्यक्त करने का साहस किया है सब ही प्रकार से अयोग्य अपने श्री चरण रज का

यह दास है। किन्तु आपही की कृपा दृष्टि रूप विक्रम के अधार पर इस सेवा के लिये उपस्थित होगया है अतः पतित (मुझ) को अपनाकर परम अनुग्रहीत करेंगे यह दृढ़ विश्वास और भरोसा है। इस में उत्तमता और परम आस्वादनीयता जो है वह रसिक संत महापुरुषोंकी है। इसमें जितनी अशुद्धियां, लिखने की त्रुटियां, भाषाकर्कशता, असंबद्ध लेख, आदि हैं वह सब मेरी ही हैं।

इस ग्रन्थ में यथा सम्भव उनही घटनाओंका संकलन है जो सत्य हैं और जिनको परम रसिक संत महात्माओं ने लिखा है तथा अपने प्रवचनों में एवं सत्संग में वर्णन किया है।

कुछ अद्भुत घटनायें जिनको दासने प्रत्यक्ष उन्हीं घटनाओंको यथावत लिखा है और भी अनेक सत्य घटनायें हैं ग्रंथ के अति विस्तार भय से उन लीलाओंके लिखने में संकोच करना पड़ा है। फिर भी आप दयालु महापुरुषों का वरद हस्त इस दासके मस्तक पर है। इस ग्रन्थके १६ प्रकरण में यथा सम्भव उन्हीं सत्य घटनाओं और लीलाओं के लिखने का प्रयत्न किया जावेगा। यदि हमारी सर्वस्व प्राणाधिका श्रीराधा की इच्छा होगी तो प्रकाशित भी हो जायेंगी।

वृन्दावन एवं बरसाना नंदगांव महावन (गोकुल) आदि प्रिया प्रीतम के जितने बिहार स्थल हैं इन सब ही में अद्यावधि ऐसे ऐसे रसपूर्ण चमत्कार (जो श्री राधा महाराणी की कृपा से) प्रत्यक्ष हो रहे हैं उन लीलाओं के दर्शन ऐसे महा भाग्यशाली महत् पुरुषोंको प्रत्यक्ष रूप से इन्ही नेत्रों से होते हैं जिन्होंने संसार की समस्त आसक्ति छोड़कर केवल श्री राधा महाराणी में अपने भाव पूर्ण, बुद्धि, अन्तःकरण समर्पित कर उन्हीं का भजनमय जीवन बना रक्खा है और जीव पर श्री वृन्दावन की रज रानी की कृपा है और प्रेमी रसिक भक्तों के चरण रज का अभिषेक प्राप्त है।

जिनपर श्रीजी की कृपा हुई व होती है और उनकी कृपा से लीलाओं का अनुभव होता है प्राय: महापुरुष अपना अनुभव दूसरों के समक्ष प्रकट करना नहीं चाहते हैं, फिर भी कोई कोई अपने प्रिय शिष्य आज्ञानुवर्ती भक्त को उसके कल्याणके लिये ही कहते हैं ऐसी ही घटनाओं का संकलन इस ग्रन्थ में किया गया है कलि पावनावतार श्री हितमहाप्रभु के उपदेश के चार दोहे हैं।

सबसों हित निष्काममति, वृन्दावन विश्राम।
श्री राधावल्लभ लालको, हृदय ध्यान मुखनाम ॥१॥
तनहि राखि सत्संगमें, मनहि प्रेमरस भेव।
सुख चाहत हरिवंशहित, कृष्ण कल्पतरु सेव ॥२॥
निकसि कुञ्ज ठाड़ेभये, भुजा परस्पर अंस।
श्रीराधावल्लभमुखकमल, निरख नैन हरिवंश ॥३॥
रसना कटौ जु अनरटौ, निरख अन फुटो नैन।
श्रवण फुटो जो अनसुनो, विनुराधा यश वैन ॥४॥

परम कारुणिक सब जगज्जीवों के सुहृद हितस्वरूप श्रीहितहरिवंश महाप्रभु दया की मूर्ति अनसहन व्यक्तियों पर भी जो आपकी निंदारत थे उन पर भी उमगकर कृपा वृष्टि करनेवाले हैं उनको श्री प्रिया जी की अंतरंग रहस्य पूर्ण गुप्त लीला के अधिकारी करते हैं ऐसेम हाप्रभु के श्र चरणों में अनन्य प्रेम श्रद्धा करके भजन करने वालों को भजनीय देह प्रदान करते हैं। अन्य सन्त-महात्माओं ने भी रसिक प्रेमियों को प्रभु प्रेमरस प्रदान कर रागानुगा को सरस किया है आज भी उन महापुरुषों की कृपा से अनेक भक्त वृन्दावन रस का पान करके जोवन सफल कर रहे हैं उन सब आचार्य संत महात्माओं के चरणारविन्दों की रजको सभक्ति साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करके भक्त चरित्रों को लेखरूप से प्रकट करने का साहस करता हूँ।

दासानुदास—
वैद्य लक्ष्मीनारायण

॥ प्राक्कथन ॥

परब्रह्म परमात्मा की लीला मय यह सृष्टि अनादि काल से गंगा नदी की तरह प्रवाहित है और सृष्टि के मनुष्यों को सांसारिक पदार्थों की असीम और चमत्कारी सिद्धियां प्राप्त हैं, इन लौकिक (प्राकृतिक) सिद्धियों के रहते हुए भी सुख के लिये मानवों की भग-दौड़ समाप्त नहीं हो रही है इससे मालुम होता है कि मानव सच्चे सुख के स्वरूप को समझा नहीं है और वह सच्चा सुख कैसे कहां से प्राप्त होता है इस विषय से भी मानव अनभिज्ञ ही है।

संसार में देखा जाता है कि धन का अभिलाषी धनिक का संग प्राप्त कर धन प्राप्त करने की युक्ति प्राप्त कर लेता है, शासन की महत्ता चाहने वाला शासकों का संग कर सत्ता प्राप्त कर पाता है, रोगी जन सद्वैद्य का संग प्राप्त कर निरोगता प्राप्त करता है।

इसी तरह, नित्य, अविनाशी, अनन्त और स्वतन्त्र सुख की प्राप्ति के लिये भी उन महापुरुष, भगवत् प्राप्त, भगवत् अवतार रूप आचार्य जिन्होंने सच्चिदानन्द परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त कर लिया है उनकी शरण जाना अनिवार्य है। उन ही की शरणागति और संग मनुष्यको नित्य अखूट सुख को प्रदान कराती है। क्योंकि आचार्य स्वयं भगवत् अवतार ही हैं "आचार्यन्तु मां विजानीयात्,, ।

गुरु, संत, जो गृहस्थ या विरक्त हों जिनको भगवान् की प्राप्त है वे सब शिष्य के लिये आचार्य ही हैं।

गुरु की महिमा का ज्ञान होना परम आवश्यक है क्यों कि महिमा से श्रद्धा उत्पन्न होती है तथा श्रद्धा की वृद्धि भी होती है श्रद्धा ही से भक्ति महाराणी हृदय में आकर विराजती हैं भक्ति से श्रद्धा तथा भगवत् प्राप्ति हो जाती है यह परम सत्य है 'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ, तस्यैते कथिता ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन:' गुरु में मनुष्य बुद्धि रखना महापाप है और गुरु में साक्षात् भगवत् स्वरूप का दृढ़ विश्वास होने से भगवत् प्राति निश्चय होती है। इसके उदाहरण प्राचीन और अर्वाचीन (वर्तमान) समय के अगणित हैं गुरु के अनन्य भक्त को भगवान ने महात्मा बतलाया है, भगवान् श्री कृष्ण ने अपने वचनामृत में दो पुरुषों को महात्मा कहा है, एक तो वासुदेव: सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ: और एक तस्यैते कथिता: ह्यर्था: प्रकाशन्ते महात्मन: यह अमित वरदान भगवान् का गुरु भक्त के प्रति है।

हमारे यहाँ भक्ति प्रदान करके भगवान् की (परमात्माकी) प्राप्ति कराने वाले अनेक आचार्य जैसे,भगवान् श्रीरामानुजाचार्य जी, भगवान् श्री शंकराचार्य जी, भगवान् श्री वल्लभाचार्य, भगवान् श्री निम्बार्काचार्य भगवान् श्री हित हरिवंश महाप्रभु भगवान् श्री गौराङ्ग महाप्रभु (चैतन्य देव) भगवान् श्री हरिदास स्वामी जी, भगवान् श्री रामानन्द स्वामी, भगवान् श्री स्वामी सहजानन्द आदि सब ही भगवान के अवतार रूप हैं यह निश्चय ही है।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानाय धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां।
धर्म संस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥

यह भगद्वाक्य गीता में है सत्य सत्य ये सब ही भगवान् के अवतार हैं इनमें मानुषी बुद्धि रखना मूर्खता है। अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्' श्रीभगवान् स्वयं ऐसे लोगों को मूर्ख बतलाते हैं।

ऐसे ही गुरु को भगवान् समझने वाले जिनका नाम लेने मात्र से जीवन सार्थक हो जाता है जिनकी शरण प्राप्त कर जीव भगवद्धाम (नित्य लीला) में पहुँच जाता है जैसे—

श्री सेवक जी महाराज, श्री श्रीभट्ट जी महाराज, श्री विट्ठलविपुल देव जी महाराज, श्री परशराम देव जी महाराज श्री व्यासजी महाराज श्री हरिराम व्यास जी महाराज श्रीविहारिणदेव जी महा० श्री हरिप्रिया जी श्री सूरदास जी श्री हरिराय जी (चाचा) श्री वृन्दावन दास जी (चाचा जी) श्री रूप सनातन गोस्वामी जी श्री प्रवोधानन्द सरस्वती पाद गोस्वामी जी श्रीदास गोस्वामी पाद (श्री रघुनाथ दास जी गोस्वामी) श्री माता मीरा बाई आदि अनेक गुरु के अनन्य भक्त हैं जिन की गुरु निष्ठा से जगत् को परम श्रद्धा भक्ति प्राप्त हो रही है यह सब परम पावन जगत् के प्राणियों के उद्धारक हैं जिन-जिन जीवों ने इनकी शरणली है वे सब अनायास भवसागर को पार कर निज धामको गये हैं और जा रहे हैं तथा जावेंगे सब ही आचार्य संत, गुरु रसिक भक्त, जीव को भगवान् की प्राप्ति कराने वाले हैं, साधन क्रिया, भजन रीति, सेवा पृथक २ प्रकार से जीवको योग्य बनाकर जीव को ब्रह्म सम्बन्ध करा देते हैं। इनके निर्दिष्ट साधन विविध प्रकार का होने से कम बुद्धि वाले (विषयासक्त अजितेन्द्रिय वाले अज्ञानी) जन रागद्वेष वाली अपनी स्वल्प और हीन बुद्धि के कारण अपनी बुद्धि के अनुसार इस महान तत्वको संकुचित बनाकर तदनुसार आचरण करने लगते हैं अर्थात् अमुक

सम्प्रदाय और अमुक आचार्य ही सर्वोत्तम हैं और अन्य मध्यम अनुत्तम मान कर रागद्वेष के झपेटे में आजाते हैं। इस सर्वात्म तत्व को लौकिक मान बैठते हैं आचार्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य जी संसार को छोड़ने के समय अपने लालजी श्री विठ्ठलेश प्रभु पाद को शिक्षारूप में कह गये कि 'न लौकिक: प्रभु: कृष्णो मनुते नैव लौकिकम्' अर्थात् परब्रह्म श्री कृष्ण में लौकिक बुद्धि लौकिक व्यवहार करोगे तो 'तदा काल प्रवाहस्था आदि' तुम कालके प्रवाह में बह जावोगे।

सब ही आचार्य गुरु संत भक्त भगवान् ही के स्वरूप हैं इन की निन्दा आदि करने वाले नरक के भागी होते हैं।

जगत् के धर्म सम्प्रदायों में संघर्ष होने में भी ऐसे ही लोग कारण रूप हैं जिन्होंने धर्म में अपने स्वार्थों को जोड़ा है सब प्रकार के सब तरह की भक्ति का फल अपने इष्ट प्रभु में शुद्ध प्रेम होना ही है, और प्रेम समूल और सबीज नष्ट हो जाता है जहाँ अपना लौकिक (ऐन्द्रिय) स्वार्थ घुस पड़ता है 'जहाँ काम (स्वार्थ) तहां नहीं राम' मनुष्य को अपने इसी जीवन में भगवत् प्राप्ति (लीला प्रवेश) करने की अभिलाषा हो उसको भगवत् गुणों को अपना कर भगवद्भक्ति करनी चाहिये।

चौरासी लाख योनियों में केवल मनुष्य योनि ही एक मात्र भगवत् प्राप्ति का साधन है। अन्य सब योनियां किये हुए पुण्य और पापों के भोग देने वाली हैं। जिनको आत्म कल्याण करना हो उन्हें निम्नलिखित बातों पर ध्यान देकर उनका त्याग करना जरूरी है।

१. दूसरों की निन्दा, अपनी तारीभ, सांसारिक पदार्थों में और प्राणियों में राग (आसक्ति) किसी के प्रति द्वेष, ईर्षा,असत्य बोलना असत्य कर्म, गुरु, देवता, सन्त, में मनुष्य बुद्धि, मन, बचन, कर्म से परस्त्री में विषय बुद्धि एक क्षण भी भगवत् स्मरण व चिन्तवन विना

समय व्यतीत करना आदि का त्याग करना चाहिये।

नाम, रूप, लीला, धाम में सुदृढ़ निष्ठा रखने वाला मनुष्य श्रेयका भागी बनता है अर्थात् इसी देह से इसी जन्म में उसको भगवान् की प्राप्ति हो जाती है।

पहला साधन नाम स्मरण है। नाम जप से अनेक मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर चुके हैं अब भी कर रहे हैं और करते रहेंगे यह सत्य है नाम जप की कई विधियाँ हैं।

भगवन्नाम के विषय में भगवत् प्राप्त महापुरुषों का कुछ अनुभव यहाँ लिखना उपयुक्त मान कर भक्तों की सेवा में लिखित (लेख) किया जा रहा है।

नाम और नामी में अभेद है यह अनुभव सिद्ध महापुरुषों का वाक्य है शास्त्र भी यही कहते हैं।

मान लो आप राधा नाम का जाप करते हैं तब आपको मन में यह विचार कर लेना चाहिये कि यह नाम (राधा नाम) हीं श्रीराधा जी का स्वरूप है और इसको जपने से श्री राधा जी दर्शन देंगी, अर्थात् नाम जप से आप के मन का दोष विकार एक परदे के रूप में श्री राधा जी के दर्शन देने में आड़े पड़ रहा है (मल, विक्षेप, आवरण रूप) वह परदा हट जायेगा परदा हटते ही राधा नाम में राधा का स्वरूप दीख जायगा अर्थात् राधा जी इसी नाम में से प्रत्यक्ष दर्शन देवेंगी यह निश्चय मान कर जप आरम्भ करें। जप करने में होठ न हिलें जवान भले ही हिले अर्थात् होठ तो बन्द रहें और जवान से जप (राधा राधा नाम) चला करे, यह नाम ही राधा जी हैं यह समझते हुए श्री राधा जी के स्वरूप का ध्यान करते रहें बहुत कम बोलना चाहिये अत्यन्त ही आवश्यकता हो अर्थात अब तो बोले बिना काम ही नहीं चलेगा ऐसी बात उपस्थित हो तब ही बोलना चाहिये।

राधा नाम है इस सत्यता पर दृढ़ विश्वास रखते हुए यह धारणा मन में रखनी (जमानी) चाहिये कि अखिल लोक नाथ श्री कृष्ण की परम प्राणेश्वरी श्री राधा मेरे हृदय में विराज रही हैं क्यों कि नाम और नामी में भेद नहीं, नाम ही नामी है अर्थात् राधा नाम मेरे हृदय में है तब तक श्री राधा महारानी मेरे हृदय में विराजमान हैं। अखिल रसामृत सार उज्वल प्रेम की मूर्ति श्रीकृष्ण की वल्लभा सर्वार्थ सार परब्रह्म रसामृत स्वरूपिणी श्री राधा जी मेरे पास विराजमान हैं अब कौन सी वस्तु अवशिष्ट है इससे परे कौन सा सुख वैभव है सम्पूर्ण वांछायें समाप्त हैं इनसे (राधा) से परे कौनसा पदार्थ है। अतिरिक्त कोई सुख है ही नहीं इनकी मौजूदगी में इनके चरणों में बैठा हूँ तो माया मुझ पर अपना प्रभाव कैसे डाल सकती है मुझ को जरा, मृत्यु, तृष्णा भी सता कैसे सकती हैं मैं राधा का हूँ और राधा मेरी हैं मैं निर्भय निष्काम हूँ परम सुख की प्राप्ति श्रीराधा के दर्शनों से हो गई ऐसा विचार रखता हुआ प्रेम से निरन्तर यथा सम्भव राधा के स्वरूप का मन में ध्यान करता हुआ रसना से नाम जप करे होठ को नहीं हिलने दे। इस तरह जप करते-करते जो सुख होगा वह लेखनी से लिखा नहीं जा सकता जिह्वा से वर्णन नहीं हो सकता।

एक सत्य घटना

एक वर्ष और छः महीने के लग-भग की बात है कि कानपुर निवासी एक वैश्य युवक ने जिसकी अवस्था २४ या २५ वर्ष की होगी नवरात्रि में ऐकाशन आदि नियमों का पालन करते हुए श्री मानस (तुलसी कृत रामायण) का नवाह पारायण प्रारम्भ किया।

नवयुवक को नवाह पारायण बहुत अच्छा लगा। अतः पारायण की समाप्ति होने के बाद द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, आदि पारायण

लगातार करता रहा इस तरह नौ नवाह पारायण उस नवयुवक ने कानपुर में अपने घर पर ही किये। नवमे पारायण की समाप्ति होते ही उसको श्री हनुमान जी ने प्रत्यक्ष दर्शन दिये और युवक से कहा कि मैं तेरे मानस पारायण से प्रसन्न हूँ तू कोई इच्छित वर मांग युवक ने प्रार्थना की कि हे प्रभो, मुझको श्री राधा रानी के दर्शन कराइये। यह सुन कर श्री हनुमान जी बोले 'श्रीराधारानी के दर्शन तो वृन्दावन में ही हो सकते हैं, यहाँ नहीं। युवकने पूछा वृन्दावन में कहाँ दर्शन होगा। अञ्जनी पुत्र श्री हनुमान जी बोले वृन्दावन की सेवाकुञ्ज में। यह कह कर श्री हनुमान जी अन्तर्ध्यान हो गये, और वह युवक दूसरे ही दिन ट्रेन के द्वारा वृन्दावन आया और वहाँ पहुँच कर श्रौतमुनि आश्रम में पहुँचा। आश्रम निवासी सन्तों से अपने वृन्दावन आने का कारण बताते हुए उनसे सेवाकुञ्ज स्थान का पता पूछा। सन्तों में से एक सन्यासी महात्मा को इस विषय में बड़ी रुचि हुई और वे युवक को साथ लेकर सेवाकुञ्ज बताने के लिये आश्रम से रवाना हुए। मार्ग में श्री कुमरपाल जी की मण्डली का रास हो रहा था। उक्त सन्यासी महात्मा नित्य रास के दर्शन करने को जाया करते थे। उन्होंने युवक से कहा कि चलो यहाँ रास देखलें फिर सेवाकुञ्ज चलेंगे। उस समय रास विहारी एवं रासेश्वरी को शृङ्गार भोग लग रहा था और परदा लग रहा था। सन्यासी जी ने युवक से कहा कि भैया तुमको श्री हनुमान जी के साक्षात् दर्शन हुए हैं इसका विश्वास हमको नहीं है। इस समय यदि श्री राधा जी तुम को बुला कर अपना प्रसाद दे दें तो हम को पूर्णतया विश्वास हो जायेगा कि तुमको श्री हनुमान जी ने दर्शन देकर सेवाकुञ्ज में जाने की आज्ञा दी है। इतना सन्यासी महात्मा कह ही रहे थे कि रास मण्डली के एक कर्मचारी ने इस युवक के पास आकर कहा कि अरे लड़के तुमको श्रीजी बुला रही हैं चलो, और लड़के को परदे के

अन्दर ले गया। वहां पर श्री राधा जी ने युवक को अपना प्रसादी एक पेड़ा दिया। युवक दण्डवत् कर, प्रसाद लेकर सन्यासी जी के पास आकर बैठ गया, इस घटना को देख कर सन्यासी जी को युवक की बात पर पूर्ण विश्वास हो गया। रास लीला समाप्त होने पर दोनों व्यक्ति सेवाकुञ्ज गये और वहाँ शयन आरती के दर्शन उन्हें मिले। युवक ने कहा कि मैं आज रात्रि में यहीं पर भजन करूँगा। सन्यासी ने उसको बतलाया कि यहाँ रात्री में रहने की आज्ञा नहीं हैं। यदि कोई छुप करके रह जाता है तो वह मर जाता है अथवा पागल हो जाता है अतः तुम यहाँ नहीं रह सकते हो। बहुत कुछ कहने पर भी लड़के ने नहीं मानी और पुजारी—चौकीदार आदि की आँख बचाकर वह सेवाकुञ्ज की झाड़ियों में छुप गया। पुजारी आदि जब बाहिर निकल कर किवाड़ बन्द कर गये तब वह चबूतरे के सामने गोस्वामी रूपलाल जी महाराज की भजनस्थली में बैठ कर भजन करने लगा। मध्य रात्रि तक वह जागता रहा, बाद में उसको निद्रा आ गई। निद्रा में श्री जी ने युवक से कहा कि मेरे प्रत्यक्ष दर्शन का अधिकारी तू अभी नहीं है, यह स्तोत्र ले तू इसका पाठ किया करना। यह कह कर श्री लाडिली जी अन्तर्ध्यान हो गईं। निद्रा भंग होने पर युवक ने देखा कि एक पुस्तक उसके सामने रक्खी हुई है और उसका नाम श्री राधासुधानिधि स्तोत्र है। पुस्तक को दण्डवत् प्रणाम करके युवक ने अपने मस्तक पर धारण किया और सेवाकुञ्ज में श्रीजी की मङ्गला आरती के दर्शन कर गद-गद हो गया। कुछ देर तक मन्दिर में विश्राम करके श्री राधा नाम का स्मरण करता हुआ पुनः श्रौतमुनि आश्रम में आ गया। वहां उसने उन्हीं महात्मा सन्यासी जी से मिल कर रात्रि की घटना सुनाई और पुस्तक लेकर कानपुर चला गया। धन्य है वह युवक जिनको श्रीजी ने सेवाकुञ्ज में श्री राधा सुधा निधि प्रदान कर जगत में इस अद्भुत ग्रन्थ का

प्रत्यक्ष महत्व प्रकट किया और जीवों पर परम अनुग्रह किया।

वह सन्यासी जी इस समय ऋषीकेश (हरिद्वार) स्थित गंगेश्वरानन्द जी मण्डलेश्वर महाराज के आश्रम के महन्त हो गये हैं एक वृन्दावन के महात्मा इन सन्यासी जी से पूर्ण परिचित हैं। ये सन्यासी जी कुछ ही दिनों में वृन्दावन आने वाले हैं। उनके आने पर वे इस नवयुवक का नाम आदि पूछ कर मुझ सेवक को बतावेंगे और फिर यह सेवक इस नवयुवक का पूरा परिचय दिन तिथि आदि के सहित देवेगा।

महाप्रभु श्री हित हरिवंश गोस्वामी जी के अनन्य भक्तों द्वारा की हुई वन्दना के पद

॥ पद ॥

नमो नमो जै श्री हरिवंश।
रसिक अनन्य वेणु कुल मण्डन ॥
लीला मान सरोवर हंस।
आगम निगम अगोचर श्री राधे ॥
चरण सरोज व्यास अवतंस ॥

(श्री हरिराम व्यास जी)

॥ पद ॥

जय जय जगत प्रसंस नवल की वांसुरी।
सो प्रगटी भुव लोक कहन जुग-गांसुरी ॥
द्विज कुल कियो प्रकाश गूढ़ गुन विस्तारचौ।

पिय-प्यारी कौ हेतु कह्यौ रति रस भाख्यौ ॥
कही रति-रस रासलीला रसिकजन मन भावनो ।
वृन्दावन हित राधिका धन चरणरति उपजावनो ॥
युगल-पथ दरसाय दृग अज्ञान तम कियौ नाँसुरो ।
जय जय जगत प्रसंस नवल की बाँसुरो ॥

(श्री हित वृन्दावन दास जी)

॥ पद ॥

जयति हरिवंश चन्द्र, नामोच्चार वर्द्धित सदा सुबुद्धि ।
रसिक अनन्य प्रधान सतु साधु मण्डली मण्डनो जयति ॥

नाना द्रुम कुञ्ज मंजुवर वीथी ।
वन विहार राधा रमणम् ॥
तहाँ संतत रहत श्याम श्यामा संग ।

रहत सदा सखि संग रास रंग रस रसाल उल्लासं ।
लीला ललित रसालं सम स्वर तालं वरषत सुख पुञ्जम् ॥
अतुलित रस वरषत सदा सुख निधान वनवारि ।

अद्भुत महिमा प्रगट सुन्दरता की रासि ॥
सुन्दरता की रासि कनक दुति देह रुचि ।
वारिज वदन प्रसन्न हासि मृदु रंग शुचि ॥
सुभ्रू सुष्ठु ललाट पट सुन्दर करणं ।
नयन कृपा अवलोकि प्रणति आरति हरणं ॥
सुन्दर ग्रीव उरसि वन मालम् ।
चारु अंश वर बाहु विशालम् ॥
उदर सु नाभि चारु कटि देशं ।
चारु जानु शुभ चरण सुवेशं ॥

शुभ चरण सुवेश मत्त गज वर गति-
पर उपकार देह धरणं ।
निरगुण विस्तार अधार अवनि पर-
वाणी विशद सुविस्तरणं ।।
करुणा मय परम पुनीत कृपानिधि-
रसिक अनन्य सभा भरणं ।
जय जग उद्योत व्यास कुल दीपक-
श्री हरिवंश चरण शरणं ।।

(श्री सेवक वाणी)

श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद जो परम रसिक सिरोमणि महात्मा जिनकी उदारता और आचार्य प्रति स्पृहणीयश्रद्धा जिनकी है वे लिखते हैं।

मुग्धोमुञ्ज महाटवीमुपगतो भ्रान्त्या हताशो भ्रमन् ।
लब्ध्वाध्वा निजबा धवेन मरुता त्वद्‌गंध संबन्धिनः ।।
आयातो भवतोन्तिकं कथमपि प्रौढाशया तर्षितो ।
भ्रङ्गः कांगतिमेतु जीवनजने हन्तः त्वयोपेक्षितः ।।

श्री गोस्वामी प्रबोधानन्द सरस्वती पाद ने आचार्य को वंदना त्मकश्लोक बनाये हैं:—

त्वमसिहि हरिवंश श्यामचन्द्रस्य वंशः,
परमरसद नादैर्मोहिताशेष विश्वः ।
अनुपम गुणरत्नैर्निर्मितोऽसि द्विजेन्द्र,
मम हृदि तव गाथा श्चित्रलेखेव लग्नाः ॥ १ ॥
द्विजकुमुद कदम्बे चन्द्रवन्मो दकस्त्वं,
मुहुरतिरस—लुब्धालीन्द्र वृन्दे प्रमत्ते ।

अतुलित रसधारा वृष्टि कर्तासि नादै—
विलसतु मम बाधा-मूर्ध्नि जिष्णोरिवास्त्रम् ॥ २ ॥
अधिक रसवतीनां राधिकायाः सखीनां,
चरण कमल वीथी कानने राजहंसः ।
तदति ललित लीला गान विद्वत्प्रसंसः,
स जयति हरिवंशो ध्वंसकोऽसौ कलीनाम् ॥ ३ ॥
अतुलित गुण राशि प्रेम माधुर्यभाषि--
प्रणत कमल वंशोल्लासदायी सुहंसः ।
अखिल भुवन शुद्धानंदसिंधु प्रकाशः,
स जयति हरिवंशः कृष्णजीवाधिकांशः ॥ ४ ॥
गुण गण गणनैर्यैर्वश्यते वश्य कृष्ण,
स्तरति कलयतो यद्वार्तया सत्कदंबः ।
निरवधि हरिवंशे तेऽत्र सा च प्रभाति,
नहि-नहि बुध तस्मात्कृष्णराधारदभक्तिः ॥ ५ ॥
हृदय नभसिशुद्धे यस्य कृष्णप्रियाया--
श्चरण नखर चन्द्रा भान्त्यलं चञ्चलायाः ।
तदति कुतुक कुञ्जे भावलब्धालिमूर्तिः,
स जयति हरिवंशो व्यासवंश प्रदीपः ॥ ६ ॥
चरणकमलरेणुर्यस्य संसार सेतुः,
पविरिव सुविलासी दर्पशैलेन्द्रमौलौ ।
कलुष नगर दाही यस्य संसर्गलेशः,
स जयति हरिवंशः कृष्णकान्तावतंसः ॥ ७ ॥
रमण जयन नृत्योद्भ्रामकोत्तालपूरा--
त्तदतिललित कुञ्जादाज्ञयाराद्रुपेत्य ।
ललित भजन देहे मानुषे स्वेश्वरौ तौ,
स जयति हरिवंशो लब्धवान् यः समद्धम् ॥ ८ ॥
॥ इति श्री प्रबोधानन्द सरस्वती कृत हिताष्टकं ॥

अतः श्री महाप्रभु श्री हित हरिवंश गोस्वामी साक्षात् हित (प्रेम) के ही स्वरूप हैं प्रिया प्रीतम (श्री राधा कृष्ण) की अति प्यारी बंशी के ही अवतार हैं, इनके श्रीचरण रज का दृढ़ आश्रय जिन्होंने लिया और लेंगे उनको निश्चय ही श्री निकुञ्ज की टहल (महल खवासी) प्राप्त हुई और होगी।

श्री वंशी जी प्रिया प्रीतम के आनन्द का ही स्वरूप अर्थात् प्रिया प्रीतम ही वंशी हैं अतः वशी अवतार श्रीहित महाप्रभु स्वयं ही हैं इसमें कोई संशय नहीं है 'आचार्यन्तुमां विजानीयात्' भगवद्वाक्य सत्य-सत्य है। सब ही आचार्य स्वयं भगवान् ही हैं। दीक्षा देने वाले हित वंशज स्वयं हित महाप्रभु के ही स्वरूप हैं अतः दीक्षा दाता आचार्य वंशज अपने गुरु भी भगवान् ही हैं इस दृढ़ व्रत को धारण कर संशय रहित हो कर गुरु को ईश्वर मान कर गुरु के उपदेशानुसार भजन क्रिया में दृढ़ बने रहने वाला श्रद्धालु शिष्य अवश्य महल की खवासी प्राप्त करता है। श्रद्धामयोऽयं पुरुषो योयच्छ्रद्धः स एव सः' यह साक्षात् सच्चिदानन्द परब्रह्म श्री कृष्ण के वाक्य हैं इस में किञ्चि-न्मात्र संशय नहीं है 'संशयात्मा विनश्यति।

यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः॥

एक महत्व पूर्ण प्रत्यक्ष देखी हुई

सत्य घटना

जिस में राधा कृष्ण के प्रेम का लोकातीत
चमत्कार अकथनीय प्रेम का दर्शनहै।

सन् १८६० की बात है कि एक दिन प्रातः काल श्री यमुनाजी

के बिहार घाट के तट पर श्री यमुना रज में लोट रही एक युवती माता का दर्शन हुआ। अनुमानतः ३० से ३२ वर्ष की आयु इन माता जी की नजर आई। मलिन फटी धोती और वैसी मलिन पुरानी कंचुकी एवं फटा पेटीकोट धारण किये हुई थी। मौन पूर्वक लेटी हुई श्री यमुना जी को निहार रही थी वहां पर स्नानादि के लिये आये हुए नर नारी उसको देख कर भी उपेक्षा वृत्ति से चले जा रहे थे, मालुम होता था कि कोई भिखारिन पड़ी हुई है। गरमी के दिन थे प्रायः भिक्षाक मांगने वाले स्त्री पुरुष यमुना किनारे पड़े रहते हैं इन माता जी के प्रति भी लोगों के यही भाव थे। तीन चार दिन बाद इन ही माता जी को (भिक्षुक को) अठखम्भा श्री राधावल्लभ जी के मन्दिर के पहिले द्वार से कुछ आगे कानपुर वालों की बगीची जिस में श्री सुन्दर दास जी राधावल्लभीय सन्त रहा करते हैं उस बगीची के एक वृक्ष के नीचे लेट रही इन माता जी को सौभाग्यवती श्री किशोरी बाई (धर्म पत्नी वैद्यराज श्री हरिवल्लभ जी) ने देखा मुँह खुला हुआ कुछ कुछ भजन मन्द स्वर में गा रहीं हैं। शरीर बहुत कृश प्रसन्न मुख योगियों की सी चमकती हुई देदीप्यमान आँखें नजर आईं किन्तु कोई बात-चीत उस बख्त माता जी से उसी दिन न हो पाई। लगातार तीन दिनों तक उक्त माता जी को वहीं पर उसी स्थिति में श्रीकिशोरी बाईने देखा चतुर्थ दिवस राजभोग के दर्शन श्रीराधावल्लभ प्रभु जी के कर श्री किशोरी बाई १ बजने के समय (दिन की) उसी जगह गई और इन माता जी से बात चीत की। पूछा माता जी आप कहाँ से आई हो माता जी ने कहा भगवान् के यहाँ से आई। प्रश्न—कहाँ जाना है उत्तर जहाँ वह भेजेंगे। श्री किशोरी जी ने कहा आप हमारे श्रीजी के यहाँ चलो। उत्तर—मैं किसी के घर नहीं जाती हूँ। फिर किशोरी जी बोलीं हमारे श्रीजी के यहाँ बाई लोग (स्त्रियाँ) ही नित्य कीर्तन करतीं हैं आप भी वहां चलिये। यह

सुन कर माताजी ने कहा अच्छा चलूँगी, माताजी को साथ लेकर किशोरी बाई अठखम्भा प्रेम गली श्री राधा किशोरी भवन के कीर्तन भवन में आई इस समय यहाँ श्री राधा नाम का कीर्तन हो रहा था माता जी भी बिराज गईं और हारमोनियम को बजाती हुई माताजी कीर्तन करने लगीं माताजी का मधुर स्वर प्रेम परिपूर्ण श्रीराधा नाम की ध्वनी ताल स्वर सहित होने लगी। हम लोग श्री माताजी का अद्भुत नामोच्चार सुन कर चकित हो गये। फिर माता जी ने भजन गया। भजन में प्रेम पूर्ण अश्रु धारा माता जी के नेत्रों से बह चली और उठ कर भगवान के सामने आपने नृत्य करना आरम्भ किया वह नृत्य क्या था मानो राधा कृष्ण विषयक प्रेम ही साक्षात् मूर्ति मान हो कर नृत्य कर रहा हो—नृत्य करती करती माताजी का देहानुसंधान जाता रहा और लकुट की तरह भूमि पर धड़ाम से गिर पड़ीं माताजी की अनुपम अद्भुत भक्ति भाव पूर्ण प्रेम दशा को देख कर हम सब ही देखने वाले वहाँ उपस्थित व्यक्ति चकित हो गये करीब एक घण्टे के बाद ही चेत हुआ फिर भी माता जी सम्भल नहीं रहीं थीं। कीर्तन हो जाने पर हम सब ही ने और विशेष कर सौभाग्य वती श्री मती शकुन्तला देवी जी (जो श्री राधा किशोरी मन्दिर की प्रधान सेविका राधा किंकरी थीं) ने बहुत आग्रह के साथ माताजी से प्रार्थना की कि आप इसी मन्दिर में श्रीजी की सेवा कीर्तन रूप में करें हमारे यहीं श्रीजी के मन्दिर में विराजें, यह नम्र प्रार्थना है आप कृपया स्वीकार करें उक्त माताजी ने हम दीन जनों की प्रार्थना स्वीकार कर श्री राधाकिशोरी भवन में रहने लगीं। पूछने पर माता जी ने कृपा पूर्वक अपना नाम शीला बताया, माता जी ने कहा मैं जैसा कहूँ वैसा ही भोजन मुझको मिलेगा तो मैं खाऊँगी और मेरी जैसी इच्छा हो उसी प्रकार से मुझको रखोगे तथा मेरी नित्य क्रिया में कोई बाधा न होगी तो ही मैं रहूँगी अन्यथा मैं चली जाऊँगी।

उन्होंने बताया चना और जौ की मोटी रोटी उस पर घी या तेल नहीं लगाना। रोटी पर नमक की डेली और हो सके तो हरी मिच दो चार, यह भोजन के लिये दिन में एक बार और गुड़ के पानी में गेर कर उबाला जाय उसमें चाय की पत्ती गेर कर छानली जाय दूध चीनी मसाला कुछ भी नहीं गेरना चाहिये एक प्याला (चाय का कप) भर कर केवल प्रात: एकबार ही देना श्री राधा किशोरी मन्दिर की सेविका श्री शकुन्तला देवी और श्री किशोरी बाई इसी प्रकार इनके भोजन और चाय की सेवा करती रही श्री मती शीला माता जी पांच मास लगातार श्री किशोरी भवन वृन्दावन में विराजी श्री शीलावती (शीला) माता जी की अनुपम अद्‌भुत भजन क्रिया इस प्रकार की है दिन में तीन बार प्रात: मध्याह्न और सायं तीनों समय नित्य भजन नियम पूर्वक दो दो घण्टे तक होता था।

हर समय आकाश की तरफ दृष्टि रहती और भजन का समय (प्रात: ६ बजे मध्याह्न १२ बजे सायम् ६ बजे) आते ही ठीक नियत समय होते ही भजन में डूब जाती खड़ी होती तो समय होते ही तत् क्षण गिर पड़ती बैठी होती तो लेट जाती और जोर जोर से कृष्ण कृष्ण कृष्ण की ध्वनी करती श्वास रुक जाता शरीर के अवयव हाथ पाँव सकुड़ जाते कछुवे की तरह गढी सी हो जाती मानो चारों हाथ पांव पेट में घुसे जारहे हैं माथा पेट में चिपक जाता शरीर की सुधी जरा भी न रहती कृष्ण की आवाज जोरों के साथ तैल धारावत् गूँजती रहती दूर दूर तक सुनाई देता उस समय कोई स्त्री भी उनके शरीर को छू लेती तो बिजली के करेंट की तरह झटका लग कर दूर उछल कर गिर पड़ती माता जी ने कहा पुरुष तो मेरे अङ्ग का कभी भी स्पर्श न करै और भजन के समय तो स्त्री भी मेरा स्पर्श न करै

पाँच महीनों में एक भी दिन ऐसा नहीं हुआ कि एक बार भी तीनों समय में चूक हुई हो अनवरत दो दो घण्टे तक तीनों समय इसी प्रकार का भजन नित्य होता था और भजन के समय शरीर के अव-यव मुड़ कर गठड़ी सी हो जाते मानों हड्डियों की संधियां ही खुल गई हों और हड्डियां मुड़ गई हों आश्चर्य जनक शरीर की दशा जिस की सम्भावना ही नहीं हो सकती ऐसा मुड़ कर गठड़ी हो जाता। एकबार श्री किशोरी बाई ने भजन के समय शीला माता जी के वस्त्र जो बिखर गये थे उन वस्त्रों को ठीक करने के लिये माता जी का स्पर्श कर लिया स्पर्श करते ही ऐसा झटका लगा जिससे किशोरी बाई दो हाथ दूर जापड़ी उसके बाद कोई भी स्त्री उस भजन के समय उन को छूती नहीं थी अपने आप जब चेत होता तब स्वयं ही वस्त्रादि को ठीक करती थी। एक ही समय २ सूखी रोटी बेजड़की नमक की डली और चार हरी मिर्च वस केवल इतना ही भोजन उनका और एकबार गुड़ की चाय प्राय: इसके अतिरिक्त कुछ भी मुहँ में न लेती थी।

एक दिन की बात है इस मन्दिर की दूसरी मञ्जिल में एक कमरे में माता जी विराज रहीं थीं किशोरी बाई उनके पास बैठी थी १२ बजने का (दिन में) समय होते ही माता जी गिर पड़ीं (माता-जी उस वक्त खड़ी थीं) गिरते ही उनका स्मरण कृष्ण-कृष्ण जोर से होने लगा और माता जी के पांव बढ़ने लगे (सिकुड़ने के बजाय आज तो बढ़ने लगे) पांव इतने लम्बे हो गये कि मापने पर तीन २ हाथ लम्बे होंगे पांव (तलुवे) एक एक हाथ लंवे हो गये दोनों हाथ भी दूने लम्बे हो गये मस्तक फूल गया आँख निकल सी पड़ीं लाल-लाल नेत्र आँखों से अश्रुओं की धारा पिचकारी सी चल रही यह दृश्य जो कि भयानक हो गया उसको देख कर किशोरी भय-भीत हो गई और दौड़ कर नीचे आ गई नीचे के कमरे में यह दास बैठा कुछ पढ़ रहा था

किशोरी घबराई हुई मेरे पास आई और कहने लगी अपने घर में तो भूत आ गया है शीला की हालत अजीब है मैं तो डर गई वहां मुझ को जाने ही में डर लग रहा है मैंने किशोरी के साथ ऊपर उस कमरे में जाकर क्या देखा कि वास्तव ही में ऊपर लिखने के अनुसार ही श्री शीला माता जी का शरीर लम्बा हो रहा है हाथ पांव दुगने लम्बे हैं मस्तक फूल रहा है अश्रु धारा चल रही है जोर-जोर से कृष्ण कृष्ण की ध्वनि गंज रही है चेतना मानो नष्ट हो रही है। मैंने बाई किशोरी को सान्त्वना देते हुए कहा बाई यह तो महा भाव की अवस्था है तुम घबराओ मत हम लोगों का बहुत बड़ा सौभाग्य है जो ऐसे परम अनन्य उज्वल शुद्ध प्रेमी भक्त के दर्शन हुए मैंने दूर से साष्टाङ्ग दण्डवत कर हृदय में आनन्द उमड़ पड़ा महाभाव जो कि कलि पावनावतार श्री राधा कृष्ण युगल भावनावतार श्री-गौरांग महाप्रभु की कृष्ण विरह में जैसी स्थिति शरीरावयवों का संकोच प्रसार कछुवे के समान सुकड़ कर गठरी सा हो जाना और हाथ पांव का प्रसार लम्बे-लम्बे हो कर बढ़ जाना जो महाप्रभु के चरित्र में लिखा पढ़ा है वह सत्य सत्य प्रतीत हो गया और पूज्य श्री शीला माता जी के कृष्ण प्रेमका दर्शन लाभ हुआ जीवन की घड़ी सफल सुखद मालुम होने लगी बहुत समय तक यह अवस्था रही हम लोगों ने उस समय उनका स्पर्श नहीं किया क्यों कि माता जी ने निषेध कर रक्खा था जब सावधानता हुई तब उनको सम्भाला यह प्रत्यक्ष अपनी आँखों देखा अनुभव है ऐसी लोकातीत अवस्था जो आज कल के विज्ञान से परे का तत्व रूप सत्य सत्य चमत्कार प्रभु प्रेमियों का है जिसको देख कर भी नहीं, सुन कर भी रोमांच होता है उज्वल विशुद्ध प्रेम भगवान् की महिमा है पूज्य श्री शीला साक्षात् श्रीजी की सहचरी के ऐसे अनेक चरित्र पांच महीनों में हुए हैं उन में से इनका और भी एक चरित्र प्रेमी भक्त महापुरुषों की सेवा में अर्पण

कर रहा हूँ। ग्रन्थ के विस्तार होने के भय से संक्षिप्त रूप से लिखा है।

एक बार फाल्गुन मास (सन् १९६० का फाल्गुन मास) में एक तार श्री नाथ द्वारे से आया यह अर्जेण्ट वायर सौ० श्री शकुन्तला देवी की माताजी अत्यन्त असाध्य रुग्णावस्था में थीं उन्हीं का आशातीत समझ कर श्री शकुन्तला देवी के सहोदर भ्राता श्री महेश चन्द्र जी ओवरसीयर ने अपनी बहिन को जल्दी नाथद्वारा बुलाने के लिये भेजा था। उन दिनों पूज्य श्री सखा महाराज (काठियावाड़ के) भी विराज रहे थे यहीं पर राधा किशोरी भवन में और श्री मती शीला माता जी भी विराज रहीं थीं शकुन्तला देवी ने इन की सेवा का सुख छोड़ कर माता को देखने जाना न चाहा। तब सखा महाराज और श्रीमती शीला माता जी ने भी कहा कि अवश्य जाना चाहिये आपको श्रीशकुन्तला देवी ने कहा माताजी मैं आपको छोड़ कर नहीं जाऊँगी, तब श्री मती शीला माता जी ने कहा मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ इस पर जाने को श्री शकुन्तला राजी हो गई और दोनों श्री नाथद्वारे गये वहाँ इनकी माताजी को गर्भाशय का केन्सर हो गया और उस वक्त रोगिणी की एक टांग बहुत सूज रही थी वहाँ के डाक्टर साहब ने इस सूजन को भी असाध्य (नहीं मिटने वाला) बताया और कहा कि यह तो फटेगा और बहुत दुर्गन्ध युक्त रस निकलेगा, ला इलाज है। हालत को श्री शीला माता जी ने देखा और श्री शकुन्तला जी से कहा कि तुम राधा राधा नाम जपती हुई इस टांग पर हाथ फिराओ श्री शकुन्तला देवी ने ऐसा ही किया देखते ही देखते टांग की पूरी की पूरी सूजन गायब हो कर बिलकुल ठीक हो गई, मानो सूजन इस में थी ही नहीं यह देख कर डाक्टर, वैद्य आश्चर्य चकित हो गये घर के सब जन सुख का अनुभव करने लगे रोगिणी सुखी हो गई। कुछ दिन

बाद नाथद्वारे में ही एक दिन श्री शकुन्तला देवी ने श्री नाथ जी की राजभोग की सेवा की, वहाँ राजभोग की सेवा के लिए उन दिनों ५००) रुपये लगते थे । राज भोग की सेवा करने वाले को श्रीनाथ जी की ध्वजा की सेवा भी करनी होती है नया कपड़ा चढ़ाता है ध्वजा जी का पूजन भी होता है ध्वजा चढ़ाने और पूजन करने को श्री शकुन्तला देवी, श्री मती माता जी शीला देवी जी और श्री महेश चन्द्र जी तीनों छत पर गये ध्वजा का उत्सव होने लगा तब श्री शकुन्तला देवी जी ने श्री शीला जी से कहा माता जी हम तो श्री राधा जी के उपासक वृन्दावन वासी हैं यहाँ तो अकेले श्री कृष्ण ही दर्शन दे रहे हैं तब शीलाजी ने अपने नेत्र से ध्वजा दण्ड की तरफ देखने का संकेत किया उस संकेत से श्री शकुन्तला जी ने ध्वजा को तरफ देखा तो क्या देखतीं हैं कि ध्वज दण्ड के सहारे श्री राधा जी और श्रीकृष्ण जी दोनों गलवांहीं दिये खड़े मुस्करा रहे हैं साक्षात दर्शन किया दर्शन होते ही श्री शकुन्तला देवी मूर्छित हो गिर पड़ीं चेत हुआ और श्रीमहेश चन्द्र जी तथा श्री मती शीला माता जी इन को उठा कर नीचे ले आये तीन चार घण्टा बाद श्रीशकुन्तला देवी जी को सावधानता (देहानुसंधान) हुआ । श्री मती शीला माता जी की अहैतुकी दया ही से सतत् पांच महीने पर्य्यंत इस सुख की प्राप्ति हुई यह महा सुख बड़े पुण्यों से श्री राधा किशोरी भवन में देखा एक दिन श्रीमती शीला माता जी अज्ञात रूप से वहाँ से रात्रि में पिछली रात्रि में लगभग रात्रि अवशेष ४ बजे चली गई बहुत कुछ तलाश करने पर भी उनके दर्शनों का सौभाग्य आज तक न हुआ ।

यह परम सत्य चमत्कारिक अलौकिक लीला चरित्र प्रेमी भक्त शिरोमणि श्री मती शीला माता जी का पांच महीनों में नित्य ही भजन की महिमा देखनेमें आयी । कृष्ण नाम संकीर्तन और नाम महा-

त्म्य के विषय में कलि पावनावतार श्री कृष्ण चैतन्य महाप्रभु (गौरांग महाप्रभु) की उक्ति सर्व श्रेष्ठ है यथा—इस मायामय जगत् में श्रीकृष्ण संकीर्तन ही विजय को प्राप्त होता है (१) यही चित्त रूपी दर्पण (ग्लास) का शोधन करने वाला है (२) संसार रूपी महादावानल को नष्ट करने वाला है (३) कल्याण रूपी कुमुदनी के विकास के लिये चन्द्रिका का विस्तार करने वाला है (४) विद्या रूप वधू का जीवन रूप है (५) आनन्द रूपी समुद्र को बढ़ाने वाला है (६) पद-पद पर पूर्ण अमृत का आस्वादन कराने वाला है (७) भीतर बाहिर से सर्वतोभावेन अन्त:करण पर्यन्त स्नान करा देता है अर्थात् जीवों के अन्त:करण के समस्त पापों को नष्ट कर देता है इस प्रकार नाम संकीर्तन की सात भूमिकायें हैं।

चेतो दर्पण मार्जनं भव महादावाग्नि निर्वापणं—
श्रेय: कैरव चन्द्रिका वितरणं विद्यावधू जीवनम् ।
आनन्दाम्बुधि वर्धनं प्रति पदं पूर्णामृतास्वादनं—
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्ण संकीर्तनम् ।।

श्री राधा कृष्ण सम्मिलित अवतार श्री गौरांग महाप्रभु की स्तुति के दस श्लोक नित्य पाठ करने की अमोघ वस्तु है।

श्री मद् महाप्रभु की दस श्लोकी स्तुति

स्वादं स्वादं मधुरिम भरं स्वीय नामा वलीनां
मादं मादं किमपि विवशी भूत विस्रस्त गात्र:
वारं वारं व्रजपति गुणान् गाय गायेति जल्पन्
गौरो दृष्ट: सकृदपि न यैर्दुर्घटा तेषु भक्ति: ।।१।।

दृष्ट्वा माद्यति नूतनाम्बुदचयं संवीक्ष्य बर्हं भवे-
दत्यंतं विकलो विलोक्य वलितां गुञ्जावलीं वेपते
दृष्टे श्याम किशोर केऽपि चकितं धत्ते चमत्कारिता-
मित्थं गौरतनुः प्रचारित निज प्रेमा हरि पातु वः॥२॥

सिञ्चन् सिञ्चन् नयन पयसा पांडु गण्ड स्थलानां
मुञ्चन् मुञ्चन् प्रति मुहु रहो दीर्घ निश्वास जातम्
उच्चै क्रन्दन करुण करुणो दीर्घ हाहेति नादो
गौरः कोऽपि व्रज विरहिणो भाव मग्न श्चकास्ति ॥३॥

मुञ्चं मुञ्चं मधुर मधुर प्रेम माध्वी रसानां
दत्वा दत्वा स्वयमुरुदयो मोदयन् विश्वमेतत्
एको देवः कटि तट मिलन्मंजु मञ्जिष्ठ वासा
भासा निर्मितसित नव तडित्कोटि रेव प्रियो मे ॥४॥

अश्रुणां किमपि प्रवाह निवहैः क्षोणीं पुरः पाङ्किली
कुर्वन् पर्णतलो निधाय बदरी पांडु कपोलस्थलीम्
आश्चर्यं लवणोद रोधसि वसन् शोणं दधानोऽशुकं
गौरो भूयहरिः स्वयं वितनुते राधापदाब्जे रतिम् ॥५॥

क्षणं हसति रोदति क्षणमथ क्षणं मूर्च्छति
क्षणं लुठति धावति क्षणमथ क्षणं नृत्यति
क्षणं श्वसिति मुञ्चति क्षणमुदार हाहा रवं
महा प्रणय लीलया विहरतीह गौरो हरिः ॥६॥

क्षणं क्षीणः पीनः क्षणमहह साश्रुः क्षणमथ
क्षणं स्मेर शीतः क्षणमनवतप्तः क्षणमपि

क्षणं धावन् स्तब्ध क्षणमधिक जल्पन् क्षणमहो
क्षणं मूको गौरः स्फुरतु मम देहो भगवतः ॥७॥

पात्रापात्र विचारणं न कुरुते न स्वं परं वीक्षते
देयादेय विमर्शको नहि नवः काल प्रतीक्षा प्रभुः
सद्योयः श्रवणे क्षण-क्षण प्रणमन ध्यानादिना दुर्लभं
दत्ते भक्ति रसम् सएव भगवान् गौर परं मे गति ॥८॥

संसार सिंधु तरणे हृदयं यदि स्यात्
संकीर्तनामृत रसे रमते मनश्चेत्
प्रेमाम्बुधौ विहरणे यदि चित्तवृत्ति
चैतन्य चन्द्र चरणे शरणं प्रयातु ॥९॥

निन्दन्तं पुलकोत्करेण विकसन्नीप प्रसूनच्छविं
प्रोर्द्धीकृत्यभुजद्वयं हरि हरीत्युच्चै र्वदन्तं मुहुः
नृत्यन्तंद्रुतमश्रु निर्झरचयैः सिञ्चन्त मुर्वीतलम्
गायद्भिर्निजपार्षदैः परिवृतं श्रीगौर चन्द्रं नमः ॥१०॥

कलिकाल के जीवों पर करुणा कर परात्पर सच्चिदानन्द ही श्री गौरांग महाप्रभु के रूप में अवतरित हुए हैं। इनके श्रीचरणों में दृढ़ भक्ति रखते हुए महाप्रभु की आज्ञानुसार श्री कृष्ण संकीर्तन करने वाले पराभक्ति (प्रेम लक्षण भक्ति की प्राप्ति कर भगवान् में धाम को प्राप्त करते हैं नाम संकीर्तन अथाह भवसागर को पार करने के लिये सुदृढ़ जहाज ही है। बोलो श्री गौरांग महाप्रभु की जय हो जय हो।

—**—

एक ब्रजभक्त की साधना तथा अनुभूति

जय कृष्णदास नाम के एक गौड़ीय सन्त श्री राधा कुण्ड के समीप वर्ती विचेल्लीवास गांव में भजन करते थे। उस समय श्रीराधा कुण्ड के जगदानन्द दास पण्डित बाबाजी विशेष प्रभाव शाली थे। उन के गुरु श्री भगवान दास बाबा से इनका विशेष सौहार्द था।

एक बार बाबा जयकृष्ण दास विचेल्ली वास गांव की अपनी भजन कुटिया में भजन कर रहे थे उस समय श्री नित्यानन्द वंशज गोस्वामी श्री नन्द किशोर जी ने ब्रज की परिक्रमा करते हुए विचेल्ली-वास गांव में आकर अवस्थान किया। उनके साथ उनके सेव्य श्रीराधा मदन मोहन ठाकुर थे, एक दिन रात्री में श्री नन्द किशोर गोस्वामी [ ] में श्री राधामदन मोहन भगवान् ने आदेश दिया कि मैं अब इन बाबाजी (जय कृष्ण दास) की सेवा स्वीकार करूँगा। मैं अब आगे नहीं जाऊँगा। यह आदेश पा श्रीयुगल सरकार की सेवा श्रीजय-कृष्ण दास बाबा को देकर नव किशोर गोस्वामी स्वयं प्रस्थान कर गए।

जय कृष्ण दास बाबा जी की श्री कृष्ण चरणारविंद में पूरी भक्ति थी और अपने भगवान् श्रीराधामदन मोहन के चरणारविंदों में यथार्थ रति थी। भगवत् कथा सुनते हुए ऐसे भावाविष्ट हो जाते कि उन के सिर के बाल खड़े हो जाते। जब कभी प्रेमावेश में हुँकार करते तो कुटिया हिलने लगती और सारा गांव गूँज उठता था। दिन रात भजन करते रहते रात्रि भर जप करते रहते, गोवर्द्धन के

दिन रात भजन करते रहते रात्रि भर जप करते रहते, गोवर्द्धन के सिद्ध मधुसूदन बाबा भी इन के शिष्य थे। सिद्ध मधुसूदन बाबा ने इन से पूछा कि रागानुगा भजन क्या है? वह बोले सिद्ध गुरुवर के अनुगत हो कर उनकी कृपा से प्राप्त सिद्धि गोपी रूप मञ्जरी की देह से सेवा करने का नाम ही रागानुगा भजन है। यह भजन ही गोविन्द प्राप्ति का उपाय है। यह जय कृष्ण दास श्री रूप सनातन के भजन रीति के और त्याग के अनुगामी थे। वह विषयी लोगों से दूर ही रहते थे। जीर्ण वस्त्र जो मार्ग में पड़े रहते उसी का कंथा धारण करते थे।

श्री वृन्दा देवी के स्वप्न आदेश से यह महात्मा कामवन के विमल कुण्ड पर अपना भजन स्थान फूस की कुटिया बना कर उसमें भजन करने लगे।

उन दिनों में कामवन भरतपुर राज्य स्थान के राजा के आधीन था, एक दिन जब ये मधुकरी मांगने दूर के गांव में चले गये उस समय भरतपुर महाराज उनकी कुटिया में आकर दर्शनार्थ बैठ गये, जयकृष्णदास बाबा दिन भर उस दिन उस गांव में नहीं आये राजा के चले जाने पर अपनी कुटिया में बाबा ने प्रवेश किया राजा से मिले भी नहीं। बाबा वैराग्य पूर्ण भजन करने में निपुण थे।

एक दिन जयकृष्ण दास बाबा कुटिया में बैठे इष्ट विरह में अधीर थे। सन्ध्या हो गई किन्तु कुटिया के बाहर स्नान आदि के लिये भी न निकले। इतने में देखते हैं कि विमल कुण्ड के चारों तरफ असंख्य गऊ और ग्वाल बाल उपस्थित हैं। बाबा जी को कुटिया के बाहर आते देख कर बोले 'बाबा' हम बड़े प्यासे हैं, हम को जल दो बाबा जी बिना उत्तर दिये ही वापिस कुटिया में बैठ गये। ग्वाल

बालों की बात सुनी अनसुनी कर दी। किन्तु बाल गण कुटिया के बाहर उत्पात करने लगे और कहने लगे 'बंगाली बाबा जी तुम जिस लिये भजन करते हो, मैं सब जानता हूँ। तू दया हीन महन्त कसाई की तरह बैठा है। बाबा जी कुटिया से निकल कर जल पिला दे हम सब बहुत प्यासे हैं। तब बाबा जी क्रोधित हो एक डण्डा लेकर बाहर निकले तो असंख्य अद्भुत गौ और गोपाल गणों को देखा। उन के दर्शन करते ही बाबा जी का क्रोध शान्त हो गया, और उनसे जिज्ञासा करने लगे 'तुम लोग कहां से आये और कहां रहते हो? वे बोले 'हम नन्द गांव में रहते हैं।

बाबा जी:—तुम्हारा नाम क्या है?

बालक:—मेरौ नाम कन्हैया है।

बाबाजी:—(दूसरे बालक की ओर इंगित करके) उनका क्या नाम है?

बालक:—बलदाऊ है।

पुनः बाबा जी पहिले तुम पानी पिलाओ, फिर बात करना।

स्नेह वश तब बाबा ने करवे का जल पिला दिया।

बालक:—देख बाबा जी! हम लोग नित्य बहुत दूर से आते हैं। और प्यासे चले जाते हैं। तू कुछ जल व बाल भोग रखा कर।

बाबा जी:—यहां नित्य आने व खाने की उपाधि मत करना।

यह कह कर बाबा जी कुटिया में बैठ गये और विचार करने लगे कि ऐसे अद्भुत गोप शिशु और गौ तो कभी देखे नहीं। गोप बालक की गाली भी कैसी मधुर लगी। ये गायें और गोप बालक तो

दिव्य लगते हैं। चिंता करते-करते फिर दुबारा देखने की चाह हुई, बाहर आये तो सब अन्तर्ध्यान हो चुके थे। बाबा जी दु:खी हो गये और अनुताप करने लगे। पुन: प्रेमाविष्ट हो गये तो देखा श्री कृष्ण सामने खड़े सान्त्वना देते कह रहे हैं तू उठ शोक मत कर कल मैं तेरे पास आऊँगा। बाबा जी का आवेश भंग हो गया और उन्होंने धैर्य धारण किया।

दूसरे दिन एक वृद्धा व्रज वासिनी एक गोपाल जी की मूर्ति लेकर आई और कहने लगी, बाबा जी ! हम से इन गोपाल जी की सेवा नहीं होती है। तू इन गोपाल जी की सेवा कर।

बाबा जी बोले हम कैसे सेवा करेंगे। हम सेवा की चीज कहाँ से लावेंगे ?

वृद्धा बोली—मैं नित्य सेवा की चीज तुमको ला दिया करूँगी।

बाबा जी श्री गोपाल जी का सौन्दर्य और माधुरी देख मुग्ध हो गये और उन गोपाल जी को ले लिया तथा सेवा करने लगे। रात्रि में दर्शन दिया और कहा मुझको वृन्दादेवी ले आई हैं। यह स्वप्न का सुख बाबा ने देखा श्री वृन्दादेवी की कृपा का अनुसन्धान बाबा ने किया।

बाबा गांव से चून मांगने और अमनियां सिद्ध कर गोपाल जी को भोग लगाकर प्रसाद पाते। रात्रि-भर बैठ कर भजन करते।

चैत्र शुक्ला द्वादशी को बाबा निकुञ्ज पधारे। निकुञ्ज-प्राप्ति के समय बाबा कहने लगे—'मेरी अँगिया कहाँ ? मेरी कंचुकी कहाँ ? मेरा घाघरा कहाँ ? मेरी ओढ़नी कहाँ ? इत्यादि अभिसारिका भाव की स्वाभिलाष सूचना देते हुए देह त्याग किया।

श्रीगिरिराज का चमत्कार पूर्ण अनुग्रह

इसी आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की एकादशी के दिन मथुरा वृन्दावन से लगभग दो सौ स्त्री-पुरुष प्रातःकाल ६ बजे ३ बसें और मोटर कारों में बैठ कर श्री गोवर्द्धन पहुँचे उस यूथ में अनेक गृहस्थ, साधु, गोस्वामी सब ही प्रकार के व्यक्ति श्रीगिरिराज की परिक्रमा में शामिल थे।

लगभग ७ बजे प्रातःकाल दान घाटी (गोवर्द्धन) स्थित मुखारविन्द से परिक्रमा का श्रीगणेश हुआ। प्रथम मुखारविन्द के पूजन तथा दर्शन किए। बाद में सङ्कीर्तन करते हुए प्रथम परिक्रमा यतीपुरा की ओर शुरू हुई।

बड़े समारोह पूर्वक २०० स्त्री-पुरुष कीर्तन और नामध्वनि करते हुए पूँछरी पर पहुँच कर विश्राम किया। वहीं पर श्री गिरिराज जी का २ मन दूध से अभिषेक हुआ प्रसाद पाया और गौराङ्ग-लीलानुकरण श्री स्वामी कुँवरपाल जी की मण्डली द्वारा हुआ। सायंकाल वहाँ से प्रस्थान कर यतीपुरा होते हुए श्री गोवर्द्धन मानसी गङ्गा पर रात्रि में विश्राम किया। दूसरे दिन ६ बजे पुनः परिक्रमा देते राधाकुण्ड पहुँचे वहाँ सब ही ने स्नान कर दर्शन एवं नामध्वनि का सुख प्राप्त किया।

[उन्तीस]

श्री राधाकुण्ड में अपूर्व चमत्कार

प्रयागराज निवासी एक पण्डित जी जो परिक्रमा में हम लोगों के साथ श्री राधा कृपा कटाक्ष का पाठ करते हुए परिक्रमा दे रहे थे। पण्डित जी श्री राधाकुण्ड, कृष्णकुण्ड में स्नान कर राधाकुण्ड के तट पर बैठे हुए जप कर रहे थे। उस समय क्या दृश्य इनके नेत्रों के समक्ष दीखने लगा कि श्री राधाकुण्ड के मध्य जल के ऊपर सुनहरी बादल (चमकीला कुहरा-सा) छा गया। स्वर्णमय प्रकाश हो रहा है और श्री राधाकुण्ड के मध्य जल में एक स्वर्ण की लम्बी बड़ी सुन्दर नौका देखी उस नौका में ६ सुन्दर सखियाँ जिनकी उमर लगभग १४ या १५ वर्ष की होगी सुन्दर वस्त्रालङ्कार धारण किये उस नौका में विराज रही हैं। वह सखियाँ परस्पर मधुर-मधुर स्वर से वार्तालाप कर रही है। इन सखियों का शील सौन्दर्य लावण्य परम अद्भुत मनोहर है। यह दृश्य लगभग १५ मिनट तक पण्डित जी को दीखता रहा अनन्तर अदृश्य हो गया इस घटना को देख कर पण्डित जी के भाव भक्ति श्री गिरिराज और राधाकुण्ड के प्रति दृढ़ हो गई। पण्डित जी जब जप आदि से निवृत्त हो गये तब वहाँ उपस्थित (परिक्रमा करने वालों में) गोस्वामी श्री पुरुषोत्तमलाल जी महाराज (राधारमणजी वाले) और जयदयाल जी डालमिया आदि को सुनाया। लोगों ने देखा पण्डित जी भावाविष्ट हो रहे हैं। उनकी वाणी गद्गद् हो रही है। शरीर पुलकान्वित है, मुख पर उल्लास और आनन्द छा रहा है। कई मेरे जैसे सत्तर-अस्सी वर्ष की आयु वाले स्त्री-पुरुष उस परिक्रमा करने में शामिल थे। जिनसे एक माइल भी चलना असम्भव है उन्होंने बिना जूता, खड़ाँउ पहिने पैदल १४ मील की परिक्रमा की,

किन्तु कुछ भी थकावट की प्रतीति न हुई और आनन्द से पूरी परिक्रमा दी यह श्री गिरिराज महाराज का ही अनुग्रह है।

आजकल के लोगों में भी श्री गिरिराज महाराज के चरणारविन्दों में अटल श्रद्धा देखी जा रही है। हजारों मन दूध का अभिषेक प्रतिवर्ष श्री गिरिराज जी का हो जाता है। कई सन्त और गृहस्थ दण्डवत पूर्वक पूरे १४ कोस की परिक्रमा आज भी करते आ रहे हैं।

भारतवर्ष के सब ही प्रान्तों के लोग परिक्रमा देने को प्रतिवर्ष आते हैं। जिनकी संख्या कई लाखों की होगी। परिक्रमा करने वाले भक्तों के हृदय में परिक्रमा देते समय श्री कृष्ण लीला के अनेक भाव उमड़ते हैं। श्री गिरिराज का पावन दृश्य ही ऐसा है। वहां के स्थान वहाँ की भूमि श्रीकृष्ण लीलामयी है। यात्रियों के हृदय में से राजसी तामसी भाव अदृश्य से होकर भक्ति भावना युक्त सात्विक गुण का आधिक्य हो जाता है।
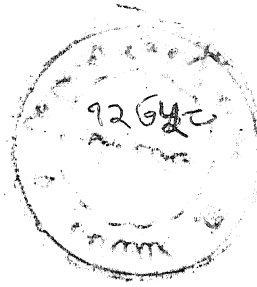
✻ श्री राधावल्लभो जयति ✻

✻ श्री हित हरिवंशचन्द्रो जयति ✻

श्रीराधासुधानिधि

रसकुल्या व्याख्या

हिन्दी भाषानुवाद सहित

तन्नः प्रतिक्षणचमत्कृत चारु लीला—
लावण्य मोहन महामधुराङ्गभङ्गि ।
राधाननं हि मधुराङ्ग कलानिधान—
माविर्भविष्यति कदा रससिन्धुसारम् ॥६॥

पद—तत् नः प्रतिक्षणचमत्कृत चारु लीला—
लावन्य मोहन महामधुराङ्गभङ्गि
राधाननं हि मधुराङ्ग कलानिधानं
आविःभविष्यति कदा रससिन्धुसारम् ॥ इति ॥

अन्वय—तत् राधाननं नः कदाविर्भविष्यति कथं भूतं राधाननं प्रतिक्षणचमत्कृत चारुलीला लावण्य मोहन महा मधुराङ्गभङ्गि मधुराङ्ग कलानिधानं रससिंधुसारं ।

अन्वितार्थ—तत् राधाननं नोऽस्माकं कदाविर्भविष्यति कथं भूतं राधाननं रससिन्धु सारं पुनः मधुराङ्गकलानिधानं । पुनः प्रतिक्षण

चमत्कृत चारु लीला लावण्य मोहन महा मधुरांग भंगि।

कवित्त—क्षण-क्षण प्रति चमत्कृत चारु अति लीला
जाकी पानिप लुनाई महा मोहिनी सौ हास है ॥
मधुर अंग-भंगी नवरंग रंग रंगी निधि
रूप जो तरंगी सो तरंगन विलास है।
ऐसो जो मधुर अंग रस सिंधु सार चारु
ताहि को विचार बाढ़त हुलास है॥
(हितदास भोरी)

दोहा—चमत्कार दिन-दिन सरस लीलामय अवतार।
चित चोरत लावण्यजुत, श्रवत माधुरी धार॥
अंग अंग रसनिधि मधुर, ताकौ सार अनूप।
कब देखौं इन दृगन अस, रुचिर राधिका रूप॥
(श्री किशोरीलाल जी)

सरल हिन्दी अनुवाद—

जिस मुखारविन्द से प्रतिक्षण महा मोहन माधुर्य के नाना विधि अंगों की भंगिमा युक्त सुन्दर सुन्दर लावण्य युक्त लीलाओं का चमत्कार होता रहता है और जो माधुर्य के अवयवों की चतुराई का उत्पत्ति स्थान है, वही समस्त रस-सार-सिन्धु श्रीराधानन हमारे नेत्रों के आगे कब प्रगट होगा ॥६॥

भाव—श्री चरण-रेणु-स्मरण और जय-जय कार की भावना को लेकर सखी का मन उत्साहित होकर उपरोक्त छठे श्लोक में रस-सिंधु श्री राधामुख चन्द्र के दर्शनों की अभिलाषा व्यक्त की है।

संक्षिप्त संस्कृत टीका—

एवं तावच्छुद्धं मानसं कर्म विभाव्य किञ्चित्तत्राधिकारप्राप्त मात्मात्मानमालक्ष्य मनसा चाक्षुषं भावयति तन्न इति। तद्राधाननं नोऽस्माकं कदा आविर्भविष्यति। चाक्षुष विषयी भविष्यति। कथं भूतं राधाननं—प्रतिक्षण चमत्कृत चारुलीला लावण्यमोहनमहामधुरांग-भङ्गि। प्रतिक्षणं क्षणं क्षणं प्रति चमत्कृता अद्भुता या लीला तस्यां

यत् लावण्यं तस्मिन् लावण्ये एतादृशो यो मोहनः श्यामसुन्दरः तस्य महामधुरांगानां भंगयो यस्मिंस्तत् । पुनः कथं भूतं राधाननं । मधुरांग कलानिधानं मधुरातीति मधुरः । मधुरस्य अंगानि तान्येव कलारूपत्वेन निधीयंते यस्मिन् तत् । मधुरानि इति मधुरः । रादाने । "मधु पुष्परसे क्षौद्रे मद्ये नातु मधु द्रुमे इति मेदिनी कोषे । "मधु मद्य मधुक्षौद्रं मधु पुष्परसं विदुः । मधुदैत्यो मधुश्चैत्रो मधुकोऽपि मधुर्मतः । इत्यनेकार्थे ।

मधुरस्य अंगानि मधुरांगानि, तान्येव कलारूपत्वेन निधीयंते यस्मिन् तत् । कोटिचंद्रप्रतिमत्वात् कलानिधानम् । यद्वा कलं आसमंतात् निधीयते यस्मिन् । ककार लकारयोर्योगे कामबीज भवति । अनेन यदा श्रीकृष्णेन श्रीप्रियामुखं दृश्यते तदैव कामोत्पत्तिर्भवति तस्मान्निधानमित्यर्थः । पुनः कथं भूतं राधाननं । रससिंधुसारम् । रसो नदात्मजः । 'रसो वैसं' इत्यस्मात् स एव महत्त्वात् सिंधुः सः । यद्राधाननं दृष्ट्वा सिंधुवद् वर्द्धते तस्मात् सिंधुसारं तन् मुखसंबंधादेव तस्य सिन्धुत्वं मुखस्य नित्यपूर्णचंद्रत्वात् स्वयं वर्द्धमानत्वमिति भावः ॥६॥

रसकुल्या संस्कृत टीका

तदेवमनुपलक्षितविशेष स्वरूपमुक्तमिदानीं पियूषसेचनीत्वं स्मरन् स्वतापशान्तिमाशंसमानो विरहकातर्य्य विवशः प्रलपन्निव गोपनीयमपि साक्षान्नामकथयंस्तथा स्वलोचन बिलसितचरमप्यानन्नं साक्षाद्द्रष्टुमभिलषति तन्न इति ।

तदिति यस्याः दिव्य प्रमोदादिमयांगानित्वमुक्तं स्वेन पूर्वानुभूतं च यद्राधाननं मधुरांगकलानिधानं हि नः कदाऽपि भविष्यतीतिसम्बन्धः । मधुरेति कलानिधानमिति प्रसिद्ध-

चन्द्र अतिशीतल कलंक क्षयादि धर्मवत्वाद्वै लक्षण्यमुक्तम् । अत्र शाखाचन्द्रवदुपमाज्ञेया । चन्द्रस्तु कस्यापि सुखदः कस्यापि दुखदः । इदन्तु केवलं मधुरांगमेव सुखदमित्यर्थः । निधानमिति पूर्णत्वम् ।

यद्वा मधुरान्येवांगान्येव कलास्तासां महानिधिवत् विषयम् ।

यद्वा मधुरो मूर्तिमान् यत्र राजते यथा तेजसो मूर्तिः सूर्य इति सोप्यंगमंशे यासां तादृश्यों गिभूताः परमांशिरूपाः कलास्तासामाश्रयमिति हि निश्चयं निरपेक्षैश्वर्य्यं नः अस्मभ्य इति बहुत्वं सजातीय सहृदयाभिप्रायेण सप्रेमाभिमान ममत्वातिशय बोधनार्थश्च ।

कदेति कृपार्थे महाविरह भरेण दुर्लभत्व द्योतनंवा । प्राप्तव्येऽर्थेऽपि तन्मध्यपातिक्षणविलंबा सहमानः कदेति वदति आविर्भविष्यति उदेष्यति । सदा यथास्थितमेव श्रीवृन्दावने सप्रिय सभा मण्डलोदितमेव लोकप्रतीत्यगोचरं यथा स्थितोप्यदृश्यः तथेदमपि यान् कृपयांगीकरोति तदर्थ मेवाबिर्भवतीति । एवमस्मदर्थं कदा कृपयाऽविर्भविष्यति । चन्द्रोपमत्वार्तिसधुजन्यत्वमाह । रसेति रसएवसिधुस्तस्मिन् सारं श्रेष्ठं उत्तमांगत्वात् । प्रथमन्तु सारात्सारो रसस्तस्यसिन्धुरिति श्रीमदंगानि तेष्वपि सारं श्रेष्ठं । अत्र तारतम्यं न शक्यम् । एकवस्तुन्यपि पूर्वापर भागः कथन मात्र एवेतिवत् ।

यद्वा—रससिन्धुउन्मथ सारवदुधृतं परात् परोरसोवैसः 'रसं ह्येवायंलब्ध्वा नंदीभवतीत्यादि प्रसिद्धो रस

स्तस्यसिन्धुरतलस्पर्शानंतमत्वातत् सारभूतोऽयमाननं (भूतमिदमाननं) चन्द्र इति रसानंदघनस्यापि आनंद कत्वादितिभावः ॥१॥※ पुनरपि वैलक्षण्यमाह-प्रतिक्षणेति, चमत्कारादिषड्विशेषेण विशिष्टांगभंगि यस्मिन् तत् प्रति-क्षणमिति तदुपादानक नवाभिनवत्वमितिपदमन्वेतव्यं। चमत्कृतं प्रसरत् प्रभा पुंज मंजरीत्वमाश्चर्या धायकञ्च ॥१॥

चारु मनोदृष्टिहर यथोक्तेक्षण सूक्ष्म विशाल तीव्र चक्र वृत्ताद्यंग वर्णादि सौन्दर्यम् ॥२॥ लीला मुग्ध विदग्ध कौतुक कार्यारंभसूचनं ॥३॥ लावण्यं रोचकत्वं यथातिमिष्ट रोचक व्यंजनादि ॥४॥ मोहनं सजातीय विजातीयेतर स्मृति निरोधनं॥५॥ महा मधुरं मधुरांगेष्वपि प्रोज्जृम्भमाण भंगीनां अत्यंत मधुरत्वं दृष्टिरसनालांपट्य ग्राहकं सशिर-श्चालन प्रशंसनीयञ्च ॥६॥

रसकुल्या संस्कृत टीका की हिन्दी टीका

पूर्व के पाचवें श्लोक में ग्रन्थकार ने श्री प्रियाजी के अनुपल-क्षित स्वरूप इस प्रकार का है ऐसा (इत्थंता विशेषतः) नहीं कहा था। अब तन्नः प्रतिक्षणेत्यादि श्लोक में श्री प्रियाजी के पियूष सिंचन-कारी स्वरूप का स्मरण करते हुए अपने ताप शान्ति की वाञ्छा पूर्वक श्री प्रियाजी के विरह कातरता के वशीभूत हुई और विरह ताप से तप्त हुई जिनके नाम को अत्यंत ही गुप्त रखना चाहिये अर्थात् स्वमुख से उच्चारण करना ही नहीं चाहिये था।

※कर्त्ता कर्म के साथ क्रिया का अन्वय करते हुए आकांक्षा उठा रखकर अन्य विशेषण तथा कारकों का अन्वय किया जाता है वह खण्डान्वय कहाता है। यह सम्बन्ध अन्वय का पर्याय है।

उसका भी उच्चारण करते हुए, सर्व काल अपने नेत्रों के समक्ष नृत्य कर रहा हो ऐसे श्रीप्रिया मुखारविन्द को साक्षात् देखने की अभिलाषा करते हुए सखी रूप में (तन्नः प्रतिक्षण) श्लोक से कहते हैं।

पूर्व के दिव्य प्रमोदादि श्लोक में जिनका प्रमोद आदिमय अंग है ऐसा कहा था, तथा स्वयं का अनुभूत जो राधा मुखारविन्द है वह मुखारविन्द हमारे (हम सब स्नेहियों के) लिये अर्थात् हमारे समक्ष कब प्रकट होगा। इतिसंबंधः यहां संबन्ध शब्द अन्वय का पर्याय मानना चाहिये। यह खण्डान्वय है।※

वह श्रीराधा मुखचन्द्र कैसा है कि मधुरांगकलाओं की निधि है। यह मुखचन्द्र मधुर है और कलाओं की निधि भी है। यहां मधुर और कला निधान इन दो पर्य्यायों को देने का आशय यह है कि लौकिक आकाश का चन्द्रमा अति शीतल और कलंक (घटने बढ़ने) वाला भी है और श्री मद्राधा मुखचन्द्र उपरोक्त दोष रहित होकर मधुर और कला निधान है। अर्थात् आकाश का लौकिक चन्द्रमा सर्वथा मधुर और सर्वथा सुखदायी भी नहीं है क्योंकि यह लौकिक चन्द्र संयोगी को सुखद और वियोगी को दुखद पित्त प्रकृति को सुखद श्लैष्मिक प्रकृति वाले को दुःखद इत्यादि दोष युक्त है और श्रीप्रिया मुखचन्द्र उपरोक्त दोष विहीन तथा सर्वदा मधुर एवं सर्व सुखद है। राधा मुखचन्द्र सुखदायी मात्र है। प्रिया मुखचन्द्र को प्राकृतचन्द्र की उपमा शाखाचन्द्र न्याय से दी गई है तुल्यार्थ उपमा नहीं है। यह (रूप का लंकार है)

※ अन्वय दो प्रकार से किये जाते हैं, १ दण्डान्वय, और २ खण्डान्वय। दण्डान्वय में तो सविशेषण लगाकर अंत में क्रिया लगाई जाती है। खण्डान्वय में कर्त्ता कर्म के साथ क्रिया का अन्वय करके आकांक्षा उठाकर इतरविशेषण तथा कारकों का अन्वय किया जाता है। अतः यहाँ खण्डान्वय किया गया है।

अत: लौकिक चन्द्र से प्रिया मुखचन्द्र की विलक्षणता है कलानिधान कहने का भाव पूर्णत्व बताने का है।

दूसरा अर्थ—श्री प्रियाजी के मधुर अंग ही मानो कलाएँ हैं, उन कलाओं की निधि यह प्रिया मुख है।

तीसरा अर्थ—मधुर रस ही जहाँ साक्षात् मूर्तिमान होकर विराज रहा है, जैसे तेज की मूर्ति सूर्य है। मधुर रस भी जिन कलाओं का अंग है अर्थात् अंश है ऐसी अंगीभूत परमांशस्वरूपिणी जो कलाएँ हैं उन कलाओं का आधार यह श्री प्रिया मुख है यह निश्चय अर्थ है। निरपेक्ष ऐश्वर्य वाला अर्थात् समस्त शोभाआदि ऐश्वर्य पूर्ण वह श्री प्रिया आनन हमारे (सजातीय रसिक भक्तों के) समक्ष कब प्रकट होगा। यह नः बहुवचन (अर्थात् हम सबके सामने प्रकट होगा) कहने का आशय है कि हमारे यावन् मात्र कृपापात्र सजातीय रसिक भक्तों को उस राधानन का कब दर्शन होगा।

यहाँ हम सबको कहना आचार्य श्री की प्रकट उदारता है। क्योंकि हम सब प्रियाजी के हैं। इस महान् प्रेम-ममत्व अभिमान से मानवाचक बहुबचन दिया और प्रिया जी के प्रेम पात्र अपने को मानते हुए प्रिया सम्बन्ध से अपने को प्रिया सम्बन्धी के नाते (प्रियाजी का सम्बन्धी हूँ इसलिए) अपने लिये भी बहुवचन का प्रयोग किया इसमें प्रिया का ही गौरव प्रयोजनीय है। यहां कदा (कब) शब्द का प्रयोग कृपा के अर्थ में हुआ है।

दूसरा अर्थ—दुर्लभता के द्योतनार्थ है अर्थात्, रसिकजन महा विरह में डूबे हुए राधा मुखचन्द्र का दर्शन दुर्लभ है ऐसा अनुभव करते हैं। भाव यह है कि विरह असह्य हो रहा है अतः कब होगा, यह दुर्लभ ही है यह कहते हैं। श्री प्रियाजी तो सखी मण्डल (वृन्दावन) में प्रीतम के साथ सदा ही विराजमान होते हुए भी दूसरों को नजर नहीं आ रही हैं जैसे आकाश में चन्द्रमा तो ज्यों का त्यों विद्यमान

रहते हुए भी पर्वत आदि की छाया (आड़) से छिप जाने के कारण लोगों को चन्द्र नहीं दीखता है। उसी प्रकार प्रियाजी की कृपा होने पर अपने कर्मों की आड़ हट जाती है अर्थात् श्री प्रिया जिसको अपनी कृपा का पात्र बनाकर अपना लेती हैं उन्हीं को दर्शन लभ्य होता है अतः यह उत्कंठा से कहते हैं कि हम पर कृपा कर कब दर्शन देंगी यह कदा शब्द का भाव है।

श्रीराधा मुख की उपमा पूर्णचन्द्र की तरह होने से समुद्र से उत्पत्ति बतलाई है रससिन्धुसारं रस कहने से मानो रस ही का समुद्र है उस रस के समुद्र में सारभूत (श्रेष्ठ) मुख है। मुख उत्तमांग होने से श्रेष्ठ है। इसको इस प्रकार समझना है कि सार वस्तुओं में सार रस है वह रस श्री प्रियाजी के श्री अङ्ग है इन अङ्गों में भी सार श्रेष्ठ श्री मुख है यहाँ पर रहस्य यह है कि श्रीजी के अन्य अवयवों को रस कहा और उनमें श्रीमुख को रस सार कहा जिससे यहां सार और सार श्रेष्ठ कहना मात्र ही है तत्वतः नहीं है अर्थात् अन्य अंग और मुख में तारतम्य भाव नहीं है क्योंकि एक ही वस्तु में पूर्व और पर भाव नहीं होता है। अर्थात् उत्तमतर और उत्तमतम एक वस्तु में होता नहीं अर्थात् श्री प्रिया जी के सम्पूर्ण अंग सारतम एवं मधुरतम ही हैं। जैसा कि श्रीमद्वल्लभाचार्य महाप्रभु रचित् मधुराष्टक स्तोत्र में प्रभु के संपूर्ण अंग मधुर ही मधुर बताए हैं।

अन्य अर्थ—जैसे रस सिंधु के मथन से निकला हुआ परात्पर 'रसो वै सः' इत्यादि श्रुतिप्रतिपादित❀ रस है प्रतिपादित रस का भी समुन्द्र अर्थात् अथाह अगाध (अतलस्पर्शी) आनन्त्य सिद्ध है उस अगाध रससिंधु का सार भूत श्री प्रिया मुखचन्द्र है क्योंकि रसानन्द-

---

❀ बृहदारण्यक उपनिषद् (मैत्रेय ब्राह्मण भाग) में प्रदर्शित "स यथा सैंधवघनोऽनंतरोऽबाह्यः कृत्स्नो रस घन एव। एवं वा अरेऽयमात्मा अनंतरोऽबाह्यः कृत्स्नः प्रज्ञान घन एव इति।

घन परात्पर जो ब्रह्म श्रीकृष्ण हैं उनका भी आनन्दकन्द है अर्थात् उनको भी आनन्दित करने वाला यह श्री मुखचन्द्र है।

इस मुखचन्द्र की और भी विलक्षणता है उसको कहते हैं कि यह मुखचन्द्र प्रतिक्षण चमत्कार आदि छः विशेषण विशिष्ट अंगभंगि है।

प्रतिक्षण चमत्कृत चारुलीला-
लावण्य मोहन महामधुरांगभंगि।

प्रतिपद अर्थात् छः ही विशेषणों के साथ प्रतिक्षण का अन्वय होता है क्योंकि प्रतिक्षण छः विशेषण विशिष्टता का उपपादक है। प्रतिक्षण नव नवायमान है।

१. प्रतिक्षण चमत्कृत—क्षण क्षण फैलती हुई प्रभा पुञ्जरूप मंजरी वाला तथा आश्चर्य में डालने वाला राधामुखचन्द्र है।

२. चारु—मन और दृष्टि को चुराने वाला मुखचन्द्र है जैसे दृष्टि की चारुता, नेत्रों की विशालता, सूक्ष्मता, दीर्घता, नुकीला, तीखापन (पैनी आँख), चक्रवृत्त आदि अंगवर्ण से सुन्दर नेत्र।

३. लीला—का अर्थ है, मुग्ध (भोली सूरत) विदग्ध (चातुय-पूर्ण) कोतुक (कौतूहल जनक मुख) ये कार्यारम्भ सूचक हैं।

४. लावण्य—हीरा, मोती आदि रत्नों से झलमल-झलमल करती हुई आभा को लावण्य कहते हैं। अथवा अति मीठे पदार्थों के साथ चटपटे मजादार चित्त को लुभाने वाले व्यञ्जन (सामग्री चाट आदि) जो कि रुचि पैदा करने वालों को भी लावण्य कहते हैं और रामरस (नमक) बिना सब शाक फीके लगते हैं वैसे ही अंगों में लावण्यता बिना शोभा नहीं फैलती है।

५. मोहन—सजातीय-विजातीय आदि समस्त अन्य भेदभावों की स्मृति नष्ट कर (भुलाकर) अपनी मोहिनी से मोहित कर चित्त को खींच देने वाले को मोहन कहते हैं।

महामधुरांगभंगि—माधुर्यमय अङ्ग प्रत्यंग से उछलती (उज्जृम्भमाण) हुई रसमयी भंगिमा (अङ्ग चेष्टाएँ) महामधुरांगभंगि है। अर्थात् अत्यंत मधुर होना। दृष्टि और रसना की लंपटता आसक्ति बढ़ाने वाली तथा आनन्द में डुबाकर सिर हिलाते हुए प्रशंसा जिसकी की जाती है वह महामधुरांगभंगी है उपरोक्त भंगिमादि गुण सहित भ्रू, नेत्र, नेत्रपलक, कीकी (नेत्रों की पुतली) नेत्र के कोण (अपांग) नासिका, अधरोष्ठ, चिबुक (ठोड़ी) कपोल आदि मुखमंडलस्थ अवयवादि की अति सुन्दर मोहक सहज भंगिमा (चेष्टाएँ) जिस मुख में है वह मुखचन्द्र कब दृष्टिपथ में आवेगा यह भाव है।

और दूसरा भी अर्थ - क्रम क्रम से लीला लावण्य से मोहनकारी मधुर अंगों की भंगिमा (चेष्टाएँ) जिस मुख में हैं वह मुखचन्द्र कब प्रगट होगा।

और अन्य अर्थ भी—लीला से मोहन और वैचित्री पैदा करै और लावण्य युक्त रूप से महामधुर बाहिर और आभ्यंतर (अंतःकरण) में भी परम आनन्द (समस्त वृत्ति में महासुख) का आस्वादन करा देने वाली अंगों की चेष्टाएँ (भंगिमा) जिनके मुख में हैं वह राधानन कब प्रकट होगा इस (उपरोक्त का भाव यह है कि निभृत निकुञ्ज का पूर्ण सेवाधिकार जिसको प्राप्त है वह ही इस प्रकार का वर्णन करने के योग्य है विना अतरंग का अधिकार (निज अमात्यसखी पद) प्राप्त हुए ऐसा रस पूर्ण रहस्य वस्तु को बता नहीं सकती है।

समीचीन तथा अनुभूत बदनचन्द्र की माधुरी जो समस्त विलक्षणता पूर्ण सद्‌गुण युक्त है हाय, वह कब हमारे दृग्गोचर हो ऐसा सजनी कहती है यह भाव है। यह श्रीराधा सुधा निधि ग्रन्थ जो कि श्री प्रिया जी का वाङ्मय स्वरूप है इनके सब ही श्लोकों के दो-दो अर्थ का वर्णन किया गया है। यह यथा सम्भव जानना चाहिये। एक अर्थ तो निकुञ्ज की प्रेमलीला का वर्णन करने वाला अर्थ सखियों

की उक्ति है और कृपाभिलाष जताने वाला अर्थ का वर्णन आचार्य की उक्ति जानना चाहिये यह ग्रन्थ बहुत विस्तृत हो जाने के भय से एक ही अर्थ इस टीका में प्रायः किया गया है यह तो प्रेमी सुहृदयों रसिक भक्तों को मालूम ही है ।। इति ६ ।।

❀ लीला चिंतवन ❀

श्रीहित अलिजु गह्वरवन के मोहन वाटिका में कदम्ब वृक्ष के नीचे विराजमान हैं और एक वीणा गोद में रखी हुई कुछ मन में विचार रही है इतने में श्री तुङ्गविद्याजी वहां आई और पास में विराज गई। और पूछने लगी कि हमारी लड़ैती जी या समय कहां विराज रही हैं श्रीहित अली बोली कि या समय मोरकुटी केलिकुञ्ज में शयन सुख विलस रही हैं। और मैंहू अवसर समझकर यहाँ विश्राम करने को आगई हूँ। तुङ्गविद्या जी ने कही कि गतदिन आप लीला को सुनाती सुनाती सेवा में पधार गई वह लीला अधूरी रह गई कृपा कर वाही लीला को मोकु सुनावो। यह सुनकर कल के दिन में लीला अधूरी रही हती वा लीला को कथन आरम्भ या प्रकार से कियो।

हे प्यारी तुङ्गविद्याजु ! समस्त रात्री प्रेम विलास में व्यतीत भई रतिरसमसे वनविहार को करत स्नान कुञ्ज में आइके स्नान शृङ्गार करि विराजत भये, प्रेम के मनोहर मनोरथन के विलास में समस्त दिन जात न जान्यो संध्या भई। श्री वृन्दावन परम रमणीय जगमगाय रयो है, तामें एक एक नाना रंग के मणिन खचित कुञ्ज विराजे हैं। लाल माणिक जटित भूमि हैं तामें कंचन मणिन जटित कमल के फूलन सों युक्त गलीचे बिछे हैं। मर्कत मणिन के भ्रमर ताके चहुँ ओर लाल रतनन की जाली की भींत है, ताके मध्य सुन्दर श्याम तमालन सों कंचन लता लपटिके फूल रहे हैं ताके मध्य सेवती से मिले गुलाब फूल रहे हैं। गुलाब से मिले गुलनार फूल रहे हैं। दाउदी से मिले गेंदा के फूल मिल रहे हैं, कमलन से मिले केवड़ा फूल रहे

हैं, कमोदिनी से मिली केतकी फूल रही है, चम्पा से मिली चमेली फूल रही हैं, माधवी से मिलि मोलसरी फूलि रही है, जाही से मिलि जुई फूल रही हैं एला से मिलि वेला फूल रही है, मालती से मिली मोतिया फूल रही है। ताके चहुँ ओर अलिनी के संग आली मतवारे भ्रमत हैं,तिनपे पंछी पचरङ्ग बाँध के लहरिया जिनके परन में मणिन को सो प्रकाश है। ऐसे मोर मराल कोकिला कीर कोलाहल कर रहे हैं। मानो ऋतुराज के महल में काम के कुमार कोक-कला में प्रवीण हैं। ताके मध्य लालरत्न की जाली की निकुञ्जराज रही है।

ताके छज्जा पन्ना के जाली के लगे हैं। मोतिन की झालर भीतर बाहर छज्जानसों विशाल बंधी है, मीनाकारी कंचन की जवनिका परी है, ताके मध्य सुन्दर शय्या सेवती के फूलनसों और कमलन के दलनसों रची राजे हैं। ताके ऊपर श्री श्यामा श्याम जू मोतिन के आभूषणन को श्रृङ्गार किये विराजे हैं। श्री ललिता आदि अष्टसखि परिकर कंचन मणिन के भूषण पहिरे चहुँ ओर छबिसों छाय रही हैं। सहेलीगण गान कर रही हैं।

श्रीहित अलिजी ने प्रिया जी के कान में कछु बात हँस-हँसकर धीरे-धीरे कहन लगी कि प्यारी जी कल मध्याह्न में आप दोनों सोय रहे हते और हम सब सहचरीगण आपको निद्रायत जानिकर कुञ्जद्वार पर चिकगेरि के फूल कक्ष में चलीगई तब आप दोऊ प्यारे शय्या से उठकर श्रृङ्गार कक्ष में पधारे वहाँ आपने वेष परिवर्तन कियो प्यारे को भेष प्यारी जी आपने कीनो और आपको वेष प्यारे ने कियो और आप दोनों दर्पण के सन्मुख ठाड़े होय के अपनो श्रृङ्गार स्वरूप को निहार कर प्यारीजु आपने लाल के कपोल को चुम्बन कियो वा समय मैं कुञ्जलता के रन्ध्रन में से देख रही हती। प्यारीजी आपने तो हमसे छुपाकर यह मधुर लीला करी किंतु मैंने तो आप दोउन की यह रहस्य लीला देख ली क्यों ठीक है न मैं झूठ तो नाय कहूँ यह सुनत ही प्यारी सकुच होय मुसकराय दयीं।

श्रीहित सखी जी तुङ्गविद्या जी से कहत है कि हे सखि वा मधुर हास्य को दर्शन करके मैं तो अपनी देह दशा ही भूलन लगी ऐसो सौन्दर्य शोभा युत प्यारी के मुखारविन्द के दर्शन पाकर प्यारे तो वा मुखमाधुरी को अवलोकत-अवलोकत अवनी पर झुक रहे मानो श्याम तमाल कुसुम के भार से नमित ह्वै गयो है मैं हू रूप बाग के कुसुमासव के मद में मत्त हो रही सखी तुङ्गविद्या जी पूछत हैं हे प्यारी हित अलिजु वा समय के प्यारी के मधुर हास्य युक्त मुखारविंद की कैसी शोभा देखी वा शोभा को वर्णन कर मेरे हृदय को सुख देने की कृपा करो यह सुनकर हित अलीजु बोली कि हे प्यारी तुङ्गविद्याजी मैं वा शोभा की छवि प्यारी के मधुर हास्य की उपमा किससे देकर तोकु समझाऊँ कोई उपमा वा मधुर हास्य युक्त प्यारी के मुख की समझ में नाय आवे है एक बात मेरे मन में आई सो तोकूँ कहत हूँ सुन श्रीहित अलिजु बीणा बजाकर गा रही हैं-

※ मालती छन्द ※

यदि कनकसरोजं कोटिचन्द्रांशुपूर्णं-
नव नव मकरन्दस्यंदि सौन्दर्य धाम ।
भवति लसित् चञ्चत् खञ्जन द्वन्द्वमास्यं-
तदपि मधुरहास्यं दत्तदास्यं न तस्याः ॥१६०॥

(श्रीराधासुधानिधि)

छन्द—जोपै सुच कनक कंज प्रगटै सुखदाई ।
कोटि कोटि चन्द्रकान्ति पूरित दरसाई ॥
नव-नव मकरन्द श्रवत्त सदन छवि लुनाई ।
खञ्जन युग खेलैं तहाँ करि चपलाई ॥
तो हू मुसक्यान मृदु उपमा नहिं पाई ।
दास भ्रमर पान करैं मकरन्द अघाई ॥

अरिल्ल—सुन्दर कंचन कंज कहा सुख देत है ।
कोटि-कोटि मुख चन्द्रमान हरि लेत है ॥

कंज चन्द्रमुख इन्दु की उपमा तुच्छ है।
मधुर महा मकरन्द मनोहर गुच्छ है॥
खञ्जन युत अति चपल खेल तहां करत है।
मंद मृदुल मुसक्यान सुसौरभ झरत है॥
मत्त भ्रमर मकरन्द पान करि तृप्त है।
अनुपम मुख तुम देखि लालहू लिप्त है॥

छपै—जो सोने के कमल कोटि शशि की किरननि करि।
परिपूर्ण ह्वै नई नई मकरन्द करै झरि॥
ताही कौ सौन्दर्य धाम अति ललित महावर।
चचल खञ्जन जोटि आय बैठे ता ऊपर॥
तोऊ मधुर मधुर हास्य सौं भरचोजु श्रीमुख कमल कर ॥१६०॥

संक्षिप्त संस्कृत व्याख्या—

यदि कनक सरोजं कोटि चन्द्रां पूर्णं भवति। पुनः तदेव नव-नव मकरन्दस्यंदि श्रावि भवति। पुनः। तदेव सौन्दर्य्य धाम भवति। पुनः। तदेव ललितचञ्चत् खंजन द्वंद्वं भवति। तदपितस्याः मधुर हास्यं मुखं प्रतिदत्तदास्यंदत्तोपमं न भवेत्॥ १६०॥

* श्रीकृष्ण-कर्णामृत से *

॥ श्रीकृष्ण परक अर्थ ॥

वचनिका—श्रीराधा मुख के अदर्शन से विरह तथा मुख दर्शन की उत्कंठा से राधाननं हि मधुरांग कलानिधानमाविर्भविष्यति कदा रससिन्धुसारम्। श्रीकृष्ण कह रहे हैं। अभिलाषा कर रहे हैं कि हे श्रीराधे मधुरांगकलाओं का भण्डार और रस सागर का साररूप मधुर अंगभगियों से सुशोभित आपके मुखचन्द्र का दर्शन मैं कब प्राप्त करूँगा तुम्हारी वह निरन्तर स्मित वे विशाल लोचन युगल कब मेरे नयन गोचर होयगे। व्रजसुन्दरियों द्वारा पूजित तुम्हारी वह रमणीय मूर्ति त्रिभुवन सुन्दर कमनीय मुख कमल को मैं कब देखूँगा।

श्लोक

मयिप्रसादं मधुरैः कटाक्षैर्वीणानिनादानुचरीं विधेहि ।
त्वय्यप्रसन्ने किमिहापरैर्नस्त्वय्य प्रसन्नेकिमिहापरैर्नः ।।

(श्रीकृष्ण-कर्णामृत)

भावार्थ—

कोर नैन चलाय के, बीणा देहु बजाय ।
सो रस देहु "प्रेम" करि जा रस सों पर नाय ।।
जा रस सों परनांय, साधन पचिहारे सब ।
एक कृपा सों होय, सब साधन सिर मोर यह ।।
तुम—रीझे कहा श्रोर, नहिं रीझे कहजु ओर ।
रीझ यहै सिरमोर, बीन धुनि नैनन सुकौर ।।

(रसिक रोचिनी से)

पास खड़ी सखी सहेलियों ने श्रीकृष्ण से कहा कि हे नाथ। श्राप इतना बड़ा महा पदार्थ प्राप्त करना चाहते हैं तो उसकी प्राप्ति का साधन आपके पास क्या है ? इस पर दर्शनोत्कण्ठित श्यामसुन्दर इस समाधान के निमित्त ही मानो तो यह श्लोक उच्चारण करते हुए बोले कि हे प्राणेश्वरी श्राप अपनी नामचित्ताकर्षिणी वीणा को बजाकर और उसके पश्चात् अपने कटाक्षों को अनुचर रूप में भेजकर मुझ को अपना प्रसाद प्रदान करें जैसे वीणा की तन्त्रिनिनाद ने इन सब सहचरियों के श्रवण में प्रवेश करके उनके प्रेम को प्रदीप्त कर दिया—उनके हृदय को जैसे किसी ग्राह ने ग्रसित कर लिया। तथा देहानुसंधान विस्मृत कराकर आपके समीप आर्कषित कर रक्खी हैं। वैसी ही कोई कृपा मुझ पर भी करें। यह वीण-वाद्य ही मेरा श्रमूल्य साधन है। यह एकबार भी यदि श्रवण में पड़ जाय तो मेरे हृदय की बहिर्मुखता प्रवाह उलट कर आपके अभिमुख हो जाय जिससे आप द्रवित होकर कृपाद्रदृष्टि स्मित मुख सरोरुह का दर्शन दे देंगी।

सखियों से पुनः श्यामसुन्दर कहने लगे कि हे सखियो—वह वीणतान्त्रीनिनाद (ध्वनि) गङ्गा सागर में बहा देने वाली गङ्गा

नहीं है, यह तो गंगोत्री को प्राप्त करा देने वाला नाद गङ्गा है। अतएव मैं बिना मुखचन्द्र के दर्शन किये लौट ही नहीं सकता। ऐसी साधन मुकुटमणि है यह वीणा-ध्वनि। अन्य समस्त साधनों में कोटि-तो विघ्न हैं तथा फल भी सर्वथा अनिश्चित ऐसा हृदय में भरकर के ही मैं इस विचित्र प्रवाहवती बीन ध्वनि के प्रसाद के लिये याचना कर रहा हूँ कि हे दीनबन्धु ! मुझ सर्व साधन हीन को एक बार स्निग्ध कटाक्ष युक्त वीणा की तन्त्री तो हिलाकर सुना दो। और जहां बीणा की ध्वनि होगी वहाँ आपका मधुर कटाक्ष भी होगा ही। चाहे पहिले कटाक्ष फिर वीणा निनाद हो (वीणा निनादानुचरन्ति येषु तैः कटाक्षैः) अथवा पहिले वीणा ध्वनि हो पीछे कटाक्ष हों (वीणा निनादानु चरन्तीति वा) परस्पर अविना संवन्ध है दोनों कार्य हैं। वीणा की भांति आपके कटाक्ष भी तो "कटन्ति वर्षन्ति रसान्" हैं, मधु हैं, मादक हैं, इतर रस विस्मारक हैं, एवं प्रेम रस प्रदायक हैं। हे प्राणेश्वरी !

"आत्मजीवन सर्वस्वभूतत्वन्नाम श्रवणमात्रमेव परम्।
यदि पुनस्त्वं वीणानादानुचर कटाक्षा मृतेन
मां सिञ्चसितदा किं वक्तव्यमिति महानुत्कर्षश्चमत्कारः"

(श्री गोपाल भट्ट)

सकल निगम कल्पतरु का फल आपका मधुर मंगल मय नाम ही श्रवण मात्र करने को प्राप्त हो जाय तो वही मेरे लिये परम श्रेय-स्कारक जीवन सर्वस्व भूत है। हम पर आप सहज कृपा करके दिव्य रसामृतमयी वीणा की ध्वनि को श्रवण कराने की तथा नयन कटाक्षों के दर्शन कराने की कृपा करें तो फिर रसोत्कर्ष—आनन्दोत्कर्ष—प्रेमोत्कर्ष तथा हमारे सौभाग्योत्कर्ष चमत्कार पूर्ण परावधि को प्राप्त हो जाय। यह केवल आपकी प्रसन्नता पर ही निर्भर है। आपके प्रसन्न हो जाने पर ही एतादृश प्रसाद प्राप्त हो सकता है। इस प्रसाद से अति दुर्लभ दुर्गम वस्तु भी सुलभ और सुगम हो जाती है। आप प्रसन्न

हो जायें तो अन्य समस्त साधनों से मेरा प्रयोजन ही क्या? और यदि आप ही प्रसन्न नहीं हैं तो अन्य सब वस्तुओं से हमारा कौन सा प्रयोजन सिद्ध होगा ? आपकी प्रसन्नता ही हमारे लिए एकमात्र आनन्द साधन है तथा साध्य है। सखियो ! मेरे लिए तो प्राणेश्वरी श्री प्रियाजु की आराधना में ही सब आराधना हैं "मेरे तो प्राणनाथ श्री श्यामा शपथ करूँ तृण छिये" मेरे भक्त नारद ने भी तो यही कहा है—

यथातरोर्मूलनिषेचनेन तृप्यन्ति तत् स्कन्धभुजोपशाखाः।
प्राणोपहराच्च यथेन्द्रियाणां तथैवसर्वार्हणेत्यादि ॥

(श्रीमद्भागवत १०-९-३२)

राधा-वल्लभ ध्याय के, औरध्याइये कौन।
व्यासहिं देत बने नहिं, बरी बरी प्रति लोन ॥
पात पातको सींचवो, बरी बरी को लोन।
रहिमन ऐसी बुद्धि ते, काज सरेगो कौन ॥

याही के लिये तो प्रिया जी की प्रार्थना मोकूँ अभीष्ट है। ब्रह्मा ने भी तो अपनी स्तुति में इसी कृपा को मुख्यतम साधन कहा है यथा—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्ष्यमाणो—
भुञ्जानएवात्म कृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत—
यो मुक्तिपदं सदायभाक् ॥

(श्रीमद्भागवत १०-१-४८)

प्रश्न—तो क्या श्री श्याम सुन्दर स्वसुख की अभिलाषा से प्रार्थना करते हैं। उत्तर—स्वार्थ के आवरण में श्रीराधा सुख से ही तात्पर्य है। अन्यान्य शतशः सहचरी सखियों के सान्निध्य का सुख तो तब ही श्रीकृष्ण को प्राप्त होता है जब ये श्रीराधा के साथ रहते हैं अर्थात् इन सहचरी मंजरियों के साथ स्वयं श्रीराधा की सेवा करके

सुख का अनुभव लेते हैं राधा के बिना सहचरियों में रहना ही इनको अच्छा नहीं लगता अर्थात् इनसे अपना सुख नहीं चाहते अपितु इनसे की हुई राधा की सेवा से आप सुखी होते हैं। कहना चाहिये कि अपनी सेवा से शतगुना सुख राधा की सेवा से होता है राधा के सुख के लिये ही कोटि कोटि रमणियों को श्याम सुन्दर रखते हैं श्रीकृष्ण और श्रीराधा सदा तत् सुख सुखी हैं—

सर्वभावोद्गमोल्लासी मादनोऽयं परात्परः।
राजते ह्लादिनी सारो राधायामेव यः सदा ॥
यथास्युर्नायकावस्था निखिला एवमाधवे।
तथास्युर्नायिकावस्थाः राधायां प्रायशोमताः ॥

(उज्ज्वल नीलमणि)

भावार्थ—श्रीकृष्ण को अनन्त कलाओं से जो सुख प्राप्त हो सकता है वह समस्त सुख एक ही श्रीराधा जी से प्राप्त होता है अतएव श्रीकृष्ण राधाकान्त हैं और श्रीराधा कान्ताढ्या और आश्चर्यकान्ता है "कान्ताढ्याश्चर्य कान्ता" नाम से श्रीराधासुधानिधि में श्रीराधा का उत्कर्ष बताया गया है और इसीलिए इनका राधा नाम है।

राध्नोतिसकलान् कामान् यस्माद्राधेति कीर्तिता।

(देवी भागवते)

जो श्रीकृष्ण की समस्त कामनाओं की पूर्ति करने वाली है वह हे राधा!

कृष्णवांञ्छा पूर्ति रूप करे आराधने।
अतएव राधिका नाम पुराणे बखाने ॥
कृष्णेर सकल वांच्छा राधा तेई रह।
राधिका करने कृष्णेर वांच्छा पूरण ॥
जगन्मोहन कृष्ण ताहिर मोहिनी।
अतएव समस्तेर परा ठकुरानी ॥

इसीलिये श्रीराधा को आगम-तन्त्रों में पर देवता कहा है—

देवी कृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता—
वामभागेस्थिता तस्य राधिका पर देवता ॥

परस्य पुरुषोत्तमस्य तस्यैव देवतामिवाराध्यामिति (विशुद्ध रस) अर्थात् पर जो पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण उनकी भी जो आराध्या देवता अर्थात् अभीष्ट दायक आराध्या उपास्या है वह पर देवता श्रीराधा है।

सब ठाकुर को ठाकुर हरि, ता ठाकुर की ठाकुर ठकुराइन।
मानदान दे प्रान प्रिया पति, रतिजाचत परताप दुराइन ॥

इतनी सुनकर श्री तुङ्गविद्या जी श्रीहितअलिजी से प्रार्थना करने लगी कि हे प्यारी सखी ! इतनी भारी व्याकुलता पूर्वक श्रीश्याम-सुन्दर प्यारी के वदनारविन्द के दर्शनों की उत्कंठा करते हैं तो श्री प्यारी जी के मुखारविन्द की शोभा कैसी है जिनको देखने की परम उत्कंठा लाल को सदा रहती है लाल को उनके मुखचन्द्र को निहारने की भारी चटपटी लगी रहती है कृपा कर प्रिया जी के मुख-चन्द्र की छटा आप वर्णन कर मोकू कृतार्थ करें। तब श्रीहितअलिजु रीझकर ध्रुव अलिकूँ आज्ञादीनि कि तुम कछु श्री लड़ैतीजु के मुख की सुषमा को कहो--आज्ञापाय श्रीहित ध्रुवअलि हितजु के चरण में मस्तक नवाय सलज्जनेत्रों से हर्षित होय मन्द-मन्द मुस्कान सहित कहने लगी।

सोरटा- फूलसों जब मुसक्याति चिते लाड़िलीलाल तन।
को वरने यह भाँति प्रीतमहू रहे भूलितहँ ॥

सवैया- कहीन परै मुख की छवि पानिप,
राजत आज रंगीली विहारिनि।
भूलिरहै बिसरी सुधि देह की,
मैन मनोरथ बाढ़ै अपारनि ॥

मोहके सिन्धु परै मनमोहन,
हेरत नेह नवेलि निहारनि ।
लिये ध्रुव हेत सों लाड़ हिये,
पिय देखि सुकुमारि समारनि ॥

दोहा—नवल छबीली वदन मनु, आनन्द मोद को फूल ।
इक रस फूल्यो रहत दिन, पियतन यमुना कूल ॥
कुण्डल दुति अरु मुख प्रभा, राजत ऐसी भाँति ।
झलमलात मिलि एकठां, मनु रवि शशिकी कांति ॥
चिकुर चन्द्रिका रचिरुचिर, रची मनोहर वानि ।
मनो घटा शृङ्गार की, जुरी चन्द्र पर आनि ॥
लटकनि वेनीकी ललित, फूलनि गुही सुढार ।
मनो हांसियुत मेरुते, उतरति रविजा धार ॥
शीश फूल रह्यो झलकिके, तैसिय मांग सुरङ्ग ।
मानो छत्र सोहाग को, लिये अनुरागहि सङ्ग ॥
निरखि अरुण बेंदि छबिहि, मति की गति भई मूक ।
मानो विधुपूज्यो सखिन, आनि फूलि बंधूक ॥
बङ्क भ्रकुटी कल सोहनी, अलक जुरी तहँ आनि ।
मानो पिय मन मीन को, बंसी राखी वानि ॥
लोचन तो श्रवननि लगे, विवि कुण्डल झलकात ।
मानो कञ्जहित जानिके, पूछन गये कछु बात ॥
अंजन युत चंचल चपल, अंचल में न सभाहिं ।
अति विशाल उज्ज्वल सुरंग, चुभे लाल मनमाहिं ॥
सहजहि सूक्ष्म अलंक छुटि, परी पलक पर आई ।
खग मीन मनुग्रहन को, विधुदई पाशि चलाई ॥
श्रवननि छवि ताटंक दुति, गहि गंडनि झलकाई ।
मानो भान आभा परी, कंजदलनि पर आई ॥
कहि न सकत नासाबनक, अधर सुरंग निहारि ।
मानो शुकझुकि छकि रह्यो, मन में कछु विचारि ॥

बेसर की थर हरनि छवि, मीन रका मनु ऐन।
पियहिय हृदि में मीन मन, ताको चितवत लैन॥
अरुन श्याम उज्वल दशन, अति छविसों झलकांहि।
कंज में अलि मुक्तनि सहित, मनु रंग बन्दनमांहि॥
शोभा निधिवर चिबुक पर, श्याम बिंदु सुख देत।
रहि गयो अलि शावक मनो, कञ्ज कली रस हेत॥
नील बिंदु उपमा दुतिय, कह कहों अतिहि अनूप।
मानो पिय मन विवस ह्वै, परयो आनि छवि कूप॥
(मनश्रृङ्गार लीला ४२ लीला)

श्रीहित ध्रुवअलि की यह मीठी बाणी सुनकर सब सखिगन नमित ह्वै कुसुम वर्षा कीनी और जय-जय धुनि करन लगी, अब श्रीहरि प्रिया नोतन ललित गति से नृत्य करत गावत है।

दोहा—प्रिया वदन सुखमा सदन, रह्यो प्रेम परिपूरि।
जा मधि प्रीतम प्रानकी, सरबस जीवन मूरि॥

पद— प्रिया मुख सुषमा कौ आगार।
जा मधि लाड़लड़े को सरबस अंग अनंग उदगार॥
जीवनि प्राण प्राण--जीवनि की अधर सुधा सुख सार।
पीवत परम तृषातुर पल-पल बाढत प्रेम अपार॥
रंग रंगीले रदन वदन में सोहत सुखद सुढार।
हँसत जबै कछु लसत लुनाई मनहर मार॥
गोरे गंड अरुनता तिन बिच अद्भुत अमल उदार।
मनु संपुट मधि लै अनुरागहिं भरि राख्यौ भरतार॥
श्यामल बिंदु चिबुक श्रुति भूषन नासा बैसरि चार।
बड़रे नैन सअञ्जन खञ्जन गञ्जत गर्व पहार॥
वरनी जात न वरुनी भोंहैं सोहै आड़ ललार।
शीशफूल सीमंत चन्द्रिका चिकुर चतुर चित्त हार॥

गुही श्याम मखतूल पीठ पर वेनी विरह विदार।
निजकर रची नवल नव नायक सुन्दर वर सुकुँवार॥
दुःख दरनी हिय हरनी श्यामा सकल सुखन विस्तार।
निरखि हरखि श्रीहरिप्रिया सहचरि बलि-बलि जात॥

(महावाणी सेवासुख)

दोहा—सकल कला पूरन सदा, सहजहि रहत सुछन्द।
प्रिया तिहारे वदन पर, वारों कोटिक चन्द॥

पद—प्रिया तिहारे वदनचन्द्र पर कोटि चन्द-दुति वारौं।
सकल कला संपूरन लखि लखि वारि फैरि डारौं॥
करन प्रकाश परम प्रति छिन-छिन निसिदिन उर अवधारौं।
श्रीहरिप्रिया सहज मुख शोभा निमिष एक नहिं टारौं॥

(महावाणी सहज सुख)

श्री श्यामसुन्दर प्यारी जी के मुखारविन्द की शोभा सुनते-सुनते मुग्ध हो गये और नेत्रों की पलकें लग गईं अन्तर्दृष्टि में प्यारीजी का अति सुन्दर मनोहर मुखमण्डल देख रहे हैं सहज प्रेमावस्था में प्राप्त हो रहे हैं। प्यारी के मुखदर्शन में तल्लीन हो गये हैं यह सहज प्रेम के प्रवाह में डूबी हुई अवस्था प्रिया जी की सहचरी रसिकिनीदासी प्रियाकिंकरी वीणा वादन सहित मुख शोभा के गान से श्यामसुन्दर के सुख का वर्द्धन कर रही है।

※ शिखरिणी छन्दे ※

न धम्मिल्लो मौग्ध्यामृतसजलमुचामेष निचयो।
न पुष्पाणीमानि त्रिदशपति मौर्वीपरिणतिः॥
न मुक्तागुच्छानि प्रकट सुषमाम्भः कणभरो।
न काश्मीरोद्भूता सुभगतर रेखा तड़िदिमम्॥१॥

हे राधे ! यह आपकी वेणी नहीं है यह तो सौन्दर्य जल से परिपूर्ण बादलों का समूह है, वेणी में संश्लिष्ट पुष्प क्या हैं ये तो इन्द्र का

धनुष ही है वेणी के नीचे मुक्ता गुम्फित फूंदे में मोती नहीं है ये तो शोभायमान जल की बूँद हैं। आपके मस्तक के सीमन्त में केसर रचित रेखा नहीं किन्तु सुभग विद्युत् लता है।

निसर्ग सुन्दरोऽप्यालि सूक्ष्मचित्राम्बरान्तरे।
गूढाभाव इवैतस्याः सोऽदृश्यत विलक्षणः ॥२॥

हे सहजसुन्दरि आलि, तेरे महीन साड़ी के भीतर छिपा हुआ जो केशपाश है वह प्यारे के प्रति तेरे हृदय में छिपे गूढ़ भाव को ही प्रकट कर रहा है।

मत्समर्पित सिन्दूर रेखोपरि परिस्थिताम्।
मुक्ताफलावली मालि सीमन्ते बिभ्रतीबभौ ॥३॥
न सा सिन्दूर रेखालि मुक्ताहार युतापितु।
सफेनराजिराभाति पूरः सौभाग्य वारिधेः ॥४॥

हे राधे ! आपके सीमन्त की लाल सिन्दूर रेखा के ऊपर मोतियों की पंक्ति (लड़ी) मैंने सुशोभित केशों में अर्पित की थी यद्यपि मुक्ताहार युक्त सिन्दूर रेखा है किन्तु इस समय फेन (समुद्र के झाग) की पंक्ति से सुशोभित सौभाग्य समुद्र-सा दीख रहा है ॥ ३४ ॥

* गीति छन्दे *

वदन सुधाकर किरणप्रसृतेर्मुक्तातेतेरिदं चित्रम्।
यत्कचनिचयतमोऽपि प्रियसखि सततं प्रकाशयति ॥५॥

हे मेरी प्यारी सखि ! आपके मुखचन्द्र की फैल रही किरणें मानो प्रसृत मोतियों ही का चित्र है आपका केशपाश (केश समूह) जो घना है उसको भी प्रकाशित (देदीप्यमान) कर रहा है अर्थात् केश समूह काले अन्धकार के समान है उस अन्धकार को भी दूरकर प्रकाशित कर रहा है। केश काले हैं फिर भी मुखचन्द्र की किरणों से चमक उठे हैं।

सुस्निग्धामल कुञ्चित मेचक सुभगालकावलिं तरुणि ।
वदनाम्बुजस्यपरितो दधती रेजे सरोजाक्षि ॥६॥

हे युवति ! तुम्हारी चक-चक करती विमल, कुटिल, चिकने, सुभग, श्याम छूटिलट तुम्हारे मुखकमल पर धोरे धीरे घूमती हुई अतिशय सुन्दर लगती है, हे कमलनैनी ! इसी पाशनें तुम्हारे प्यारे को बिना मोल ही मोल ले राखे हैं ।

॥ झूला (झूलणा) छन्द ॥

इषद्हास विकाश विभ्रमगल्लावण्यमध्वानना-
म्भोजस्यालकषट्पदालिरमला मत्ताऽपि राधासखि ।
यत् स्वाभाविक झंङ्कृतिरपि मुदा विस्मृत्य नित्यं पिबत्य-
स्पंदं तदिदंविभाति भुवने पङ्केरुहाक्ष्यद्भुतम् ॥७॥

❀ झूलणा छन्द ❀

मन्द शुभ हास्य को प्रकाश सुविलास से ।
गलित लावण्य मधुमुख कमल को ॥

अलक मानो भवरन की पंक्ति भी अति विमल राधिका सजनी ! क्या मदमत हुई है । जो अपने सहज सुन्दर गुञ्जार को भी छोड़े निरन्तर पीते ही रहते हैं । स्थिर होय मोद से त्रिभुवन में हे कमलनयनी यह अति विस्मयप्रद है ॥ ६ ॥

नैतन्मुखं प्रियाया राकापतिखे राजते विमलः ।
नेयं कुन्तलमाला सुषमा मुग्धाः सखीदृशां ताराः ॥८॥

हे सखि ! यह न तो प्रियाजी को वदन कमल ही विराजमान है यह तो शरद का पूर्ण चन्द्रमा ही विराजरयो है । हे सखि, यह प्रिया जी की केशमाला ही है ये तो मुग्धा स खियों की नेत्र तारा है ।

(श्री विट्ठलेश प्रभु विरचित शृङ्गार रस मण्डल)

प्राण प्यारी की निज सखी के गान को सुनकर श्यामसुन्दर ने अपने नेत्र खोल दिये और इधर उधर देखा किन्तु प्राण प्यारी का

मुखचन्द्र दृष्टि में न आया अति व्याकुल होकर ललिता जी से अनुनय विनय करके कहने लगे कि उपकारिणी ललिते ! आप प्राण प्यारी के समीप जावो और मेरी प्रार्थना उनसे करके किसी प्रकार से प्यारी जी के मुखचन्द्र का दर्शन कराकर मुझ को जीवन दान देवो।

रसिक चूड़ामणि श्यामसुन्दर ललिता सखी से कहते हैं—

अहमिह निवसामि याहि राधा–
मनुनय मद्वचनेन चानयेथाः ।
इति मधुरिपुणा सखी नियुक्ता--
स्वयमिदमेत्यपुनर्जगाद राधाम् ॥१॥

हे ललिते तुम जाइ प्यारीसों कहो समुझायके।
मैं रहूँ जा कुञ्ज में लावहु तिन्हें पधरायके॥
जा विधि विहारी की पठाई ललिताने आयके।
श्री कृष्ण के सन्देश राधे से कहे समुझायके ॥१॥

॥ बराड़ी रागेण रूपक ताले गीयते ॥

वहति मलय समीरे मदन मुपनिधाय।
स्फुटति कुसुम निकरे विरहि हृदय दलनाय ॥ २ ॥
तव विरहे वनमाली सखि सीदति (ध्रु०)
दहति शिशिर मयूखे मरण मनु करोति।
पतति मदन विशिखे विलपति विकल तरोति ॥ ३ ॥
ध्वनित मधुप समूहे श्रवण मपि दधाति ॥
मनसि वलित विरहे निशि रुजमुपयाति ॥ ४ ॥
वसति विपिन विताने त्यजति ललितधाम।
लुठति धरणि शयने बहुविलपति तवनाम ॥ ५ ॥
रणति पिक समुदाये प्रतिदिश मनुयाति।
हसति मनुजनिचये विरह मपलपति नेति ॥ ६ ॥

स्फुरति कलरवरावे स्मरति भणित मेव।
तव विधुमुख विभवे बहुगणयति सगुणमतीव ॥ ७ ॥

❋ बराड़ी राग में ❋

श्रीराधे तव वियोग वनमाली।
काम सहाय बनाय मलयकी वायु वहति दुःखशाली ॥१॥
विरही हीये विदारनु कारन कुसुमावलि किलकारी।
पीड़ा मरन समान दे रही चन्दकिरन चिनगारी ॥ २ ॥
भ्रमर गुञ्जनहिं सुनत विरह में निशतनु दशा विसारी ॥
गहवर वनमें वास करत हरी धरनि सैन गिरिधारी ॥ ३ ॥
राधे-राधे बोलत विलपत सुन जीवनधन प्यारी।
विरह बान बरसत ऊपरसों विकल विलाप विहारी ॥ ४ ॥
कोकिल कूक सुनत चहुँदिशि में जानत तव मुख बानी।
हँसत लोग जिहदशा देखि तब पुनि लाजत मनमानी ॥ ५ ॥
बोध होत रति सबद सुनत सुन्दरपञ्छिन की भाषा।
तुवमुख को होत अनुभव तब करत तासु अभिलाषा ॥ ६ ॥
चाहत शरदचन्द्र तव मुख निरखिवे को अति आतुर रसधारी।
राधे-राधे नाम कोऊ तिन सन्मुख सहज बखाने।
तब सबसों तजि प्रीति पियारो सुनत ताहि दे काने ॥ ८ ॥

निज सहचरी इस प्रकार प्रियाजी को प्यारे की विरह दशा सुना रही है। इधर प्यारे आतुर होकर प्यारी जी के मुखारविन्द का ध्यान करते गुनगुनाने लगे।

छन्द—शुचिदशन दमकनि दुति मनोहर मनहु मोतिन की लरी।
तहाँ मृदुल पल्लव अधर सुन्दर अरुण मनु झांई परी ॥
ललन कुण्डल झलक ललित गंडन छवि भरी।
सोई भजौं राधे चपल चखजुत वदन मण्डल प्रतिधरी ॥

❋ चौपाई ❋

श्याम अलक सुठि घूँघर वारी। सेंदुर बिन्दु भाल रुचिकारी।

तिल प्रसून सम नासा सोहे । वेसर की डोलन मन मोहे ॥
रहित कलंक सुधा बरसाई। रसभीनी वर वदन निकाई ॥
तिहिं मुख मंडल मैं नितध्याऊँ। क्षण-क्षण प्रति पल-पल बलिजाऊँ ॥

प्यारे को प्रेम सागर के भँवर में डूबते हुए देखकर श्रीललिता जी तानपूरा उठाकर तार मिलाकर मधुर स्वर से गा उठी श्रीललिता (श्रीहरिदास स्वामी) जो गा रही हैं—

प्यारी तेरो वदन कनक कोकनद, श्रमजल कनशोभा देतरी।
तामें तिल दृष्टि परत हो, मन हर लेतरी ॥
उर तन जात पांति प्राननकौं, कटि सों करि संकेतरी।
श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा-कुञ्जविहारी, हरत अचेतरी ॥

प्यारीजु जब-जब देखों तेरो,
मुख तब तब नयो लागत ।
ऐसो भ्रम होत, मैं कबहूँ देखो न री,
दुति की दुति लेखनी न कागत ॥

कोटि चन्द्र ते कहाँ दुरायेरी, नयन ये रागत।
श्रीहरिदास के स्वामी श्यामा, कुञ्जविहारी कहत,
कामको सांति होई न होई तृपति रही निशदिन जागत ॥

श्रीहित भोरी सखी की दासी ने गाया—

कवित्त—जा नैकहू उमगि जो केलकी विलास बिषै,
एक ही कटाक्ष की कला सों वश कीनो है।
परम मतवारो गजनायक श्रीवन में,
होय रह्यो क्रीड़ामृग ऐसो करिलीनो है ॥
जाकी नेक आज्ञा आभासहू को माथेधार,
मानत बड़भागी आप नेह रंगभीनो है।
ऐसी सो राधा साधारन गत मेरी अब,
शिथिल करो जाके पिय ऐसो आधीन है ॥ १ ॥

छन्द—श्री गोपेन्द्र कुमार की मोहन विद्या है महा।
फुरन माधुरी सार बढन रस अंबुधि जाके॥
सहज पुलनसों नेन कोणि अति चंचलताके ।
करुणा रस भींजी कटाक्ष रचना है जाकी॥
वदन कमल में महा मधुर मुसकिनि है ताकी ।
कृपा दृष्टि श्यामपे करौ टुक स्वामिनी राधे हाहा॥

यह सुनते ही श्यामसुन्दर श्रीहित अलिजी से अधीनता पूर्वक काकुवाणी से विनय करे हैं उनकी काकुवाणी अगले सातवें श्लोक में प्रगट है॥ इति॥

यत्किंकरीषु बहुशः खलु काकुवाणी–
नित्यं परस्य पुरुषस्य शिखंड मौलेः।
तस्याः कदा रसनिधेः वृषभानु जाया–
स्तत् केलिकुञ्ज भवनांगण मार्जनीस्याम्॥७॥

पदच्छेद—यत् किंकरीषु बहुशः खलु काकुवाणी—
नित्यं परस्य पुरुषस्य शिखंड मौलेः।
तस्याः कदा रसनिधेः वृषभानुजायाः—
तत् केलिकुञ्ज भवनाङ्गण मार्जनी स्याम्॥

अन्वयार्थ—

तस्याःवृषभानुजाया स्तत् केलि कुञ्ज भवनागंणमार्जनी अहं कदा स्याम्। कथंभूतायाः रसनिधेः अतएव तस्याः किंकरीषु शिखंड-मौलेः परस्य पुरुषस्य नित्यं बहुशः खलु काकुवाणी वर्तते॥इति॥

सम्बन्ध—श्रीराधा आनन का दर्शन वैसे तो दुर्लभ है तथापि यदि कृपा-पूर्वक श्रीप्रिया जी की निकटवर्ती सेवा प्राप्त हो जाय, तब तो निश्चय ही श्रीमुख दर्शन लब्ध हो सकता है, अतएव कुञ्ज केलि-भवन के प्राङ्गण की मार्जनी होने का मनोरथ श्री अलि जी करते हैं, उस सन्निकटवर्ती सेवा प्राप्त करने के लिए प्रिया की पत्रावलि रचना आदि निजांग सेवा के उत्सुक श्यामसुन्दर भी प्रियाजी की सखियों

के सामने खुसामद करते हैं यह भी प्रदर्शित इस सातवें श्लोक में करते हैं।

हिन्दी में सरलार्थ—

निश्चय पूर्वक, जिनकी किंकरियों से परम पुरुष (परात्पर ईश्वर) मोर मुकुटधारी श्री श्यामसुन्दर नित्य ही निरन्तर कातर वाणी द्वारा भूरि-भूरि प्रार्थना करते रहते हैं, क्या मैं कभी उन रस-सागर श्री वृषभानु पुत्री श्रीराधा के केलिकुञ्ज-भवन के प्राङ्गण (भीतरी भवनाङ्गन) की सोहनी देने वाली हो पाऊँगी। (जिसमें प्रवेश पाने के लिये प्राण प्यारे श्यामसुन्दर को भी सखियों की प्रार्थना करनी पड़ती है)

कवित्त

निश्चै परात्पर पुरुष जो शिखण्ड
मौल कहत काकुवाणी बार बार ढिग आई कै।
लिये मन हाथ जाकी किंकरी सों
कहै नाथ रुचि उपजाई बात-बात रुख पाई के।
ऐसी रससिंधु वृषभानुकी किशोरी
भोरी ताही सों दास यह जाचौं सिर नाई के।
ताकी रस केलि कुञ्ज-भवन के
आंगन की मार्जनी होहु कब कृपाबल पाइकै।७।

(भोरी हितदास)

सांझ—परम चतुर नागर मनमोहन मोरपक्ष सिर धारै।
प्राणप्रिया सहचरिगन प्रतिनित वचन अधीन उचारै।
सो रस सिंधु किशोरी के कब केलिकुञ्ज मंझारैं।
झारों लिये सोहनी कब मैं प्रमुदित सांझ सकारै ।।७।।

(गोस्वामी श्रीहित किशोरीलाल जी)

एवं विभाव्य कथमेवं सम्पन्नंभवे देतप्राप्त्युपायं विचार्य प्रार्थयति। यदिति। अहं तस्याः वृषभानुजायाः तत्केलिकुञ्जभवनांगण

मार्जनीस्यां तत् केलि विहार केलिकुञ्जान्तर्गतं यद् भवनं तदंगणस्य यन्मार्जनं तत् कर्त्री तन्मार्जनमिव प्रवेशे सुखेन तदाननमाविर्भविष्यति तात्पर्यार्थः । तदंगण प्रवेशस्य दौर्लभ्यंसूचयति । तद्विशेषणे न । तस्याः कस्याः । यत् किंकरीषु खलुनिश्चयेन शिखण्डमौलेः नित्यं काकुवाणी भवति ।। निर्गम प्रवेश समये यत् कर्म करीषु प्रार्थनावाक्यं शिखंड मौलेर्भवति । शिखण्डं मयूरपिच्छ रचित मुकुट मौलौ शिरसि यस्य सः शिखण्डमौलिः तस्य । अनेन नटवर श्रृङ्गारयुक्तएव सर्वदा तिष्ठति । तदंगीकरणार्थं । परंतु तदाज्ञां विनातदंगणप्रवेशो दुर्घट इत्यर्थः । एतादृशांगणस्य महत्वमितिभावः । शिखण्डमौलित्वे अयमाशयः । स्वयं स सर्वदा सजलजलद नीलः । काम, क्रोध, लोभ, मोह चतुर्व्यूह श्रीकृष्ण, परशुराम, वामन, श्रीराम रूपे स्वयं कामरूपः । तदुद्दीपनरूप मयुर साहयत्वं सर्वदेति । नान्यत्रेदं क्वचिद्देवराजसु । पुनस्तदंगणस्य महत्व सूचनार्थं तं विशिनष्टि । कीदृश्य शिखण्ड मौलेः । परस्य सर्व श्रेष्ठस्य । पुनः कीदृशस्य । पुरुषस्य । स एव वासुदेवोयमित्युक्तत्वात् एवंसति कथमेवं दैन्यं तत्र तद्विशेषणेनैव समाधयति (समधिं करोति इति विग्रह । तत् करोतीतिणिच) कथं भूतस्य पुरुषस्य । रसनिधेः भक्ति सहित दशरसानां निधान भूतस्य । अस्मिन् विषये यदि महत्त्वादिकं मनस्यायातिचेत श्रृङ्गार भंगे स्वस्य तन्मूर्तित्वाद्येन तद्रक्षणं भवेत्तदेव स्वीकार्यं चतुरशिरोमणिनेति भावः । भक्ति निर्वाहस्तु श्री प्रिया चरणेष्विवतिदिक् ।।७।।

रसकुल्या संस्कृत व्याख्या

ननु तादृश माधुर्य्यैश्वर्य पूर्णतमायास्तादृश मुखचंद्र साक्षाद्दर्शनं तन्निरंतर कैङ्कर्य्यन्तत्कृपा विनाऽत्यंत दुर्लभमिशंक्य स्वस्यतादृश नित्याधिकारेऽपि तत् किंकरी परम महत्वं स्मरन् "नमंति फलिनो वृक्षाः इति वत् स्वदैन्यत्वातिरेक मेवाभिलाषति यत् इति ।

अहं तस्याः वृषभानुजाया तत् केलि निकुञ्ज भवनांगण मार्जनी कदास्यामित्यन्वयः ।

तस्या निरतिशय सौभाग्याया वृषेति परम कृपाविर्भाव माधुर्यामृत पोषित निजपरिजनायाः प्रतिक्षण जनक जननी परम विविध विचित्र वात्सल्य लालन लाल्यमान ललनाया-स्तदिति तादृश विशिष्यानिर्वचनीयतमांतरंग केलीनां संबंधी कुञ्जभवनं लतादि सहज सौष्टव यथा कामं काम निर्मित गृहं तस्यांगणंबाह्यमाभ्यंतरञ्च तस्य मार्जनी शोधिनी कोमल सरल तृण निचय रूपा कदेति महाभाग्य द्योतनं विरहो-त्कण्ठाधिक्यं च तदुपभुक्त विशेष ताम्बूल रस माल्यगंधांग-रागविलास परिमर्दित शयन पतित किशलय कुसुम चरण परागादि शोधने स्वतएव तत्संगिनी स्यामिति किं ब्रवीमि भाग्य वैभवमिति भावः ।

केलित्युक्ते शृङ्गार रसान्यथानुपपत्तिरतस्तदाधारत्वेन विशिनष्टि रसनिधेरिति । शृङ्गारो रसनायक इत्यत्रास्यैव मुख्यत्वात् सर्वेऽपि हास्यादयस्तदुपयोगिन स्तद्योग्यांगीभूत्वा तत् पोषकाएव विरोधं परिहृत्य यथा समयमेव स्वसेवां दर्शयंतस्तदनुगा एव सदैकीभूय तिष्ठतीति रस शब्दसांमा-न्योक्त्या सूचितम् अगाधानाद्यंत पारावारात्वं रसस्येति निधेस्तद्रूपं तदाधाराया इत्यर्थः । तदेव विवृणोति तस्याः कस्याः यत्किंकरोष्विति । किंकरो मात्रेषु वा ललितादिषु परस्य पुरुषोत्तमस्य सकलावतारावतारिणः पूर्णतमस्य स्वयं भगवतः शिखण्डमौलेर्नन्दनंदनस्य वा परस्य दास्यक्रिया लिप्साद्यानुकूल्य परम काष्टापन्नस्य रसिक नायक शिरोमणे शिखण्डेति । आसज्यकृता घटित स्वभाव निर्वहण परमा सक्ति बद्ध कंकणस्येत्यर्थः नित्यमिति विलासस्य नित्यत्वा

त्त्रापि बहुशः इत्यहोरात्रं तन्निकुञ्ज एवस्थायित्वान्न बहिरंग कार्य गंधोऽपीतिभावः। तथा च वक्षत्येव "दूरे सृष्ट्यादि वार्तानकलयतिमनाङ् नारदादीन् स्वभक्तान्। श्रीदामाद्यैः सुरद्भिर्नमिलति च हरेः स्नेह वृद्धि स्वपित्रोः। किंतुप्रेमैक सीमां मधुररस सुधासिन्धुसारैरगाधां। श्रीराधामेव जानन् मधुपतिरनिशं कुञ्जवीथिमुपास्ते। इत्यादि।

तत्रापिखलुनिश्चयेन सत्यमेवांतरंग तथा बुद्धि पूर्वकेण नतु वैदग्ध्य स्वार्थ निर्वहण व्याजेनेत्यर्थःकाकुइति दैन्यवाक् रसानु-परम कृपापात्रे सहृदयैक भावनीयापि किंचिदुपदिश्यते। प्रियस्य परमतृषित वैवश्य लौल्य लीलाशीलत्व तस्याश्च लज्जातिरेक मेवापतेदिति।

स्वांतर्भावा प्रकाशन लाड़िलात्वशीलाया वाम्यावश्यकत्वं तदा लौल्ये मानोत्तरंगभ्रूभंग्या जायमानायां तत् प्रसाधन बहुधानुनयन निपुणोऽपि न शक्नोति तदेंगितज्ञत्वादि दर्पहा-नात् स्वस्याधिकार सावधानाः सखीराश्रयते केनोपायेन प्रसादयामि भवतीरेवांतरंगमर्मज्ञाः प्रार्थये। नयुष्मांतरा मां कोऽपिशिक्षयेत् येन श्रीमती प्रसन्नास्यात्तत्कुरुतेति प्रार्थित वतिप्रिये तदिंगतज्ञाभिः प्रतिभूभूय दंपति रसवर्द्धनं कृतम्। ततोऽपिदास्येन प्रिया नभिलषितेन पादसंवाहनादिना पुनः भ्रूभंगतरंगत्वं कोऽयमत्यघटित निसर्ग इत्यादि तदा स्वभि-लषितापूरणात् खिन्नः पुनरप्येवमेव सखीषु दैन्यमिति न भवदुपकारं कदापि विस्मरे परिजन गणेषु सेवापरेषु किञ्चित् सेवापरंमामपि कुरुत तदा ता अपि परस्पर कौतूहल रसा-तिशयवृद्धयर्थमनैक कौतुक व्याजेन निज साचिव्याधिकार गौरवं वर्द्धयन्ति। नास्मदधिकार श्चाटुपटुवार्तादिभिर्लभ्यो बहुसेवाप्रकारेण सुचिरं साधितेनाहं भावस्मृति तिरोधानस्य सेवा सातत्यंदर्पनिरसनादि मनोमर्द्दनानंतर भीतस्थायित्वेक

लभ्य इत्यादि तदा प्रियः स्वगतं व्यनक्ति यथोक्तमेव करिष्ये अवधारयत विज्ञापनामेकामिति। मंजन कबरी-प्रसाधन यावकरचनांगरागचित्रशृङ्गारादि मदीयहस्तेनैव सम्पादितव्यमिति श्रुत्वा ताः ऊचुः नोपालम्भपात्राभवदर्थे भवाम। किंच अति असंतोषोऽपि न वरः। सर्वरसभोक्तृ त्वेप्यपूर्तेः अलं ते ज्ञातं कैतवमिति। किञ्च परोत्कर्षा सहनं न यशोदायकं। प्रथमं तु सखीत्वं विना नांतरंगसेवाप्राप्ति-रित्युक्तं, साधु-साधु मामपि वेषयत यथा प्रिया न जानीया न्मुग्धैवतिष्ठेऽह मपि सेवनक्रिया कौशलेन परम चतुरां प्रसाद-याम्येव भवतीर्यश एवास्यति न बिभतेत्यादि। एवं कृते-मन्मनोरथपूर्तौ परम क्षेमं भविष्यति। मदुपर्युपका रांकनमेव कुरुतेत्यादि प्रियोक्ते ततो विहस्य ताभिः परम तत्सुखिनीभिः पुलकाश्रुकंप गद्गदादिभिः रुध्यनिजं धन्यं मन्यास्तदेवानुमन्यमानास्तादृश कौतुकाडंबरं चक्राणास्तदा प्रियेण तद्वेषेण बुद्ध्यगोचरं सुखं लब्धं। ततः प्रसद्य कृत-ज्ञतयास्तौति धन्याः खलुभवत्योऽत्युदाराः। यत्कृपात एवं धनिक एवाभवमिति मानातिशयदानेन नित्यं बहुशः खलु-दैन्य वचनचंचुरत्वं तादृशपुरूत्तमस्य इति किं भण्यते सहचरी सौभाग्यमहिमेति भावः। तदेवं केलिकुञ्जोक्ते वृन्दावन स्मरणोल्लसित मनाः सकलोक्तानुक्त लीलारसनिधेरप्यास्पद त्वेन स्मारं स्मारं कृतपुलककंप शिरोधूननः कमन्यं कथया-मीति स्वचेतस्येव अभिसंबोध्योपदिशति वृन्दानीति।

रसकुल्या संस्कृत टीका का हिन्दीभाषानुवाद

इस प्रकार (पूर्वश्लोक में वर्णित) श्रीराधा माधुर्य और ऐश्वर्य पूर्ण हैं उनके मुखचन्द्र का साक्षात् दर्शन एवं उनकी निरंतर कैंकर्य प्राप्ति भी श्रीराधा कृपा बिना अति दुर्लभ है यह शङ्का होती है। श्रीहितअलि को तो श्रीराधा की अन्तरंग सेवाधिकार नित्य ही

प्राप्त है। तथापि 'नमन्ति फलिनोवृक्षा' के न्याय से श्रीहितअलि राधाकिंकरियों के गुरुतर महत्व का स्मरण रख कर ही विनम्र हुई हैं अतएव श्रीहितअलि अति दैन्य की अभिलाषा रखती हैं।

वृषभानुजी की पुत्री श्रीराधा के क्रीड़ा (केलि) निकुञ्ज भवन के प्रांगण की मार्जनी मैं कब होऊँगी इस तरह अन्वय है। अपनी ही कृपा से प्रगट हुई श्रीराधा अति सौभाग्यशालिनी है, यह भाव वृष-भानुजा शब्द का है।

और जिसने अपनी सखियों को भी माधुर्यरसामृत से पोषित किया है। एवं जिनकी माता श्री कीर्तिदा एवं पिता श्री वृषभानजी दोनों ही हर समय नित्य ही जिनका निरन्तर परम विलक्षण वात्सल्य पूर्ण, नानाविध लाड़ प्यार से लालन-पालन करते हैं ऐसी लाड़लड़ैती श्रीराधा है यह भाव वृषभानुजा शब्द का है।

अनिर्वचनीय रस पूर्ण रहस्यमयी अन्तरंग केलि विशेष रूप से जहाँ सम्पन्न होती हैं उन कुञ्जों के भवन के आंगन की मार्जनी कब होऊँ यह भावार्थ तत् केलिकुञ्ज भवनांगण मार्जनीस्यां का है। ललितादिक तत्सुख सुखी रसिक भक्त निज परिकर अपनी इच्छानु-सार सहज सुन्दर परमरमणीययथोपयोगी सजावट पूर्ण मनोहर उप-करणों से सजाकर लतादिकों से सुन्दर महल तैयार करती हैं उनका नाम कुञ्ज है। कुञ्ज के प्रांगण (बाहरी और भीतरी भाग) की मार्जनी कब होऊँ।

अर्थात् जहां प्रिया-प्रियतम का नित्य ही बिहार होता है उस कुञ्ज की सफाई करने वाली मार्जनी* कब हो जाऊँ। कैसी बुहारी

---

* मार्जनी शब्द के दो अर्थ होते हैं एक सोहनी करने वाली स्त्री का नाम दूसरा जिससे झाड़ू देते हैं उस (बुहारी) को भी मार्जनी कहते हैं। मृज (मार्जवा) घ ञ् 'स्त्रीलिङ्ग' मार्जनी स्वच्छ करने वाली निर्मल करने वाली पोंछने वाली यह यह सखी के अर्थ में और बुहारी के अर्थ में भी इसका प्रयोग

का वर्णन है कि कोमल-कोमल सुहाने चिकने सीधे तृण के वृन्द से बनी हुई सोहनी, ऐसी सोहनी बनूँ यह भाव है। अपने महाभाग्य को प्रकट करने के अभिप्राय से कदा शब्द का प्रयोग है। और विरह में अत्यन्त उत्कण्ठा होरही है यह अभिप्राय भी कदा शब्द का है।

मार्जनी बनने में विशेष भावना को प्रदर्शित करती है कि श्रीप्रिया पान को आरोग कर शेषभाग (भुक्तावशेष) चर्वित ताम्बूल आंगन में पड़ा रहता है (प्रसादीपान) अथवा ताम्बूल रस, (उत्गार) टूटी हुई पुष्पमाला कुसुम गंधसार अतर, विलास में पुष्प अङ्गराग आदि शय्या में पड़े हुए कोमल पत्रांकुर (किशलय) पुष्प चरण पराग आदि की सफाई करते समय स्वतः ही उनकी संगिनी (सहेली) बन जाऊँगी। उसमें मेरे भाग्य का क्या कहना है यह भाव है।

तत् केलिकुञ्ज यहां केलि शब्द आने से अर्थात् खेल होने से शृङ्गार रस की उपपत्ति (प्राप्ति) नहीं होगी इसलिये रसनिधे यह प्रियाजी का विशेषण दिया है अर्थात् प्रियाजी स्वयं रस की आधार-भूता हैं रस तो सदा ही उनके आधार पर रहता है रस की अनुपपत्ति कासं देह केलि शब्द से हो ही नहीं सकता।

रसनिधेः का भाव—शृङ्गार सब ही रसों का नायक है इससे प्रमाणित होता है कि सब रसों में शृङ्गार रस ही मुख्य है। और अन्य हास्य, करुण, आदि यावन् मात्र रस शृङ्गार रस के उपयोगी हैं और समस्त रस शृङ्गार रस के अङ्ग बनकर शृङ्गार रस को पुष्ट करते हैं अर्थात् शृङ्गार के सहायक रहते हैं। शृङ्गार रस के बाधक नहीं होते तथा अपने-अपने समय पर अपनी सेवा बताते हुए शृङ्गार रस के

है। यहां (रसकुल्या टीकाकार श्रीहरलाल व्यास जी ने मार्जनी का अर्थ बुहारी किया है अन्य टीकाकारों ने सोहनी देने वाली यह अर्थ किया है दोनों ही अर्थ हो सकते हैं।

अनुगामी होते हुए शृङ्गार रस के साथ एकमेक होकर रहते हैं यह रसनिधि में रस शब्द का आशय है रसरूप समुद्र अगाध और अनाद्यनंत है पारावार (ओर छोर) रहित है ऐसे रस की निधि रस उसका आधार रस रूप ही राधा है ऐसी राधा के केलिकुंज भवन के आंगन ऐसा भावार्थ है । वही कहती है । उसकी अर्थात् किसकी राधाजी की किंकरियों में किंकरियों में बहुवचन कहने से समस्त किंकरी अथवा ललितादिक अष्ट निज सखी दोनों ही अर्थ होते हैं । परात्पर पुरुषोत्तम जो समस्त अवतारों के अवतारी हैं पूर्णतम स्वयं भगवान जिनके मस्तक पर मोरपिच्छ विराजमान है अर्थात् नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के यहाँ शिखण्डमौलि मोर पिच्छों के बने मुकुटधारी कहने का आशय है दास्यासक्ति अर्थात् प्रिया की सेवा करने (चरण संवाहन पत्रावली रचना जावक मेंहदी लगाना आदि) की लालसा प्रिया की अनुकूलता रखने की पराकाष्ठा जिनकी अतएव रसिक शिरोमणियों के (महारसिकों के) नायक राजा हैं आसक्ति का अघटित स्वभाव (प्रिया जी के प्रेम में ऐसी आसक्ति भरा स्वभाव है कि तीनों लोक में इतना आसक्तमय स्वभाव कहीं किसी का भी नहीं हो सकता अत्यन्त-आसक्त स्वभाव है) उस अघटित आसक्त स्वभाव को निवाहने के लिये (प्रीत की रीत रंगीलौ ही जाने—चतुराशीजी) जिन्होंने कंकणवद्ध व्रत ले रक्खा है । ऐसे श्रीकृष्ण यह भाव शिखण्ड मौलि विशेषण का है । नित्य शब्द विलास की नित्यता सूचक है नित्य तो है ही और भी कहते हैं कि बारम्वार (बहुशः) अर्थात् अहर्निश ही निकुंज के भीतर ही स्थित रहने से बाहिरी कार्य (बहिरंग कार्य) प्रेम विलासातिरिक्त बहिरंग कार्य की गन्ध भी जिनके पास आती नहीं ऐसे श्रीकृष्ण यह भाव है आगे इसी ग्रन्थ में कहेंगे ही

दूरेसृष्ट्यादि वार्त्तान कलयति मनाङ् नारदादीन् स्वभक्तान् ।
श्रीदामाद्यैःसुरद्भिर्न मिलति स्नेहवृद्धिस्वपित्रोः ।

किंतुप्रेमैकसीमां मधुररस सुधा सिंधुसारैरगाधा ।
श्रीराधामेवजानन् मधुपतिरनिशं कुञ्जवीथिमुपासते ॥

(राधा सुधानिधि २३५)

कवित्त

दूर सृष्टि आदि की बात सों न नैक सौंच
भक्त नारद आदिक निज सुध न करल हैं ।
मिलते हैं न कभू श्रीदामा आदि सुहृदन सों
नेह बढ़वार तात मात की हरत हैं ॥
कहाँ तो एक प्रेम सीमारस मधुर चारु
सुधा सिंधु सारकी अगाधा सुमरत हैं ।
राधाही कों जानै भँवर भयो कुञ्जवीथिन में
रैन दिनमांहि कों उपासे एक मत है ॥ २३५ ॥

(राधा सुधा०)

ऊपर कहा हुआ सत्य सत्य ही है निश्चय ही यह है क्योंकि अन्तरङ्गा सखी होने के कारण यथार्थ ही कहती हैं । जो कुछ कहती हैं बुद्धि पूर्वक ही कहती हैं न कि चतुराई से स्वार्थ निवाहनार्थ कोई मिश से कहा गया है ।

काकुवाणी—दीनता के वचन अर्थात् प्रेमाधीन प्रेमी के दैन्य वचन अनेक प्रकार रस वर्द्धक होते हैं प्रेमास्पद के प्रति । यह तो परम कृपा पात्र सहृदयी भावुक भक्तों का तो भावना में है ही कि प्रेमी प्रेमास्पद के समक्ष किस किस प्रकार रस वर्द्धनार्थ प्रीत की रीतिज्ञ प्रेमी जन अनुनय विनय युक्त काकुवचन और खुसामद करते हैं फिर भी ग्रन्थकार कुछ वार्णीन कर उपदेशार्थ कहते हैं ।

प्रिय श्यामसुन्दर प्रिया के प्रेम के लिये अत्यंत तृषित हैं विवशता है लौल्य लीला में डूबे हुए होने से और प्यारी जी (श्रीराधा प्यारी) लज्जा की बाहुल्यता से अपने आंतरिक भावों को दिखा

नहीं रही है और लाड़ प्यार से लालित भी है इसलिये वाम्य भाव टेड़ास्वभाव (रोषयुक्त) हो ही जाता है अर्थात् मान हो जाना स्वाभाविक है। तब चञ्चलता से मानवती होकर भोंहें टेढ़ करके मान ठान लेने पर लालजी यद्यपि प्रिया को मनाने में बहुत प्रकार का अनुनय विनय करने में निपुण होते हुए भी उनको प्रसन्न नहीं कर पाते हैं। सखियां राधा के मन की बात को जानने वाली होने से उनके मन के अनुसार चेष्टा करके मान का भङ्ग कराने वाली हैं और अपने अधिकार में सावधान रहती हैं अर्थात् अपने अधिकार में पूरा दखल रखती है इसलिये इन सखियों का आश्रय उस वक्त लेते हैं। सखियों से प्रार्थना लालजी करके कहते हैं कि हे ललितादिक सखियो मैं प्यारी को कौन उपाय करके प्रसन्न करूँ आप लोग ही प्यारी की अन्तरंग हैं और मरम को जानने वाली हो। आपके बिना कोई भी ऐसी बात की शिक्षा देने वाला नहीं है जो मुझे इसका उपाय बता सके जिससे कि मेरी प्यारी प्रसन्न हो जाय।

इस प्रकार प्यारे ने प्रार्थना की तब सखियों ने प्यारे के हृदय की बात जानकर प्यारे की जमानत का भार लेकर (जामिनदार बनकर) दम्पति युगल जोड़ी का रस बढ़ाने का कार्य सिद्ध कर दिया प्रसन्न तो प्रिया को करदी फिर भी लालजी प्रिया का दास्य पाद सेवाहन आदि सेवा जिसको प्रियाजी ने (उतनी बड़ी रसमयी सेवा देना नहीं चाहा और लालजी नेउस सेवा को करना चाहा तब प्रिया जी को भोंह टेड़ी हुई और कहा कि यह क्या अनुचित अविवेकता इत्यादि, तब प्यारे अपनी अभिलाष अपूर्ण होने से दुखित हुए और फिर उसी प्रकार सखी जनों के पास जाकर दीनता पूर्वक कहने लगे कि अब मैं आपका उपकार कभी नहीं भूलूँगा आप अपने रिजनप सेवा करने वाले हैं उनमें मुझ को भी सेवा करने वाला एक सेवक बना लो।

तब सखि जन कुतुहल पूर्वक अतिशय रस बढ़ाने के लिये विनोदार्थ अपने अमत्यपन के गौरव को बढ़ाती हुई (हम राधा

प्यारी की सचिवा हैं (दिवानी हैं) इस गौरवता पूर्ण वचन प्यारे से कहने लगी कि हे प्यारे : प्रिया की चरण चम्पी आदि महत्व पूर्ण सेवाधिकार हमारा है इस अधिकार को तुम चापलुसी ठकुर सुहाती तथा बार-बार चतुराई भरी मीठी-मीठी खुशामद की बातें हमसे करके प्राप्त कर नहीं सकोगे। यह अधिकार बहुत समय तक साधना करने पर, अहंकार के मिटने पर निरन्तर सेवा करने का घमंड मिटा देने पर कि मैं बहुत सेवा करने वाला हूँ इस अभिमान की भावना भी मिट जाने पर मन का मद चूर-चूर हो जाने पर ही यह सेवाधिकार प्राप्त हो सकता, चरण चम्पी आदि सेवा ऐसी वैसी नहीं है जो रस्ते चलते मिल जाय इत्यादि सखी बहुत बातें बोल गई। सुनकर प्यारे ने अपने मन की बात कही कि सखियों जैसा आप कहती हो वैसा ही करने को तैयार हूँ अर्थात् करूँगा। आप यह निश्चय मान लो। मेरा एक निवेदन है जो सुन लीजिये कि प्रियाजी का स्नान, वेणी गूंथन, जावक की रचना, अंगराग पत्रावली करना वस्त्राभरण शृंगार, आदि मेरे ही हाथ से करवाइयेगा। यह प्यारे के वचनों को सुनकर सखियों ने कहा, सुनो प्यारे हम तुम्हारे लिये प्रियाजी का उपालम्भ (उलाहना) को सुनने का काम कभी नहीं करने वाली हैं। अर्थात् तुम को हम यह सेवा करने का मौका देकर प्रिया हमको उलाहना दे ऐसा काम करने को हम किञ्चिन्मात्र भी तैयार नहीं हैं यह कान देकर सुन लो।

अधिक लालच भी अच्छा नहीं है अर्थात् थोड़े ही में संतोष कर लेना चाहिये। यों तो संपूर्ण रसों का भोग भोगकर भी पूर्ति नहीं होती है। अर्थात् भोगों से तो कभी तृप्ति होती ही नहीं है।

बस रहने दो अपनी बातें जानली आपकी धूर्तता दूसरों का उत्कर्ष तुमको सहन नहीं होता है। यह भी जाना हमने इसमें कोई बड़ाई नहीं है। लाला सुनो सबसे पहिली बात यह है कि सखी बने बिना अन्तरंग सेवा ही प्राप्त नहीं होती ऐसा सखि का वचन सुनते ही

लाल बोले अच्छा-अच्छा मुझको सखी बना दो अर्थात मेरा भी सखी का शृङ्गार कर दो ऐसी बना दो कि प्रिया पहिचान न सके मैं भी भोली भाली सी बनकर रहूँगी (मुग्धव) मैं अपने सेवा करने की निपुणता से परम नागरी प्यारी को खुश कर लूँगी मैं आपका यश ही बढ़ाऊँगा, प्रिया आपको कहेगी कि अच्छी सेविका को लाई हो यह कहकर तुम्हारी बड़ाई करेगी । आप डरो मत ऐसा करने से मेरे मनोरथ की पूर्ति होकर आनन्द होगा (आपका भी कल्याण होगा) हे सखियो ! ऐसा करके मेरे ऊपर आपके उपकार की छाप पड़ेगी ।

प्यारे के ऐसा कहने से सखियां हँसकर प्रिया-प्रीतम के सुख ही में सुखी रहने वाली सखियों को रोमांच अश्रु कप गद्‌गद् कण्ठ आदि उत्पन्न हुए सात्विक भावों को रोकती हुई अपने को अति धन्य मानती हुई उसी प्रकार आश्चर्य कारक सखी वेष लालजी का किया तब उस सखी वेष में ही लाल ने बुद्धि से परे अनिर्वचनीय सुख को प्राप्त किया और प्रसन्न हुए लाल कृतज्ञता पूर्वक सखियों के ऋणि होकर उनसे प्रार्थना करने लगे कि आप धन्य हो, आप परम उदार हो आपकी ही कृपा से आज मैं इस प्रकार धनी हो गया । अर्थात् राधारूपी धन का मैं धनी ही हुआ । अधिकाधिक मान सखियों को दिया नित्य ही बार-बार दीनता के वचन और चतुराई चाटुता आदि अनेकानेक गुण इन पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण के हैं कहां तक कहे जा सकते हैं । सहचरियों की सौभाग्य महिमा भी यह भाव है ।

श्रीहिताचार्य हरिवंश महाप्रभु इस प्रकार से केलिकुञ्ज का वर्णन करने पर श्री वृन्दावन के स्मरण से मन में परमोल्लास प्राप्त हुए और वर्णन की और जो वर्णन नहीं की सब ही लीला रस के निधि के स्थान (स्वरूप, आप बार-बार रोमांच कंप शिरोधूनन कर रहे हैं और विचार कर रहे हैं कि मैं अन्य किसको ऐसी लीला को कहूँ अपने मन ही को सम्बोधन कर कहते हैं आगे वृन्दानिसर्व महतां ।। इति ॥

❀ पद ❀

चलहि किन मानिनि कुञ्ज कुटीर।
तो बिनु कुँअरि कोटि वनितायुत—
मथत मदन की पीर॥

श्री हितअलि जु वीणा बजावत इस पद को मधुर-मधुर स्वर से गावत देह दशा को भूल रहीं एवं विवशता को प्राप्त भई, समीप में बिराज रही ललितादिकन ने संभार कर फूलन के गलीचा पर पधराये। सचेत होने पर सुहृद सखी जनन में से एक ने विनय से प्रश्न कियो कि आप मथत मदन की पीर इन अक्षरों को बोलत ही अचेत भयीं और ध्यानमग्न होय रहीं, वा ध्यानावस्था में कौन सी लीला को आस्वादन कियो जा लीला को आज आपने आस्वादन कियो वा लीला को सुख हम हूँ को प्रदान करने की कृपा करें। सुनत ही श्रीहितअलिजु कहन लगीं अरी सखियो ! आज तो लाल की अभि-लाष माधुरी अति अनुपम ही देखी जा निकुञ्ज में यह लीला भई वा निकुंज की छटा को आप सुनो अति मनोहर वन की निकुंज में वह विहार करत कमल निकुंज में आयके फिर विहार करत भये, सो सुरतरंग को सुख महारँगीलो अनिर्वचनीय आज बढ्यो है या निकुंज में समस्त रात्री सुरत रङ्ग की रेनी में वह सुरंग भयो, फिर वहां ते निकुंज में आइके जो सुरत की रेनी में रँगे सो महारँगीलो भयो। याते ऐसो कोई सुरत रंग महा गहिल गह गह्यो गहीलो झूमत झूलि रह्यो है। तैसेई दोऊजन सुरंग सहाने सूहे बांध के वागे विचित्र कञ्चन के बने अद्भुत रचनामय पहिरे हैं तैसेई भूषन मोती हीरा पन्ना मणिन के मनोहर अंगन में झलके हैं वह शोभा कैसी है मानो वसन रूपी अनुराग की भूमि में अङ्ग स्वरूप की हरियाली हो रही है। तामें चितवन मुसकानि फुलवार फूल रही है।

ऐसी रँगीली छवि सों युगल लाड़ लड़ेतो लाल लाड़िली युगल किशोर जु राजे हैं। तिनके तैसीय सुरत रँग में सखी रँगी है। और

तैसोई सुरंग सुहाने सिगार शोभित ह्वै रह्यौ है। अब तहाँ ते रँगीले रंग भरे श्री रंगीली रंगीले जु सखी समाज सहित चले हैं। निकट ही हीरे पन्नान की जाली की बनी निकुंज है। तिनके महराव, स्तम्भ, कलश, लाल रत्नन,के रंगमगी रंगीली शोभा सों छवि देत हैं। तिनके भीतर दरन में अद्भुत रचना सों हिंडोरा चहुँ ओर कुंज कुंज में रचे राजे हैं। तिनके ऊपर चहुँ ओर लता वृक्ष अति सघनता सों हरे भूमि रहे हैं। तिन की डालिन में रेशम बादले की डोरी के झूला विचित्र रचना सों पड़े हैं। तिनकी शोभा कैसी है मानो हरियाली घटा घुमड़ रही है। तामें अनुराग दामिनी दमक रही है। तिन पर कोकिला कीर मोर बैठे बोल रहे हैं सोई गम्भीर गरजन गाजे हैं। ताके भीतर चोकोर च्चर जलाशय चारों ओर बने हैं। तिनमें अति सघन शोभा सों लाल कमल फूलि रहे हैं तिन पे भँवरन की मतवारी मण्डली गुञ्जार करत हैं। तिनके परन की पवन तें पीत परागन के समूह उड़े हैं ताकी शोभा कैसी है कि कमल के पात जो जल में हरे छाइ रहे हैं सोई तो मानो हरी भूमि सुहावनी है ता पर कमल जो फूले हैं मानो रँगीली अनुराग की घटा घुमड़ रही है तामें भँवरन की गुञ्जार है सोई घनघोर गरजन है। और पीत पराग उड़े हैं सोई मानो दामिनी (विजुली) के समूह दमक रहे हैं। चारों दिशा में चारों कमल कुण्डन के बीच बीच एक एक हिंडोरा राजे हैं। विशाल कञ्चन के स्तम्भ मरुवे डांडी पटली बनी हैं। तामें लाल रत्नन के फूल जड़े हैं। मोतियन के झूमका झूले हैं। पटरी कमल दलन सों रची है। पन्नान के कलश जगमगे हैं। तापर मोतिन की जाली, जाली के वितान (चंदोवा) तने हैं। तिनकी शोभा कैसी है मानो अनुराग के गगन में छवि के चन्द्रमा सूर्य उदय भये हैं।

अब आगे तिन कमलन के सरोवरन के किनारे पर चहुँ ओर अनेक भांति के वृक्ष लतान की पांति अति सघन हरियाली सों शोभा देत झूम रही है। तिन सबन में लाल ही तो फूल फूले हैं और लाल

ही फल फूले हैं। मालती के वृक्ष सों मोतिया की लता लपटीं फूली है. मोलसरी (बकुल) के वृक्ष सों माल्ती की लता लपटि के फूली है। चम्पा के वृक्ष सों मदन तान की लता लपट कर फूली है। केतकी के वृक्ष सों मेदिनी की लता लपट कर फूली है। कदम्ब के वृक्ष सों कमोदनी लता लपट कर फूल रही है। गुलनार वृक्ष से इस्क पेचकी लता लपट कर फूली है अन्नन के वृक्षन पे लाल अंक झूमि रहे हैं। तिन पर गुलाब की लता लपट कर फूल रही है। अनारन के वृक्षन में सेवती लता लपटकर फूल रही है। इलायची के वृक्षन सों लबंग की लता लपट कर फूली है तिनके गोदा शाखा रत्नन के बने हैं तिनको प्रकाश कोटि सूर्य के सदृश है और उनकी शीतलता कोटि चन्द्रमा के समान है। तैसीय उनको प्रकाश शोभा सुन्दरता लिये राजे हैं। तिन वृक्षन पर कपोत पारावत हंस मयूर सुक सारिका कोयल कूजे हैं। तिनकी शोभा कैसी है मानो रूप की घटा में रस को गरजन हो रयो है तिन पर मतवारे मधुप पराग उड़ावे हैं सोई मानो दामिनी दमक रही हैं और फूलन की वर्षा होय रही है। सोई मानो छवि को मेह बरसो है उन वृक्षन के तरे वा शोभा को निहारकर मनोहर मोर किलकारत नृत्य करत हैं। तहाँ हंसन की मण्डली मुदित होइ सरोवरन पर पराग पान करत फिरत हैं। ताके मध्य मार्ग में चहुँ ओर भूमि लाल रत्नन की है तामें पन्नामणी जड़ी है ताकी शोभा कैसी है मानो अनुराग की अवनी में प्रीति के हरे अंकुर निपज कर लहलहा रहे हैं, अथवा हरी भूमि पर इन्द्र वधून को समूह छवि सों छाय रयो है। ता मार्ग में नीलमणिन के मनियाँन की जाली के वितान तने हैं। तिनकी शोभा कैसी है मानो छबीलो श्याम घन छाय रहे हैं। ता वितान की जालीन के बीच बीच एक एक कञ्चन मणि के फूल छवि देत हैं सोई मानो चपला चमक रही है। तिन में मोतिन की झालरें लहर लेत हैं सोई बक (बगुलों) की पंक्ति विशाल है।

ताके आगे मध्य नीचे में एक चतुष्कोण चोंतरा हरे पन्नामणि से रचित राज रया है। ता पर लाल रत्न की जाली से निर्मित एक निकुञ्ज जगमगाई रही है। वा निकुञ्ज में पीत मणिन से खचित एक सिंहासन बन्यो है उस निकुंज में नील पीत सित असित गुलाबी रंग दार मणिमय पांच खिड़कियाँ जगमगाई रही हैं उन खिड़कियों में कञ्चन के तारों की चिकें पड़ी हैं उन खिड़कियों से शीत मन्द सुगन्धित त्रिविध वायु आई समस्त कक्ष को सुवासित करे हैं निकुञ्ज की दीवारें और छत पांच रंग की लता पताओं से निर्मित ऐसी दीख रही है मानों पचरंगी मणिन से बनी हो बिच-बिच पचरंगी फूलों से जटित सौन्दर्यता और रमणीयता से परिपूण है और चारों भितियों (दीवारों) पर अनेक विध सुन्दर विचित्र चित्र मण्डित हैं युगलवर गलवैयाँ दिये वा महल में पधारे साथ में दो सखियाँ श्रीहित वंशी अलिजी और श्रीहित ललिताजी पीछे-पीछे चँवर करती हुई आ रही हैं दोनों महा प्रेम रस में छके घूमत झूमत आवत हैं। वा निकुञ्ज के शय्या मन्दिर में कमल दलन से रची सुन्दर शय्या विछि राज रही है वा शय्या पर दोनों आय विराजे और शय्या के चारों ओर सखि चँवर विजन लिये ठाड़ी चँवर करन लगी प्यारी जी ने चित्रा सखी से आज्ञा कीनी कि चित्राजी कोई कहानी कहो तब चित्रा सखी बोली हे स्वामिनि जी बलिहार आपके रूपमाधुरी पर बलि जावूं एक सुन्दर कहानी तोते की लालजी को आवे है वह कहानी बहुत ही सुन्दर है यह सुनकर प्रिया ने प्रीतम प्यारे से मुसकाय के कही प्यारे आज वाही शुक शुकी की कहानी कृपा कर सुनावो। प्यारे प्रसन्न होय प्यारीजी को शुक-शुकी की कहानी सुनाने लगे।

रात्री में श्यामसुन्दर से एक शुक-शुकी की कहानी सुनते-सुनते प्यारीजी सो गईं और प्यारे को भी नींद आ गई प्रातःकाल दोनों जग गये। प्यारी जी तो रात्री के अल्प निद्रा सेवन करने के कारण पुनः सो गई और प्यारे स्नान कुञ्ज में पधार गये। उस समय प्यारी जो को

एक स्वप्न भयो स्वप्न में प्यारी जी ने लाल को किसी अन्य गोपी से बतराते देखे।

दोहा—एक रैन निज पियासों प्रिया मुदित मन होय।
तोते की सुनिकें कथा रही कुँअरि पुनि सोय ॥ १ ॥
बड़े भोर उठि सेज सों श्री वृजराज कुमार।
स्नान भवन में न्हाय के, कियो नयो शृङ्गार ॥ २ ॥
सुपने में देख्यो लली, लाल और के साथ।
उठि बैठी तव मान करि, धरि कपोल तर हाथ ॥ ३ ॥
भृहें चढ़ी फरकें अधर, रोम ठड़े सब अंग।
मानभूप लै कटक कों, चढि आयो इक संग ॥ ४ ॥
हँसत न मुखचित वतन दृग, सुनत नहीं कछु कान।
द्वार--द्वार पे चौकियाँ, बैठारीं भानु कुमार ॥ ५ ॥
मनकी गति मति लखि, सखि ठड़ी छड़ी ले द्वार।
धोखे में आवे न घसि, कपटी नन्द कुमार ॥ ६ ॥
दोहा—देखि दूरितें भूरि छवि, दूर दिये दुःख टाल।
दुरें दूरिते कहें जिन, दूर रहो गोपाल ॥

प्रिया के मान के स्वरूप की शोभा

कर कपोल के तरें धरि बैठी अति छवि पाय।
मानो तन धरि शान्ति सर, पौढ्यो कमल विछाय ॥
कोऊ अंग फरकत नहीं, यों बैठी चुपचाप।
मानों भींत के चित्रकी, छबि बनी है आप ॥
मुख उदास कछु दृग मुंदे, मानो उतारत स्वांग।
ज्यों योगीजन बैठिकें, करत भोग अष्टांग ॥
बैठी नागरि मौन गहि, विथुरी अलकन जोय।
मानो कमलन जान निश, मुख मूँद रहे सोय ॥

लटकन के मोती लटक, अधरन पै की भीर।
मानो लालसों कहत हैं, छीन लई जागीर ।।
लट हू ह्वै कपोल पे, शोभा देत अपार।
बैठि नागिनी कमल पै, दरपन रही निहार ।।
माथे मोतिन वन्दनी, यह शोभा नई भांत।
रूप मानसर के निकट, बैठी हँसन पांत ।।
ठड़े ठड़े निरखत पिया, शोभा-शोभा खान।
मुख बनाव बैठन अदा, धरन कपोलन पान ।।
पथिक पिय मन मांग, वेनी परसन जात।
शीश फूल ठग बीच में, करत रोक उतपात ।।
गौर वरण भौं बंक वर, लोचन अरुण सुहात।
मतवारे दो खड़ग लै, ठड़े उजेरी रात ।।
नेन देख सुख लूटते, वरसन लागे कान।
आज ही प्यासे हम रहे, सुधा वचन विना प्राण ।।
श्रीछवि सिन्धु अथाह की, को कैसें ले थाह।
अंग तरंग भुँहें भमर, अलक उरग दृग ग्राह ।।

नयो शृंगार कर श्यामसुन्दर प्यारीजी से भेटिवे को चले—

दोह—अधर मधुर हँसि हरत मन, करवर कमल फिरात।
भवन गवन चाहें कियो, रोक दिये कित जात ।।

प्रियाजी की किंकरी कहन लगी—

दोहा—ठड़े रहो न कहौ अहो कहां चले रसखान।
जाके मान गुमान तुम कियो मान सच मान ।।
भले कान्ह अभिमान मन ठान न मो सम आन।
मान समान न मान जिहिं मिल्यो मनमान ।।

कवित्त—सुनत सुन्न चितवत चकित सोचत चित चितचोर।
सुपन तकौं के जागतौ भलो भयो भ्रम मोर ।।

घबराये सुधि बुधि उड़ी थर थर कांपत अंग।
पानी मद को चढ़्यो जो उतरि गयो इक संग ।।

लालजी चिंतित होय कहन लगे—

अहो दई कैसी भई कही कहा इन बात।
प्यारी प्यार विसारिकें मान कियो क्यों प्रात ।।
सखी तोहि सों सांची कहौं सांची है के झूंठ।
कहुं रूठ को नाम सुन सांच न जावे रूँठ ।।
रैन तोहि सपनो भयो कै तू आई है देख।
अथवा अपनी ओर तें, पढ़त मीन अरु मेख ।।

सखी के वचन—

सुनत हँसि हरि कों हँसी हँसी न और प्रकार।
अभी परेगी ए लला झूंठ साँच की सार ।।
तब मानी मन लाल ने सांच कहत ब्रज नार।
विरह जाल मो पै दियो मान शिकारी डार ।।
पुनि बोले भोले वदन सो उपाय तू ठान।
जा विधि पावे मान अब भरी सभा अपमान ।।

किंकरी वचन बोली—

बहुतेरे तेरे पढ़े जोड़ तोड़ छल छन्द।
एक न मेरे ढिंग चले चतुराई वृज चन्द ।।

लालजी बोले—

जो आज्ञा पाऊँ सखी, जाऊँ तनक निहार।
प्यारी पङ्कज पे परो कैसे मान तुषार ।।

सखी के वचन—

प्रीतम सो दिन गये करतर हे उपहास।
बिन बूझे जाते चले, दौर दौर के पास ।।

लालजी के वचन—

तब तो तू भोरी हुती, अब तो चतुर दिखात ।
पकर छड़ी छांटे ठड़ी बात बात में बात ।।

सखी के वचन—

कहा कहानी लौ ठड़े, बात होय कछु बात ।
चलो हटो सरको परें मोहि न भीर सुहात ।।

लालजी के वचन—

विनय करत बानी घिसी, ठड़े बीतियो जाम ।
जिनमें ऐसी निठुरता, तिनसों राखे राम ।।

सखी के वचन—

छल बल कर केती कहो, न हौं द्योंगी जान ।
चहें सुनो या कानतें, चहें सुनो वा कान ।।

लालजी के वचन—

पुनि अधीन कहौं ह्वै कर जोर जोर बिन जोर ।
सखी सखी ह्वै जिन बनें, कृपण समान कठोर ।।

सखी वचन (राग कालिंगड़ा)

द्वार पै क्यों ठाड़े बृजराज ।
जहाँ से आये वहीं जावो तुम, यहाँ नहीं कछु काज ।।
लाख भांति सों विनय करो तुम, एक न मानूँ आज ।
नारायण बलिहार तिहारो नेक न आवे लाज ।।

लालजी वचन (राग कालिंगड़ा)

लाज सों मेरे काज कहा री ।
बिनप्यारो मोहिकल न परत है इकइक पल बीतत है भारी ।
ऐसी कहा चूक भई मोपै तुम सजनी सब देखन हारी ।
नारायण मोहि वेग बतावो क्यों रूठी वृषभान दुलारी ।।

※ राग झंझोटी ※

मोहि मति रोकेरी तू एरी वृजनागरी ।
रूपकी निधान है तू गुण की खान है तू,
तेरी सम कौन आज तेरौं बड़भागरी ॥
कहे तो मैं नृत्य करूँ बांसुरी में राग भरूँ,
कान्हरो केदारो भेरों सोरठ विहागरी ।
तूँ तो सदा उपकारी हितहू की करनहारी,
आज नारायण मोसौं क्यों राखे लागरी ॥

बचनिका—सखी बोली-हे प्यारे ! यामें मेरो कछु दोष नहीं है मैं तो उनकी आज्ञा सों रोकुँ परन्तु अब आप एक काम कीजौ जा रीतिसों मैं कहूँ वाही रीतिसों उनके निकट जायकें विनती करो ।

※ राग झंझोटी काजिला ※

प्यारी ढिग जाय लाल धीरे वचन कहियो ।
नीचो रख दृष्टि नैन विनती कीजो विचार,
सन्मुख ह्वै ठाड़े दोऊ हाथ जोर रहियो ॥
अचरा मुख पै दुराय कबहूँ भूषण संभार,
ह्वै कें ललिहार उनकी कबहुँ ठोड़ी गहियो ।
नारायण भूलिकें न डरपियो निरादरसों,
जो कछु वह कहैं आप सबही बात सहियो ॥

दोहा—सखी वचन सुनि मुदित मन गये प्रिया ढिग लाल ।
भोरही आज उदास क्यों एरी रूप विशाल ॥

प्यारीजी के वचन लालजी के प्रति—

※ ठुमरी खम्माच ※

प्यारे तेरे जिय की न जानी जाय रे ।
कहूँ तो सांझ आधी रात रहत कहूँ,
पिछली रात कहूँ प्रात रे ॥

उनही पे जाओ बतराओ सुख पावौ,
तुमे जिन यह सिखाये दाव घातरे ॥
अब तोसों भूलिकें न बोलूँ,
नारायण जहां लग अपनी बसात रे ॥

लालजी के वचन (ठुमरी जिले में)

प्यारीजी तिहारे विन कल न परत है ।
मन्दिर अटारी चित्रसारी और फुलवारी,
मोहि कछु प्रिय न लगतरी ॥

इत्यादि वचन लालजी के सुनि के प्रियाजी पीठ फेरके वचन उच्चारण करें ।

नारायण अति कठिन है प्रेम मिलवे की बाट ।
या मारग तब पग धरै प्रथम सीस दे काट ॥
नेह डगर मैं पग धरैं, फेरि विचारे लाज ।
नारायण नेही नहीं, बातन को महाराज ॥
चौसर बिछी सनेह की, लगे शीश के दाव ।
नारायण आशक विना को खेले चित चाव ॥
गढ-गढ के बातें कहै, मन में तनक न प्रीत ।
नारायण कैसे मिले, साहब सांचे मीत ॥
जो सिर सांटे हरि मिले, तो पुनि लीजे दौर ।
नारायण ऐसो नहिं, गाहक आवे और ॥
सो क्यों सेवै बाग वन, गुल्म लता तरु मेल ।
नारायण जाके हृदै फूल रह्यो वह फूल ॥
नारायण प्रीतम निकट, सोई पहुँचन हार ।
गेंद बनावै सीस की खेले बीच बजार ॥
लगन लगन सबही कहैं, लग्न कहावे सोय ।
नारायण जा लग्न में, तन मन दीयो खोय ॥

नर संसारी लगन में, दुःख सुख सहैं कठोर।
नारायण हरि प्रीति में, जो होवे सो थोर ॥
नारायण हरि लगन में, यह पांचों न खटात।
विषयभोग निद्रा हँसी, जगत प्रीत बहु बात ॥
नारायण घाटी कठिन, जहां नेह को धाम।
विकल मूर्च्छा सिसकवो, यह मग में विश्राम ॥
नारायण या डगर में, कोऊ चलत है वीर।
पग-पग में बरछी लगे, स्वांस-स्वांस में तीर ॥
लगन लगी राधाजु की, भूली तन की सार।
नारायण मछली भयो, श्यामा रूप तन धार ॥
वर्णाश्रम उरझे कोऊ, विधि निषेध वृत नेम।
नारायण विरले लखे, जिनि मिलि उपजे प्रेम ॥
प्रेम नगर प्रीतम बसें, ये नारायण को नेत।
जानहार या ग्राम को, कोउ न दिखाई देत ॥
तौलों यह फांसी गरे, वर्णाश्रम वृत नेम।
नारायण जौलौं नहीं, मुख दिखरायो प्रेम ॥
प्रेम सहित अंसुवन भरें, धरे युगल को ध्यान।
नारायण ता भक्त कों, जग में दुर्लभ जान ॥
नारायण जाके हिये, उपजत प्रेम प्रधान।
प्रथम ही वाकी हरत है, लोकलाज कुल कान ॥
नारायण या प्रेम को, नद उमड़त जा ठोर।
पल में लाज मर्याद के, तट काटत है दौर ॥
विधि निषेध श्रुतिवेद की, मेंट देत सब मेट।
नारायण जाके वदन, लागत प्रेम चपेट ॥
नारायण ज्ञात अगम, सबको सम्मत येह।
विना प्रेम कर्मादि विधि, ज्यों ऊसर में मेह ॥
नारायण जप जोग तप, सबसूं प्रेम प्रवीन।
प्रेम हरी कूं करत है, प्रेमी के आधीन ॥

नारायण यह प्रेम सुख, मुखसों कह्यो न जाय।
ज्यों गूँगो गुड़ खात है, सेनन स्वाद लखाय॥
प्रेम खेल सबसों कठिन, खेलत कोउ सुजान।
नारायण विन प्रेम के, कहा प्रेम पहिचान॥
जिन प्रेम प्यालो पियो, झूमत तिनके नैन।
नारायण वा रूप मद, छके रहैं दिन रैन॥
नारायण जाके हिये, लगी प्रेम की सोर।
ताही को जीवन सुफल, दिन काटें सब ओर॥
नेम धर्म धीरज समझ, सोच विचार अनेक।
नारायण प्रेमी निकट, इनमें रहै न एक॥
रूप छके झूमत रहें, तनको तनक न ज्ञान।
नारायण दृग जल भरे, यही प्रेम पहिचान॥
है न्यारो सब पंथते, प्रेम पंथ अभिराम।
नारायण यामें चलत, वेगि मिलो पिय धाम॥
मनमें लागी चटपटी, कब निरखूँ श्यामा-श्याम।
नारायण भूल्यो सभी, खान पान विश्राम॥
सुनत न काहू की कही, कहे न अपनी बात।
नारायण वा रूप में, मगन रहे दिन रात॥
देह गेह की सुधि नहीं, टूट गई जग प्रीत।
नारायण गावत फिरे, प्रेम भरे रस गीत॥
धरत कहूं पग परत कित, सुरत नहीं इक ठौर।
नारायण प्रीतम बिना, दीखत नहिं कछु और॥
भयो बावरो प्रेम में, डोलत गलियन मांहि।
नारायण हरि लगन में, यह कछु अचरज नांहि॥
लतन तरें ठाड़ो कबू, कबहू यमुना तीर।
नारायण नैनन वसी, मूरति सुभग शरीर॥
प्रेम सहित गदगद गिरा, कटत न मुखसों बात।
नारायण राधा बिना, और न कछु सुहात॥

कह्यो चहे कछु कहत कछु, नैन नीर स्वर भंग।
नारायण बोरो भयो, लग्यो प्रेम को रंग॥
कबहूँ हँसे रोवे कबू, नाचत करि गुण गान।
नारायण सुधि तन नहिं, लग्यो प्रेम को बान॥
सुरत लगी वा ध्यान में, सुनत न और की बात।
नारायण उत्तर दियो, मृदुल मनोहर गात॥
जाके मन यह छवि बसी, सोवत हू बररात।
नारायण कुण्डल निकट, अद्भुत अलक सुहात॥

यह सुनिके लालजी प्यारी के चरणों में जाय पड़े प्यारी ने लाल को उठाय अंक भर लिये और प्यार से अधरामृत पिवाय गलवैयाँ दे ठाड़े भये सखी कहत है कि देखो प्यारे अपनी प्राण प्यारी को चिबुक अपने कोमल कर से स्पर्श करत गावत हैं।

राधा मेरे प्राणन हूँ ते प्यारी।
भूलहूँ मान न कीजिये सुन्दर हों तो शरन तिहारी॥

प्यारी जी मुसक्याई लाल को मुख चुम्बन कर बोली—

प्रीतम मेरे प्राणन हूं ते प्यारो।
निशिदिन उर लगायें रहों हित सों नेक न करिहों न्यारो।
देखत जाहि परम सुख उपजत रूप रङ्ग गुन गारौ॥
जय श्रीकमलनयन हित सुन प्रिय वैनन तन मन धन सब वारों॥

श्री प्रीतम प्यारे श्री लड़ेतीजु से कहने लगे कि हे प्यारी आप मोकुँ विसारके भूल सी गई और मैं तो मीन ज्यों तड़फत हों। तब प्रिया हँसके लाल का चिबुक कोमल कर पल्लव से स्पर्श कर बोली—

प्रीतम तुम मेरे दृगन बसत हो।
कहा भोरे ह्वै पूछत हो कैर चतुराई मनहि हँसतहो॥
लीजिये परख स्वरूप आपनो पुतरिन में प्यारे तुमही बसत हो।
वृन्दावन हित रूप बलि गई कुञ्ज लड़ावत हित हुलसत हो॥

श्री हित ध्रुव सखी यह युगल छवि निरखि के मधुर स्वर सों जोरी जु को सुनाय के बलैया लेत हैं।

शोभित आज रँगीली जोरी।
सुन्दर रसिक नवल मनमोहत अलवेली नव वयस किशोरी।
वेसरि उभय हंसनि में डोलत सो छविलेत प्राण चित चोरी।
हित ध्रुव फंदीमीन ये अँखियां निरखत रूप प्रेम की डोरी।

वृन्दानि सर्व महतामपहाय दूरात्—
वृन्दाटवीमनुसर प्रणयेन चेतः।
सत्तारणीकृत सुभाव सुधारसौघम्,
राधाभिधानमिह दिव्य निधानमस्ति ॥८॥

पदच्छेद—वृन्दानि सर्व महतां अपहाय दूरात् वृन्दाटवीं अनुसर प्रणयेन चेतः सत्तारणी कृतसुभावसुधारसौघं राधाभिधानं इह दिव्यनिधानं अस्ति। इति पदच्छेदः।

अन्वयार्थ—हे चेतः सर्वमहतां वृन्दानि दूरादपहाय प्रणयेन वृन्दाटवीं अनुसर, वृन्दावने (इह) राधाभिधानं दिव्य निधानं अस्ति (कथं भूतं राधाभिधानं सत्तारणीकृत सुभाव सुधा रसौघं सतां तारणी कृत स्वभावस्य श्रीकृष्णस्य सुधारसौघं यत्। यद्वा सतां तारणी कृत सुभावं च तत् सुधारसौघं च।

सम्बन्ध—केलि भवनाङ्गण मार्जन सेवा कैसे प्राप्त होगी। इसका एक उपाय आठवें श्लोक में वृन्दानि इति दिखाते हुए अपने मन को प्रोत्साहित करते हैं।

हिन्दी भाषा में सरल अनुवाद—हे मेरे मन, तू समस्त महत् चेष्टाओं (महत् वृन्दों को) को दूर ही से त्याग कर प्रीति पूर्वक वृन्दाटवी का अनुसरण कर। वहां श्री राधा नामक एक दिव्य निधि विराजमान है। जो सज्जनों को भवसागर से उद्धार करने वाले भाव रूप सुधारस का पुञ्ज है (प्रवाह है)।

कवित्त

प्रीत कर चित्त वृन्दाटवी जो लह्यो चाहे
त्याग सब बड़ाई के समूहन कों दूर ही ते।
जो तू कहे लाभ कहा तोपे सुन कान दै कै
बड़ेन बड़ाई पाई याही की धूर ते।
तारन अनन्त संत लीयो है सुभाव जानें
ऐसे हरि रटत नित रसना रस पूरते।
सुधा रस ओघ है अमोघ महा दिव्य निधि
श्रीराधिका नाम धाम पावे भाग्यभूरतें।

(भोरी हित दास)

कवित्त

मान धन धर्म कुल कान की बड़ाईन के
जेतिक समूह तिन्हें दूरिही सों त्यागे किन।
दीन,हीन, छीन, अति आयु के अधीन जान
मेरी सीख मान तज आन खटरागे किन।
तारिवे की बान जिहि सहज सुभाव सोई
स्रवत सुधा की धार ताके प्रेम पागे किन।
राधा नाम रतन अमोल को डवा है
ऐसो वृन्दावन तामें मेरे मन अनुरागे किन ।।८।।

(श्रीगोस्वामी हित किशोरीलाल जी)

संस्कृत टीका—

तदंगण मार्जनीत्वं कथं सम्पन्नं भवेदित्यत्र स्वयमेव स्वचित्तम्प्रत्युपदिशति। वृन्दानीति। भोः चेतः वृन्दाटवीमनुसर। वृन्दाटव्यानुसरणं बिना तदांगणमार्जनीत्वं कथं सम्पन्नभवेदित्यर्थः। किं कृत्वा सर्व महतां वृन्दानि दूरादपास्य महतां ब्रह्मादिनां आदि शब्देन ऋषीतीर्थ वेदानां वृन्दानि अपहाय दूरादपास्य। एतत् संबंधमात्रेण वृन्दावनं दूरे पतिष्यति,इति निश्चित्य। ननु किमेवं वृन्दावने सर्वस्य त्यागस्तत्राह। इह वृन्दावने राधाभिधानं दिव्य निधानमिति। इहैव वृन्दाटव्यां न नु

कल्पित पुराण संप्रसिद्ध गोलोकोत्तरे। राधैवाभिधानं यस्य एतादृशं यद्दिव्यनिधानं दिविभवं स्वर्ग सुखादि तन्निधीयते यस्मिन्निति निधानम्। स्वर्गादिष्वधिक सुखमत्रैव वृन्दाटव्यामेव। किमर्थमन्यत्रगन्तव्यमिति-भाव:। एवमैहिकं प्रदर्श्यामुष्मिकं प्रदर्शयति तद्विशेषणेनैव। कथं भूतं दिव्यनिधानं। राधाभिधानं सत्तारणीकृतसुभावसुधारसौघम्। सत्तारणी कृतोय: सुष्टुभाव: स एव सुधारसस्य ओघ: प्रवाह: स विद्यते यस्मिन् तत्। तस्मात्त्वं सत्त्वं सम्पाद्य श्रीवृन्दावने तिष्ठ सर्वमैहिकामुष्मिकं भविष्यति। श्रीराधाचरणारविंदानुग्रहादेवेतितात्पर्यार्थ: ॥८॥

रसकुल्या संस्कृत व्याख्या

वृन्दानीति। हे चेतस्त्वं सर्वमहतां वृन्दानि दूरात् अपास्य अपहाय प्रणयेन वृन्दाटवीमनुसर इत्यन्वय:। सर्वेषां चतुर्वर्गाणां कर्म्म, धर्म, तपो, ज्ञान, वैराग्याद्युक्तानुक्त समस्त साध्य साधनानां तत्सिद्धजीवन्मुक्ताश्च महतामिति। विश्व विविध जीवमात्र कृतार्थी करणान्महत्वमेतेषाम्। वृन्दानि-प्रत्येकं यूथशो न तु एकैकमेव दूरात् तत् संगमनुभूय किञ्चो परतो दूरत: श्रुत्वैव विश्रम्य निश्चित्य मनसि संकुच्य तद्गन्ध मात्रमप्यसहमान: अपहाय श्रवण मननतरत्यक्त्वा वृन्दा-टवी पूर्वविलक्षणतममहद् वृन्दभूतानां शिवविधि सनक-नारदउद्धवादि दुर्ल्लभ प्रार्थनीय तरु गुल्मादिनामपिमेवानुसर आनुकूल्येन चलेति वृन्दशब्दार्थ:। मुख्योऽर्थस्तु प्रसिद्ध एव। वृन्दायास्तदधिष्ठात्री देव्या वा श्रीराधाया: वनं तत्र प्रणयेने स्नेहेन न तु किञ्चिन्माहात्म्यज्ञानकृतार्थी करणधर्म्मत्वेनेत्यर्थ: । अनु इति। यत्र पूर्वं तव चेतनं नित्य संज्ञानं दम्पति रस-लीलास्थलेषु तत्रैव अनुसर। नात्र लोकगतं साध्यसाधनादि ननु सर्वं त्यक्त्वात्रानुसरणे का महत्तमार्थ सिद्धि: तत्राह। इह वृन्दाटव्यां राधाभिधानं दिव्य निधानमस्ति निधानं निधि: प्रसिद्धा: अष्टसिद्धिनवनिधित्वं व्यावृत्यर्थम्।

रसकुल्या संस्कृत टीका का हिन्दीभाषानुवाद

वृन्दानि सर्व इत्यादि श्लोक। हे मन तू सब ही महत् वृन्दों को दूर ही से त्यागकर स्नेह सहित वृन्दावन का अनुसरण कर, ऐसा अन्वयार्थ है सब ही के अर्थात् ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थो, सन्यासी चारों ही आश्रमों के कर्म, धर्म, तपस्या, ज्ञान, वैराग्य आदि जो कहे गये अथवा नहीं कहे साध्य और साधन और इनके पालन करने वाले जीवन्मुक्त सिद्ध पुरुषों को भी (ऐसा अर्थ वृन्दातिसर्व महतां शब्द का है) जगत् के विविध प्रकार के सम्पूर्ण जीवों को कृतार्थ करने के कारण इनका महत्व है इसलिये महतां कहा है। वृन्दानि वृन्द शब्द की द्वितिया विभक्ति के बहुवचन अर्थात् समस्त यूथ समूहों को त्यागना कहा है न कि एक एक के लिये कहा है। दूरात् दूर ही से न कि उनका साधन करके, अनुभव होने के बाद त्याग कर अपितु बिना ही साधन किये दूर ही से सुनकर कुछ विरामकर अर्थात् सोच कर उनसे मन में संकुचित होकर उनकी गन्ध को भी सहन नहीं करता हुआ करना तो दूर रहा अपितु सुनना और चितवन को भी त्यागकर अर्थात् स्वप्न में भी उनकी अभिलाषा छोड़कर वृन्दावन का पहिले बड़े बड़े महान् महान् झुण्ड के झुण्ड महादेव, ब्रह्मा, सनकादिक, नारद, उद्धव आदि को भी दुर्लभ और जिनके लिये प्रार्थना याचना की थी कि हम को इस वृन्दावन के वृक्ष लता पौधे इनमें से कुछ भी बना दो तथापि वह वहाँ के गुल्मलता पौधे घास का तिनका भी बन न सके। ऐसे वृन्दावन का ही अनुसरण कर।

इस लोक में किये जाने वाले साध्य साधन अनुष्ठान आदि की आवश्यकता नहीं है। क्योंकि सब ही का त्याग कर वृन्दावन का अनुसरण करने को कहते हैं तो इस प्रकार वृन्दावन के अनुसरण करने से कौन सा महान लाभ होता है। इस (का उत्तर देते हैं। यहां वृन्दावन में राधा नामक एक दिव्य निधि है वह दिव्य निधि यहां मिलती है) निधि अर्थात् प्रसिद्ध अणिमा लघिमा आदि अष्ट सिद्धिन से

धरे नवनिधि अर्थात् इन अष्ट सिद्धियों से परे दिव्यनिधि प्राकृत सिद्धियों से परे दिव्य निधि प्राकृत सिद्धियों से परे अप्राकृत अलौकिक दिव्यनिधान है। निधि को ही निधान कहते हैं।

रसकुल्या संस्कृत व्याख्या

दिव्येति,तत्रापि राधाभिधान कथनेतु परम अनिर्वचनीयता। ननु तत् किंसत्ताकं वस्तु किंवास्वादं पारमार्थिकं किञ्च नित्य निरतिशया परमावधि। तत्राह। सत्तेति, सक्तं निर्मत्सरे-त्याद्युक्त लक्षणानां वृन्दाटवीशरणं प्राप्यमाणानां तारणीकृतः सुष्ठु सुष्ठु निजभावोभक्तिः अनुरागस्तेन सुधारसौघो आप्यायनकृत् परमास्वाद रूपाः श्रवमाणाय (आप्यायन कृत्यरसास्वादरूपा) इत्यपि पाठः अस्मिन् अभूततद्भावार्थेतु तरणोपायास्त्वन्येपि बहुशः सन्ति अयं तु सर्व विलक्षणएव तथापि सर्वत्यजन पूर्वक अनन्याश्रितानां रसिक भावुकानां देहादि संगेन तितीर्षाभासोऽपि कदाचितस्यात्तेनोक्तं तरणो पायोऽप्ययमेवास्वादश्चाप्यय मेवेतिध्वनिः। अतएव प्रथमं भाव उक्तः। पश्चात् सुधारस इति। अथवा सुभाव एव रसः तारणी कृतत्वंतु भाव मात्रेणानुषंगिकं किंच तावद्देवादि विषय इति वन्माहात्म्य ज्ञानपूर्वको भावो जायते पश्चात् स एव सुष्ठुताप्राप्नोति। निरन्तर सेवनवृद्धो रसरूपः सन् सुधा रूपः स्यात् तस्य ओघाः इति। अनायास प्लाव्यमानत्वं ध्वनितं। रसे लीला सावलोकन जातप्रेमतन्मयतादि।

यद्वा—सत्तामहत्ता तस्या अप्यणीकृत शरणीकृत आश्रय रूपोयः सुष्ठु निजभावो भक्तिः सर्वमहत्वमत्रैव आश्रयते इति ॥८॥

रसकुल्या संस्कृत का हिन्दी में भाषानुवाद

दिव्य राधाभिधान अर्थात् दिव्य राधा नामक निधि है ऐस कथन करने से अनिर्वचनीयता प्रदर्शित हुई। क्योंजी वह ऐसी कौन सी सत्तात्मक परमोत्तम वस्तु है। ऐसा कोई पारमार्थिक उप-भोग्य है अथवा वह नित्य अवधि विहीन है ऐसी शङ्का होने पर कहते हैं। सत् सतां तारणी अर्थात् निर्मत्सरता आदि लक्षण सत्पुरुषों के श्री मद्भगद्गीतादि शास्त्रों में कहे हैं तल्लक्षण युक्त वृन्दावन की शरण प्राप्त सत्पुरुषों का उद्धार करने का सुष्टु (अच्छा-सुन्दर) भाव (भक्ति अनुराग) अमृत रस के प्रवाह में आप्यायन करने वाला राधा नामक एक दिव्य निधि है। उनके तरणार्थ (उद्धार के लिये) तो और भी कई उपाय हैं किंतु यह तो वलक्षण ही है सम्पूर्ण त्याग पूर्वक अन्य आश्रय विहीन रसिक भावुक-जनों के शरीर वाणी आदि संग से तितीर्षाभास तरण जैसा (उद्धार) जैसा आभास हो जाता है इसी से कहा है कि उद्धार का साधन भी यह है और रसास्वादन भी यही है यह ध्वनि इसमें दीख पड़ती है। इसीलिये सत्तारणी कृत सुभाव पाठ में प्रथम भाव शब्द का प्रयोग किया पश्चात् सुधारसौघ का किया है।

सुभाव सुन्दर भाव ही रस है यह दूसरा अर्थ है। उद्धार केवल भाव ही से उद्धार हो जाना आनुषंगिक थल है और भी देवता आदि विषय में अनुराग तो उनकी महिमा के ज्ञान से होता है तद्वत् महिमा-ज्ञान पूर्वक भाव हो जाता है फिर बढ़ते-बढ़ते सुन्दर शुद्ध भाव बन जाता है। उसका (उस शुद्ध भाव का) निरन्तर सेवन करने पर बढ़ा हुआ वही भाव रस होकर अमृत रूप में परिणित होता है। उस रसमय अमृत के ओघ प्रवाह यह सत्तारणी कृत सुभाव सुधारसौघ का अर्थ है। ओघ शब्द से बिना उद्यम ही उस प्रवाह में प्लाव्यमान (तरमतर) होना ध्वनित है। कैसे तरंमतर होता है वह बताते हैं कि लीला विलास देखने से उत्पन्न हुआ प्रेम तन्मयता प्रदान करता है अर्थात् प्रिया प्रीतम के शुद्धुज्ज्वल प्रेमलीला नित्य-विहारादि अवलोकन में तन्मयता हो जाती है।

दूसरा भाव यह है कि सत्ता का अर्थ महत्त है उस महत्ता का शरण आश्रय (आधार) रूप जो निज भाव भक्ति है वह ही सबसे महत्वपूर्ण लाभ है। (भाव यह है कि मैं वृन्दावन में त्याग पूर्वक रहकर भगवल्लीला चिंतवन करते करते पूर्णभाव आसक्त (प्रेम लक्षणाभक्ति) प्राप्त हो जाती है यह शुद्ध प्रेम प्राप्ति ही तरणोपाय साध्य (फल) की प्राप्ति है परम प्रेम लक्षणाभक्ति प्राप्त हो जाना ही पञ्चम पुरुषार्थ का ध्येय है वह वृन्दावन का आश्रय लेने से प्राप्त होता है इसलिये सर्व त्याग पूर्वक अनन्याश्रय वृन्दाटवी को प्राप्त करें। यह स्वचित्त का बोधनात्मक अपने मन का बोध है।)

रसकुल्या संस्कृत टीका

यद्वा सत् स्वपिसद्भावः कृष्णस्यैव। अतस्तत्सत्तायाः अप्यरणो कृतः सुभावो राधासत्ता सैवसुधारस इति। किञ्चं तस्याः प्राधान्येनैव माधुर्य्य रसोद्भवो भवति अन्यथा केवलं कृष्ण रसो न शोभां प्राप्नोति। यद्वा–भाव आसक्तत्वं रसआसज्य दम्पत्योर्मध्ये सा चासज्यरूपेण नित्यापि कदाचित् आसक्तेरभिलाष पोषणोत्कंठचात् आसक्तापिभवेत् यथा नादेवोदेवमूर्द्धयेदिति तदा क्षणं पलकांतर मप्यसहमाना परम विकला विह्वला हा प्रिया क्वासि क्वासिइति विवशा वेदत् यथा–

अंकस्थितेऽपिदयिते किमपि प्रलापं।
हा मोहनेति मधुरं विदधत्य कस्मात्॥
श्यामानुराग मदविह्वल मोहनांगी।
श्यामा मणिर्जयति कापिनिकुञ्जदेवी॥

(राधा-सुधा निधि २६)

इति तदा प्रियपरमानन्द दायिनी स्यात् इति अतएव अस्यभावे सुष्टुत्व मासज्यत्व संवलितमेवेति। यदा प्रकृता

तदा आसज्यत्वलाड़लात्व निःस्पृह सहजदर्प्पोदार्य धैर्य न त्यादिलक्षणात्रिर्भावास्यादिति किंचरसस्थितिस्तु तस्याः प्राधान्यएव तस्यचानुगतत्वएव अन्यथा रसच्युतिःस्यात् इतिहेतोः रसाधारत्वेन रसौघायस्मिन् अतएव, सुधात्वं ओघत्वेन बाहुल्यात् प्राकृतत्वं सूचितं तथैव अग्रेवक्ष्यति ॥

रसकुल्या की हिन्दी टीका

सत् पुरुषों में भी सद्भाव श्रीकृष्ण ही का है इसीलिये उस सत् की सत्ता का रक्षण कारी सुन्दरभाव श्रीराधा जी की सत्ता होती है वह राधा सत्ता ही सुधा रस है ऐसा भाव सत्तारणी कृत सुभाव सुधा इतने शब्दों से प्रकट होता है। यह भी है कि श्रीराधा जी की ही प्रधानता से माधुर्यरसोत्पत्ति होती है उनके विना अकेला कृष्णरसामृत सुशोभित नहीं होता है।

यद्वा--दूसरा भी अर्थ—आसक्ती का नाम 'भाव' और रस का नाम आसज्य है। इस युगल जोड़ी (प्रिया-प्रीतम) के बीच श्रीप्रियाजी नित्य ही आसज्य (प्रेमास्पद) रहती हुई भी कदाचित आसक्त प्रेमी) श्रीकृष्ण की अभिलाषा पूर्ण करने की उत्कंठा से आसक्त (प्रेमी) भी हो जाती है।

तब प्रिया प्रीतम का एक क्षण मात्र वियोग को नहीं सहन करने के कारण बहुत बेचैन व्याकुल हुई हा प्यारे! आप कहां हो कहां हो ऐसी विकल होकर पुकार उठती है। जैसा कि इसी में आगे कहा है--अंकस्थितेपि. ४६ वें श्लोक में—यद्यपि प्रिया अपने प्रेष्ट के गोद में विराज रही है फिर भी उनके विरह के भ्रम से अकस्मात् हा मोहन हा मोहन ऐसा मधुर प्रलाप प्रेम वैचित्य की अवस्था में कर उठती है। ऐसी श्यामसुन्दर के अनुराग मद से विह्वल मोहनाङ्गी कोई श्यामा मणि (श्रीराधा) निकुञ्ज-प्रान्त में जय युक्त विराज रही है इति। (राधा-सुधा-निधि ४६ वां श्लोक का भाव है)

उस समय यह प्यारी प्यारे श्रीकृष्ण को परम आनन्द देती है (अर्थात् प्रियाजी का भोलापन तथा अत्यंत प्रेम के कारण प्रेमवैचित्य हो जाने पर इस प्रकार की अवस्था देखकर श्यामसुन्दर को परम आनन्द होता है) अतः इस भाव में उत्तम आसज्य (प्रेमास्पद) संयुक्त है ही। और जब सहज स्वभाव में है आसज्यत्व लाड़-चावपन, अविच्छिन्न, सहज, अभिमान, (आत्म गौरव) उदारता, धैर्य, नमन आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं। किन्तु रस की स्थिति में तो प्रियाजी की ही प्रधानता है क्योंकि रस तो इन ही के अनुगत है अतः इन्हीं की रस स्थिति में प्रधानता होगी। इसमें इन प्रियाजी की प्रधानता न र. है तब तो रस ही नहीं ठहर सकेगा। रस का आधार ही होने से रस का प्रवाह जिनमें है वह राधाभिधानमिह दिव्य निधान कहा गया है। और याही के लिये अमृत के प्रवाह की अधिकता से स्वाभाविकपना सूचित किया है। जैसा कि इसी ग्रन्थ में कहेंगे।

रसकुल्या संस्कृत टीका

श्लोक--रसं राधायामाभजति किलभावं व्रजमणौ इति अर्थात् कदाचिद् भावात्मिका कदाचिद् रसात्मिका स्यादित्येवं अमृतौघा यत्र तत्रैव। अनुसरेति पक्षे सत्तारणी कृतत्वं नाम सतां रसिकभावुकानां मुक्त्यनपेक्षमाणानां न किंचित् संसार तरणमेवार्थः। किञ्चकेषांचिन्मते श्रीमत्याः प्रसिद्ध व्रजलीलानुगतासक्तभाव महा विरह भ्रम मानाद्येन का सह्यभावाः संततदुःख पारावारे निमज्योन्मज्यमनानां अनेन उद्धरणं कृतमिति। अन्यथा कथमगाध असाधारण रसाधार राधारस प्राप्तिरभविष्यत्। यथा--

श्लोक--अनाराध्यराधा पदाम्भोजरेण्वनाश्रित्य वृन्दाटवीं। तत् पदांकामसंभाव्य तद्भावगंभोर चित्तान्। कथं श्यामसिंधोः रसस्योवगाहान्। अत्रैव अग्रे वक्ष्यति यत्।

श्लोक—'राधादास्यमपास्य यः प्रयतते गोविंदेत्यत्र' किंच श्यामरति प्रवाहलहरी बीजं नयेतांविदुः। तेप्राप्यापि महामृतांबुधि महाबिन्दुं परंप्राप्नुयुः।

अत्रनिधाने रसौघाति यथा चिंता मर्यादावचिन्त्य शक्तित्वं तथा चतुर्रचितामणौ रसौघ बाहुल्यं प्रतिक्षणं यथा संभव प्रस्रवणं येन श्यामंसिधावपि सुधारसविशिष्टत्व अल-मिति सहृदयैकवेद्यम् ॥ ८ ॥

रसकुल्या की हिन्दी टीका

कभी तो रसस्वरूपा अर्थात् कभी आसज्य (प्रेमास्पद) और कभी भावात्मिका (आसक्त) स्वरूपा होती हैं। इस प्रकार अमृत का प्रवाह जहां है हे चित्त तू वहीं (वृन्दावन में) अनुगमन कर ऐसा पक्ष है वह यह अर्थ होगा कि सत्पुरष रसिक भावुक भक्त जोकि मुक्ति को भी नहीं चाहते हैं उनका संसार से तरने का प्रश्न ही नहीं है।

किन्हीं किन्हीं के मन में श्रीराधा की लीला का अनुसारी (श्रीमद्भागवत मतानुसारी) ब्रज लीला में आसक्त जन जिनके महा विरह भ्रममान आदि आदि असहनीय भाव हैं उन विरह रूपी अपार दुःख सागर में डूबते उछलते हुए भक्तों को इसी ने निकाले हैं नहीं तो अथाह असाधारण रस का आधार राधा रस की प्राप्ति होगी जिसे गदाधर भट्टजी महानुभाव के चरित्र प्रसङ्ग (श्री रूप गोस्वामीजी के वचन) में कहा है कि श्रीराधा चरण कमल रेणु के आराधना किये बिना और श्रीराधा चरणों से अङ्कित वृन्दाटवी का आश्रय किये बिना भाव में गम्भीर चित्त वाले भक्तों का श्याम सिन्धु में अवगाहन होना दुर्लभ है इत्यादि और राधा सुधानिधि के इस ग्रन्थ में कहा है कि—

जो लोग श्रीराधा के चरण कमलों का सेवन छोड़कर गोविंद

के संग लाभ की चेष्टा करते हैं वे तो मानो पूर्णिमा तिथि के बिना ही पूर्ण सुधाकर चन्द्र का परिचय करना चाहते हैं वे अनविज्ञ यह नहीं जानते कि श्याममसुन्दर के रति प्रवाह का बीज यही श्रीराधा हैं आश्चर्य है कि ऐसा न जानने से ही वे अमृत के समुद्र में से केवल एक बूँद मात्र अमृत प्राप्त कर पाते हैं। यह भाव निधान और रसौघ इन शब्दों का है। अर्थात् जैसे चिन्तामणि आदि मणियों में अचिन्त्य शक्ति होती है ऐसे ही इस चतुर चिंतामणी श्रीराधाभिधान सिन्धु रस में प्रवाह की अद्भुत अलौकिक आधिक्यता है जो प्रतिक्षण पूरी तरह बहता रहता है इसी बहाव के कारण श्याम सिंधु में भी अधिक सुधा-रस बस इतना कहना ही पर्याप्त है, यह सुहृदयी भावुक रसिकजन का संवेद्य विषय है इति ॥८॥

एक भावुक भक्त जिज्ञासा करते हैं कि जिनकी किंकरियों की खुशामद मोर पिच्छ का मुकुटधारी परात्पर सच्चिदानन्द घन परब्रह्म श्रीकृष्ण नित्य करते रहते हैं ऐसा आप कहते हैं तो वह किंकरी गन कौन हैं और उनका स्वरूप क्या है यह मेरी जानने की इच्छा है क्योंकि देवों के आराध्य देवता श्री कृष्ण हैं और सर्वाराध्य श्रीकृष्ण की आराध्य देवता राधा श्रीकृष्ण अनन्य भक्त राधा के हैं फिर किंकरियों की खुशामद क्यों करते हैं।

ग्रन्थकर्त्ता उत्तरपूर्वक सहित किंकरी गण की रहस्यपूर्ण बात समझते हैं। यह समस्त किंकरी मण्डल (सखी, सहेली, मञ्जरी, किंकरी, सुहृद, सखी, सजनी,) श्रीराधा जी की कायव्यूह रूपा हैं। कायव्यूह कहते हैं एक वस्तु अनेक रूप हो जाना अर्थात् किंकरीगण श्री राधा ही का स्वरूप हैं सो कैसे इसको सुनिये—

श्लोक—यस्यास्तत्सुकुमार सुन्दर पदोन्मीलन्नखेन्दुच्छटा
लावण्यैक लवोपजीवि सकल श्यामामणी मण्डलम् ।
शुद्ध प्रेमविलास मूर्तिरधिकोन्मीलन्महामाधुरी
धारासारधुरीणकेलि—विभवा सा राधिका मे गतिः॥

जिनके उन सुकुमार एवं सुन्दर चरणों के प्रफुल्लित नखचन्द्र की छटा के लावण्य का एक लवमात्र ही समस्त श्यामा किंकरीयों का जीवन (स्वरूप) है जो यह किंकरी मण्डल शुद्ध प्रेम विलास ही की मूर्ति हैं इत्यादि। (राधा सुधा निधि श्लोक १३१)

कवित्त

जाके सुकुमार चारु चरणसों उलही है,
नखचन्द्र छटा कोऊ ताकी जो लुनाईजु।
ताको कोऊ अंसन ते जन्मी श्यामा किंकरीहै,
सगरी किशोरी गण मण्डली सुहाईजु॥

शुद्ध अति प्रेम के लास्य की मूर्ति हैं। इत्यादि

भाव यह है कि लड़ेती लाड़िली श्रीराधा प्यारी जी के सुकुमार कोमल प्रेम परिपूर्ण चरण कमलों के नखचन्द्र की देदीप्यमान अनन्त किरणों की एक किरण के लवमात्र भाग से इन तत्सुख सुखी किंकरियों (श्यामा मण्डल) का प्रादुर्भाव है और इनका जीवन पोषक पदार्थ प्रिया के प्रेममय नित्यविहार रास विलासादि प्रेम सुख में सेवोपयोगी रहना मात्र है। जैसे–

सच्चिदानन्दघन परब्रह्म ही का अंश जीव का होना श्रीकृष्ण वचनामृत भगद्गीता वेद उपनिषदादि में प्रतिपादित है। वही स्वरूप श्रीप्रिया का कायव्यूह (अंश) ये किंकरीगण हैं। अतः यह किंकरी गण साक्षात् प्रिया स्वरूपा ही हैं।

श्री निम्बार्क सम्प्रदायाचार्य श्रीहरिव्यासदेव महावाणीकार इन सखियों (किंकरियों) का प्राकट्य स्वरूप इस प्रकार वर्णन करते हैं कि श्रीप्रिया जी के नूपुर की ध्वनिरूप महा प्रेम सागर की लहरें ही यह सखि मण्डल हैं और यह इच्छारूपा श्रीप्रिया की हैं जैसे समुद्र का जल ही तरंगें प्रकट होकर कल्लोक करती हैं समुद्र के सुख विहार का वर्द्धन करती हैं और समुद्र के जल में ही विलीन होकर

पुनः प्रकट होती रहती हैं इसी प्रकार श्रीप्रिया की इच्छा से ही अपने नूपुर रूप समुद्र से तरंग रूप सखियां प्रकट होकर लीन होती हैं पुनः पुनः प्रकट होती हैं। अतः किंकरीगण केवल प्रिया की इच्छा रूपा हैं महावाणीकार वर्णन करते हैं—

* पद *

श्री राधा पद कमल तें नूपुर कलरव होय।
निर्विकार व्यापक भयो शब्द ब्रह्म कहि सोय ॥
जै-जै नित्य विहार जै-जै वृन्दावन धाम।
जै-जै इच्छा शक्ति जै-जै जिनको यै यै काम ॥
प्रिया सक्ति अहलादिनी पिय आनन्द स्वरूप।
तन वृन्दावन जगमगें इच्छा सखी अनूप ॥
कोटिन कोटि समूह सुख रुखलियैं इच्छा शक्ति।
प्राणेशहि प्रमुदावहिं प्रमदावलि अनुरक्ति ॥
जबतें ए ए तब हो तें ए ए एक अनन्त।
श्री वृन्दावनमें सदा नित्य विलास विलसंत ॥
सरिता रस श्रृङ्गार की वहति सदा चहुँ ओर।
इक छित राजकरैं जु श्रीहरिप्रिया युगलकिशोर ॥

यह किंकरीगण क्या करती हैं वह कहते हैं।

केशान् बध्नन्ति भूयो विदधतिवसनं वासयन्त्याशयन्ति—
वीणा—वंश्यादि हस्ते निदधति नटनायादराद्वादयन्ते।
वेशाद्यद्धि चकतुं कथमपि नितरामालयः शक्नुवन्ति—
श्रीराधाकृष्णयो उन्मदमदन कलोत्कण्ठयोः कुञ्जवीथ्याम् ॥

(श्री वृन्दावन द्वितीयशतक श्लोक सं० ८०)

भावार्थ—श्रीप्रिया-प्रीतम राधाकृष्ण शुद्ध प्रेम विलास तत्सुख सुखी भाव मग्न आत्मदेह विस्मृत हुए प्रेम सागर में निमग्न हो रहे

हों तब इनको प्रेम सुख में यह भी पता नहीं रहता कि हम कहाँ हैं कहाँ जाना है,क्या करना है,भोजन किया कि नहीं,क्या कहना है क्या कहा,कौन हमारे पास है यहाँ तक कि हम कौन हैं केवल प्रेम मय भाव स्थल में अभिन्नस्वरूप हो रहते हैं तब सखियाँ अवकाश पाकर इनके बिखरे केशों को बाँधती हैं भूषणों को सजाती हैं वस्त्र पहिनाती हैं भोजन कराती हैं इनको प्रेमावर्त से बाहिर निकालने का प्रयत्न करके इनको मादन सुख (रासविलासादि)विलासनेके लिये चेत कराती हैं चेतकरने के लिये वाणी के तार स्वरों से साधकर प्रिया के हाथ में पधराती हैं कि इसको बजाने से प्रेमावर्त से बाहिर हो सकेंगे एवं श्री प्यारे श्यामसुन्दर के हस्तकमलों में वंशी धारण कराती हैं फिर भी सावधान हो नहीं पाते तब आप बड़े आद से वाद्य यन्त्रों के वादन पूर्वक नृत्य करती हैं और वेशभूषादि की शोभा समृद्धि बढ़ाने का अतिशय यत्न करती रहती हैं। श्रीराधावल्लभ संप्रदाय में आचार्य रसिक सन्त रसिक भावुक भक्तों के मत से सहचरी किंकरी) गण की स्वरूप सेवा इस प्रकार मानी गई है।

श्रीराधावल्लभीय सम्प्रदाय में परात्पर प्रेम का एक रूप विशेष हैं अर्थात् प्रेम जो हित रूप है उस ही हित का मूर्तिमान् स्वरूप विशेष सहचरी हैं और प्रेम-विहार की परम उपयोगी सहचरी हैं इसीलिये प्रेम विहार में सहचरीगण उतनी ही आवश्यक मानी गई हैं कि जितने आवश्यक प्रिया-प्रीतम श्रीश्यामा श्याम।

प्रिया प्रीतम श्रीराधालाल युगल के बीच में जिनको सखी कहा जाता है वह दो तन (श्रीराधाकृष्ण) की एक छां ही है। जैसे दो नेत्रों में एक दृष्टि रहती है वैसे ही इन दोनों के बीच में सुख देने वाली सहचरी है जैसे रात्री और दिन के बीच की सन्धि का नाम सन्ध्या है, जैसे ऋतुओं की सन्धि शरद और बसन्त हैं। और जैसे मिश्री और पानी मिलाकर शरबत कहलाता है, सन्धिरूपा सखी को भी वैसे ही जानना चाहिये।

अद्भुत गति या प्रेम की यामें रीति अनेक।
दुहु तन की कबहू सुनी परछांही है एक।।
दुहुअन बीच सख यह नाही दुहु तन की एकै परछांहि।
त्यों दुहुं बीच सखी सुखदाई, दुहु नैननि ज्यों दीठ ठहराई ।।
सांझसंधि ज्यों निशिदिन मांहि शरद वसंत ऋतुन में आहि।
मिश्री पानी शरबत ज्योंके, संधि सहेली समझा त्यों के ।।

(केलि कल्लोल)

सखियाँ युगल की पारस्परिक प्रेम का रूप हैं अतः वे सहज ही युगल प्रेम में आसक्त रहती हैं। युगल किशोर दोनों प्रेम की सीमा हैं सखियों का प्रेम असीम है।

सहज प्रेम को सींव दोउ नवकिशोर वर जोर।
प्रेम को प्रेम सखान के तिहि सुख को नहि ओर ।।

[ध्रुव० प्रेमावलि]

किंकरियों का प्रेम असीम होने के कारण श्री श्यामाश्याम के प्रेम से सरस भी अधिक है। इसका हेतु बताया है कि युगल तो निज प्रीति का उपभोग करते हैं उसमें प्रेम और नेम (काम चेष्टायें आदि) ताने बाने की तरह बुने रहते हैं और सखियों का प्रेम इन दोनों के प्रेम के साथ है इसलिये उन सखियों को नेम (काम चेष्टा) स्पर्श नहीं करता है। और इस दृष्टि से उनका प्रेम युगल के प्रेम से सरस अधिक है।

लाल लाड़िली प्रेम ते सरस सखिनु को प्रेम।
अटकी हैं निजु प्रेम रस परसत तिनहि न नेम ।।

(ध्रुव० प्रेम लता)

किंकरियों को प्रेम के नेम तो स्पर्श नहीं करते किन्तु वे जीवन धारण उनही का चयन करके करती हैं।

नैन सैन चितवनि चपल मनुमुक्ता छवि ऐन।
सखी सबैं मनु हँसनि चुगत है भरि भरि नैन ॥

(ध्रुव मनश्रृंगार लीला)

हितध्रुवदास कहते हैं युगल के नेत्रों की सेन और चपल चितवनि रूपी परम सुन्दर मोतियों को सखी हास्य नेन भर भर कर चुगती रहतीं हैं।

श्रीराधाबल्लभ संप्रदाय में सखियों को प्रिया प्रीतम की इच्छाशक्ति माना है अतः जब से श्री श्यामाश्याम अनादि अनंत काल से नित्य निकुञ्ज में विराज रहे हैं जबसे प्रिया प्रीतम तबसे उनकी इच्छा भी है सखीगण युगल की प्रेम लीला की प्रयोक्तृ भी हैं उनकी इच्छा राधाकृष्ण की रुचि के साथ इतने सहज भाव से अभिन्न बनी हैं कि ध्रुवदासजी ने सखियों को युगल की इच्छाशक्ति माना है और कहा भी है कि स्वभावतः युगल दोनों प्रिया प्रीतम सखियों की इच्छा के आधीन रहते हैं। इच्छाशक्ति रूपी सखीगण सम्पूर्ण रसमय क्रीड़ाओं की प्रेरक भी हैं ये ही सबही के हृदय में क्रीड़ा के अनुसार भावोदय करतीं हैं।

* पद *

करवावत सब ख्याल इच्छाशक्ति सखी तहाँ।
उपजावत तिहि काल भाव सबनि के तैसोई ॥

(सभा मण्डल)

लाड़ लड़ेती को जैसी जैसी इच्छा विहार की होती है वैसी वैसी लीलाओं के साज को सजाया करतीं हैं।

एक समय संध्या में वन विहार गहवरबन में कर रहे थे। प्रीतम के मन में दुरी खेलन (आँखमिचोनी) की इच्छा हुई श्रीहित अलिजी को मालुम हो गई और ललितादिक सखियों से कही कि आज

इस गहवर वन में आँखमिचौनी को खेल रचें सखि श्रीललिताजी ने प्रिया-प्रीतम से निवेदन किया कि हे प्यारे आज तो दुरिखेलों दोऊन की आज्ञा पाय होड़वदी वामें प्रियाजी की बाजी आँख मुँदवाने की हुई ललिताने श्री प्यारी जी की आँखें बन्द करीं और लाला गहवर के सघन कुञ्ज की थली में वृक्षन की ओट छिप बैठे सखियाँ प्यारी जी वन, उपवन, यमुना कूल ढूँढन चली किन्तु प्यारे नहीं मिले फिर प्यारीजी ने सखियों से पूछी अरी सखियो प्यारे कहाँ दुबके हैं सखियों ने आँखों के संकेत से प्यारे की जगह बताई तब प्यारी ने प्यारे को खोजकर पकड़ लिये फिर प्यारे की आँखें विशाखा जी ने बन्द की और सखियाँ दुबक गईं प्यारी भी प्यारे को छकाने के लिये स्वर्ण कमलों के मध्य जाय दुबक गयीं।

※ पद ※

तब पुनि राधा कुंअरी दुरनहित,
पियसों बाँधी पेजधनी है।
निकट ही कनक जलज जहँ फूलो,
कुञ्ज ओट दे तहाँ गवनी है॥ १ ॥
ढूँढत फिरत सघनवन वीथिनु,
उक्ति जुक्ति मन करत घनो।
दृग अकुलात प्रिया विनु देखे,
चित की चाह न परत गनो है॥ २ ॥
ललिता आदि सखी सब गोहन,
गहति लालसों सब जनी है।
लावो खोजि बलिगई मोहन,
यहै चातुरी की कसनी है॥ ३ ॥

हँसि-हँसि देति वदन पट सुन्दरि,
निकट ठाड़े रसिक धनो है।
कुँवरि न परति लखाई तनक हूँ,
प्रीतम हिये प्रीति उफनी है॥ ४ ॥

हित सहचरिसों विविध※ विनति,
रसिक लाल कर जोर ठनी है।
समझ गई सेननि में सबही,
हार जीतकी गति जितनी है॥ ५ ॥

कर--वर--गहे जब नागरि,
प्रमुदित देखि सबे सजनी है।
नेह उदधि पिय उर भरिलीने,
जातें कहति रसिक मनी है॥ ६ ॥

मिलि अनमिलेसे नित मानत,
पलक विसरि लोचन अनीरी है।
वृन्दावन हितरूप बलि गई मिलि,
विहरत कुञ्जनि कमनी है॥ ७ ॥

इस प्रकार प्यारे प्रिया कूँ ढूँढ न सके तब इनकी प्रिय की हार हुई और सखियाँ हँस हँसिकर अपने वदन पर घूंघट पट दे रही कारण कि लाल की ओर देखकर उनको हँसि रुक नहीं रही अतः मुख घूँघट की ओट कर लिया। लाल को प्रिया के मुख अन देखें

※विविध विनती का भाव है। लाल किंकरियों के समक्ष कर जोड़ पांय पड़ हा हा खाय अनेक चाटु वचन काकुवाणी से प्रार्थना करने लगे और उनको प्रसन्न करके प्रिया कहाँ छुप रही हैं यह पूछने लगे निकुञ्ज में प्रतिदिन हार कर किंकरियों की खुशामद करते रहते हैं प्रियाजी की सेवा करने के लिये यत् किंकरीषु बहुशः खलु काकुवाणी का भाव है।

बहुत व्याकुलता हुई जब प्रिया स्वयं पधार कर लाल का कर पकड़ कर हँस पड़ी उस समय लाल प्रिया मुख कमल के दर्शन प्यार से अपने नेत्रों से बार-बार गोरवदनारविंद मकरन्द का पान करते न थके।

❀ पद ❀

हरि दृग दरशन प्यासे गौर वदन सर चहत।
शीतल वारि रूप रस पोवत पुनि पुनि वह मग गहत॥
श्रमहि गमावत अति सचु पावत,
छवि के गहर परि इक टक रहत।
वृन्दावन हित रूप जाऊँ बलि अमित लाहो लहत॥

'वृन्दानि सर्व महतामिति' इस श्लोक का भावार्थ चिंतवन—

सबही महान् महान् साधनों का और महत् उपदिष्ट समस्त साधनों का दूर ही से त्यागकर वृन्दावन का स्नेह सहित, हे मन तू अनुसरण कर ऐसा आप कहते हैं। तो प्रश्न होता है उस वृन्दावन में ऐसा क्या चमत्कार है, जिसके लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, देने वाले महत् प्रशंसित, वेद प्रतिपादित, साधनों का भी त्यागकर सीधे वृन्दावन चले जावो। इसके समाधानार्थ वृन्दावन की सर्वोत्तमता और अति चमत्कारिता पूर्ण महिमा को दिखलाते हैं।

जीवमात्र सच्चिदानन्दघन परमात्मा का अंश है परमात्मा का ही स्वरूप है "ममैवांशो जीवलोके जीवभूत: सनातन:" अर्थात् जीव अंश है परमात्मा अंशी है जैसे समुद्र का एक जल कण रूप जीव स्वरूप और सम्पूर्ण अगाध अथाह परिपूर्ण जल समुद्र रूप परमात्मा समझो। जीव में अत्यन्त अल्प सत्कण है अत्यंत अल्प चित् शक्ति है, और अत्यन्त अल्प आनन्द भी नहीं किन्तु आनन्द का आभास मात्र है वह भी समुद्र का एक कणमात्र है। जीव का पूर्ण सत् पूर्ण चित् पूर्ण (ज्ञान) और पूर्ण आनन्द जो परमात्मा श्रीकृष्ण हैं उनकी प्राप्ति किये बिना पूर्णता प्राप्त नहीं होती है। प्रभु को प्राप्त कराने के

लिये वर्णाश्रम धर्म, कर्म सांख्य, योग, वैदिक, तान्त्रिक, धर्मानुष्ठान आदि साधन हैं जो कि अनन्त जन्मों तक आचरण करते करते भगवत् प्राप्ति रूप सिद्धि प्राप्त होती है जैसा कि साक्षात भगवान् श्रीकृष्ण के वाक्य गीता में 'अनेक जन्म संसिद्धिस्ततो याति परां-गतिम् ।' इति इन सब साधनों से विलक्षण भगवत् प्रेम ही ऐसा सिद्ध अमोघ साधन है जिससे सन्देह रहित निश्चित् ही भगवत् प्राप्ति अति शीघ्र स्वल्पातिस्वल्प काल ही में हो जाती है और अति सुलभता से प्राप्त होती है।

इसके प्रत्यक्ष प्रमाण व्रज गोपिकाएँ हैं लौकिक उदाहरण के लिये, एक स्थान से दूसरे स्थान को पहुँचने के लिये बैलगाड़ी, घोड़ा गाड़ी, साइकिल, मोटरकार इन सब ही से यात्रा करने वाला यात्री यदि विमान (हवाई जहाज) में बैठकर जैसे अल्प समय ही में अति दूर और पर्वत, नदी, समुद्र युक्त दुर्गम मार्ग को अपने गन्तव्य स्थान की प्राप्ति सुलभ एवं शीघ्र कर लेता है। प्रेम ही भगवान् का स्वरूप है और यह भी कहा जा सकता है कि प्रेम ही भगवान् है। वैसे भग-वान् अति दुर्लभ अचिंत्य अनिर्वचनीय बुद्धि से भी परे हैं ऐसे परम दुर्लभ हैं। निखिल प्रेमानन्द स्वरूप परात्पर सच्चिदानन्दघन हैं। एक ही तत्व एक ही स्वरूप एक मन दो शरीर भासमान श्रीराधाकृष्ण परम तत्व रसरूप रसो वै सः वेद सिद्ध परमात्मा एकाकी न रमते सद्वितीयमैच्छत् अपने प्रेममाधुर्य सागर की लहरियों के कल्लोलानंद मधुरता को विलसनार्थ स्वयं वृन्दावन (द्रुम वल्लितरुलता गिरी, यमुना, कानन,विविध रूप) होकर कायव्यूह रूपा सहचरी मंजरी सखी सहित अखण्ड विहार कर रहे हैं। यह अति दुर्लभ भी वृन्दावन (स्वयं परमात्मा) रसरूप अनन्ताखण्ड नित्य सुखरूप परमानन्द की प्राप्ति इस वृन्दावन के सेवन करने ही से सुलभ हो जाती है इसलिये यह वृन्दावन सर्वाधिक सर्वोत्कृष्ट धाम है।

इसकी महिमा ऋषि मुनि देवाधिदेव गण भी पूर्ण रूप से कहने में समर्थ नहीं हैं। सर्व ज्ञान-सर्व विद्या व प्रेम की मूर्ति तुङ्ग-विद्या के अवतार श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद शतशः श्लोकों में धाराप्रवाह रूप से वर्णन किया है कि अन्तः कृष्ण बहिः श्री गौर द्युति श्रीकृष्णराधा सम्मिलित एकावतार श्रीगौरचन्द्र महाप्रभु ने कृपाकर मुझ को अपनी शरण देकर निज प्रेम विहार धाम श्री वृन्दावन दिखलाया उसी स्वरूप का सत्य सत्य वर्णन श्रीवृन्दावन महिमामृत ग्रन्थ सागर में वर्णन है—

श्रीराधा मुरली मनोहर पदाम्भोजं सदा भावयन् ।
श्रीचैतन्य महाप्रभोः पदरजः स्वात्मानमेवार्पयन् ॥
श्रीमद्भगवतोत्तमान् गुणनिधीनत्यादरादानमन् ।
श्रीवृन्दावन दिव्यवैभवमहं स्तोतुं मुदा प्रारभे ॥

श्री श्रीराधा तथा श्री मुरली मनोहर के चरणारविन्दों का निरन्तर ध्यान स्मरण करता हुआ श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की चरण रज में आत्म समर्पण कर एवं कल्याण गुण सागर भक्तशिरोमणि वृन्द के चरणकमलों में अतिशय सन्मान सहित मुहुर्मुहु प्रणाम कर आनन्द पूर्वक मैं श्री वृन्दावन के दिव्य (चिन्मय) वैभव की स्तुति कर रहा हूँ ॥

श्रीवृन्दावन तत्त्वं श्रीराधाकृष्णयोस्तत्वं ।
निजतत्वं च सदास्मरायन् प्रकटित मसि गौरचन्द्रेण ॥
(वृ० म० द्वि० श० श्लोक ९५)

श्रीचैतन्य चरितामृत ग्रन्थ में स्वयं ग्रन्थकार श्रीप्रबोधानंद सरस्वतीपाद ने लिखा है कि गौरचन्द्र ने मुझ को शरण देकर कृपा कर अपने स्वरूप में श्रीवृन्दावन, श्रीराधाकृष्ण के दर्शन कराये और निजस्वरूप (श्रीप्रिया किंकरी स्वरूप) का भी साक्षात् दर्शन कराया। शास्त्रार्थ के बाद महाप्रभु ने इतना

ईशोऽपि यस्यमहिमामृतवारि राशेः ।
पारं प्रयातु मनलम्बन तत्र केऽन्ये ॥
किन्त्वल्पमप्यह मति प्रणयाद् विगाह्य ।
स्यां धन्य इति मे समुपक्रमोऽयम् ॥२॥

(वृ० म० द्वितीय)

इस वृन्दावन महिमामृत समुद्र का पान करने में ब्रह्माजी भी समर्थ नहीं हैं तो फिर दूसरे देवता मनुष्य की तो बात ही क्या है किन्तु एक लव कणमात्र भी इस वृन्दावन की महिमा प्रीति पूर्वक मैं इस वृन्दावन महिमामृत समुद्र में अवगाहन कर धन्य हो जाऊँगा यह श्री प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद कहते हैं ॥२॥

ग्रन्थकार फिर कहते हैं कि हे सज्जनो, रसिक भावुक भक्त वृन्द सुनो, श्री लड़ेती और लाल के स्फूर्जत् पद नखमणि की अनन्त ज्योतिर्मय किरणों में से एक किरण की अंशमात्र छटा से ब्रह्म ज्योति प्रकट हुई, जो कि अनन्त विश्व को प्रभावान्वित कर रही है ऐसे अनंत सान्द्र प्रेमामृतमय सिन्धु जिन प्रिया-प्रीतम के साक्षात् स्वरूप यह श्री वृन्दावन तेजोमय दिव्य धाम हैं ऐसे महा महिम प्रेमानन्द पूर्ण श्री वृन्दावन के ही शरण में जाकर उन ही से प्रार्थना करें कि हे श्रीमद् वृन्दावन अति आश्चर्यजनक स्वाभाविक परमानन्द विद्या-रहस्य युक्त जो आपका स्वरूप है उस स्वरूप को मेरे हृदय में स्फुरित करने का दया करो। श्री प्रिया नखचन्द्र मणि की लवमात्र छटा से प्रकटित पूर्ण ब्रह्मामृत के ही वर्णन करने में लज्जित होकर उपनिषद भी जब नेति नेति पुकार रहे हैं तब आपकी (श्रीवृन्दावनकी) महिमा की बात कैसी कही जाय।

चमत्कार बताया तब ही से इन पर शक्ति पात की तरह अनुग्रह किया तब श्री प्रकाशानन्द से श्री प्रबोधानन्द हुए यह घटना काशी में दूसरी बार महाप्रभु पधारे उस समय की है।

*** श्लोक ***

श्रीमद्वृन्दाटवी ममहृदि स्फोरयात्मस्वरूप-
गत्याश्चर्य्यं प्रकृतिपरमानन्द विद्यारहस्यम् ।
पूर्णब्रह्मामृत मपि वाभिधातुं न नेति ब्रूते-
तथोपनिषद इहात्रत्य वार्ता कुतस्त्या ॥३॥
(वृन्दा० म० ३)

श्लोक

चलल्लीलागत्या क्वचिदनूचलद्धंस मिथुनं-
क्वचित् केकिन्यग्रे कृत नटनचन्द्रक्यनु कृति ।
लताश्लिष्टं शाखि प्रवरमनुकुर्वत् क्वचिदहो-
विदग्धद्वन्द्वं तद्रमत इह वृन्दावन–भुवि ॥२१९॥
(श्रीराधा सुधा निधि)

अहो वे चतुर श्याम राधिका दोनों इस वृन्दावन भूमि में कहीं लीला पूर्ण गति द्वारा हंस मिथुन का अनुसरण करके कहीं मोरनी के सन्मुख मयूर की नृत्य के चेष्टा की नकल करके और कहीं लता से लिपटे तमाल वृक्ष का अनुकरण करके क्रीड़ा कर रहे हैं ।

श्लोक

कदा मधुर सारिकाः स्वरस पद्य मध्यापयत्–
प्रदाय करतालिकाः क्वचन नर्तयत् केकिनम् ।
क्वचित् कनकवल्लरीवृत तमाल लीलाधनं–
विदग्ध मिथुनं तदद्भुतमुदेति वृन्दावने ॥२२१॥
(राधा सुधा निधि)

*** सवैया ***

लीला करिकें कभू एक चले दोऊ हँसकी चाल महा गरवीले ।
कभू मोरको निरतत देख तहां करे नृत्य दोऊ रस में सुरसीले ॥

लपटीजु लता द्रुमसों मिलि श्रेणी सी तैसें मिले अंग अंग छबीले।
कोऊ एक मंगल जुगल चतुराई के सिन्धु रमे वन भूमि पै नैनसीले ।।

कभी मधुर-स्वर वाली सारिका (मेनाओं) को निज रस पद्यों (श्रीकृष्ण गुणपद्यावलि) को पढ़ा रहे हैं। कभी ताली बजा बजाकर मयूरों को नचाते हुए तो कहीं कनक लता से लिपटे हुए तमाल वृक्ष के लीला धन से बनी चतुर युगल से यह वृन्दावन जगमगा रयो है।

वृन्दावन का स्वरूप ऐसा है यदि श्री राधिका कृपाकर दिव्य दृष्टि प्रदान करें। महा चिन्तामणिमय स्थलों से युक्त सुन्दर कर्पूरवत् चूर्ण द्वारा तथा पुष्प राग समूह द्वारा व्याप्त, लवमात्र स्पर्श करने से ही षड्उर्म्मी अर्थात् शोक, मोह, जरा, मृत्यु, क्षुधा तथा पिपासा को नाश करने वाले रस का प्रदान करने वाली श्री वृन्दावन भूमि को प्राप्त कर सुख पूर्वक भव-सागर से पार हो जा।

(श्लोक ६० वां वृन्दावनशत अष्टमश०)

श्लोक

महाचिन्तारत्नप्रचयमय कूर्पादि-वलितां-
सुकर्पूर क्षोदैः सुकुसुम परागैश्च निचिताम्।
षडूर्मीणां निर्मूलनकर सकृत्स्पर्शनलवां-
भवाब्धि श्रीवृन्दावनभुवमितः सन्तरसुखम् ।।

(वृ० श० अष्टम्)

श्री वृन्दावन का विधियुक्त रसरीति का अनुगमन कर निर्दिष्ट रीति से निवास श्रीधाम वृन्दावन में करने वाले श्रद्धालु भक्त को निम्नोक्त लाभ इसी जीवन में प्राप्त हो सकता है।

श्लोक—सर्वा त्युत्तमधामतोऽत्युपरिमात्यानन्द साम्राज्य भृत्।
वृन्दारण्यमिहैव भाति सकलाश्चर्य किशोर द्वयम् ।।
तत् प्राणात्म महासुभावललिताद्याली निदेशे स्थितो।
योऽन्तः स्वेष्टतनुः स्फुरन् रसमयं चेष्टेत तस्मै नमः।।२३

(श्री वृन्दावन महिमामृते नवम शतक)

समस्त अत्युत्तम धामों के ऊपर आनन्द साम्राज्ययुक्त श्रीवृन्दावन धाम शोभित हो रहा है । इसी स्थल पर ही सर्वाश्चर्यमय श्रीराधा कृष्ण युगल किशोर की प्राण स्वरूप मानने वाली जो उत्तम सर्व श्रेष्ठ भाव युक्ता श्री ललिता विशाखादि सखियाँ हैं । उनकी आज्ञानुसार (ललिता जी के अवतार श्री हरिदास स्वामी श्रीवंशी जी के अवतार श्री हरिवंश महाप्रभु श्री तुलसी मंजरी के अवतार श्री रघुनाथदास गोस्वामी, श्री तुङ्गविद्या जी के अवतार श्री प्रबोधानन्द सरस्वतीपाद श्री चन्द्रावली के अवतार श्रीवल्लभाचार्य महाप्रभु इत्यादि आचार्य सन्त सखियों के अवतार ही हैं) चलते हुए जो अन्तर स्वीय अभीष्ट स्वरूप देह में स्फूर्ति युक्त होकर (स्व सखी मंजरी स्वरूप प्राप्त कर) रसमय मानसिक सेवा करके उस नित्य विहार को प्राप्त कर सकता है ।

प्रेम पूर्ण सान्द्र रस घन स्वरूपा श्री लाड़िली श्रीराधा के कर पल्लव से स्पर्श की हुई पल्लव वल्लरी (लता के नवोत्पन्न अरुण नवांकुर लाल लाल बाल पल्लव वाली लता) श्रीराधा के सुकुमार मृदुचरणारविन्द के ध्वजा आदि से अङ्कित, (सुशोभित) मनोहर स्थल युक्त एवं श्रीराधा के यशोगान से मुखरित मत्त (राधा रस से उन्मत्त) पक्षियों की पंक्ति जहां विराज रही है उस कुञ्ज केलि कानन श्री वृन्दावन में ही मेरा मन निशिदिन रमण करता रहै ऐसी उत्कंठा की भावना रसिक मुकुट मणि श्री महाप्रभु हित हरिवंश राधा सुधा निधि के १३ वें श्लोक में प्रदर्शित करते हैं ।

श्लोक

राधा करावचित पल्लव वल्लरीके ।
राधा पदाङ्क विलासन्मधुर स्थलीके ॥
राधा यशोमुखर मत्त खगावलीके ।
राधा विहार विपिने रमतां मनो मे ॥१३॥

(श्रीराधा सुधा निधि १३ श्लोक)

श्लोक

कदानु वृन्दावन वीथिकास्वहँ-
परिभ्रमनश्यामल गौरमद्भुतं ।
किशोर मूर्तिद्वयमेकजीवनं-
पुरः स्फुरद्वीक्ष्य पतामि मूर्च्छितः ।।

हाय कब में श्री वृन्दावन वीथियों में जहां तहां विचरण करते करते अद्भुत गौर श्याम अभिन्न-प्राण श्रीराधा कृष्ण को आगे(आपने सामने) देखकर मूर्च्छित होकर वृन्दाबन की भूमि पर गिर पड़ूंगा यह भावना रसिक भक्तों के लिये वृन्दावन शतक ८७ वें श्लोक में श्री प्रबोधानन्द सरस्वती पाद ने बताई है ।

और भी—श्लोक ८७ सत्रहवाँ शतक

प्रगायन् नटन्नुद्धसन् वा लुठन् वा-
प्रधावन् रुदन् सम्पतन् मूर्च्छितो वा ।
कदा वा महा प्रेम माध्वी मदान्धः-
चरिष्यामि वृन्दावने लोक बाह्यः ।।

श्री वृन्दावन की दिव्य झांकी का दिङ्मात्र दर्शन—

हेमस्फाटिक पद्मराग रचित माहेन्द्रनील द्रुमे--
नाना रत्नमयस्थलीभिरलिझङ्कारैः स्फुट वल्लिभिः ।।
चित्रैः कीर मयूर कोकिल मुखैर्नाना विहङ्गैर्लसत् ।
पद्माद्यैश्च सरोभिरद्भुतमहं ध्यायामि वृन्दावनम् ।।८०।।

हेम, स्फटिक एवं पद्मराग आदि दिव्य मणि द्वारा विरचित एव महेन्द्र नीलमणि जटित वृक्षों से सुशोभित, नाना रत्नमय स्थलों से सुसज्जित, भँवर मण्डलियों द्वारा झंकारित, पुष्प से भरो लताओं से विभूषित तथा विचित्र मणि प्रभाद्योतित शुक मयूर कोकिला आदि पक्षियों से गुञ्जारित एवं विकसित मणि जटित सरसोयों

(जल कुण्डों) से मण्डित अद्भुत रूप जगमगाय मान श्री वृन्दावन का मैं ध्यान किया करूँ ॥ ६० ॥

ताम्बूल पानक मनोहर मोदकादि-
रम्यं लसन्मृदु पल्लव चारु तल्पे ॥
द्वारस्थितालिभि रहो सुहृदाव वेश्य-
वृन्दावनं स्मर निकुञ्ज गृहं मनोज्ञम् ॥६१॥

(वृ० शतक)

छन्द—लड्डू पान मनोहर शरबत और द्रव्य अनुकूल।
मृदुल पल्लवित शय्या दी चित्रित सुरभित फूल।
सखी मंजरीगण बहु निरखैं लता झरोखों में से ॥
श्रीराधा कृष्ण रहः केलि कुञ्जन मोखों में से ॥
उसी भावकी दासी बसिके वृन्दाविपिन महान।
ताको निज सुख गन्ध रहित हो-करतरहूँ में ध्यान ॥

जो धाम ताम्बूल, शरबत, मनोहर मोदकादि उप भोग्य पदार्थों से सुसज्जित है। अति उत्तम कोमल पल्लवों से रची हुई शय्या पर लीला परायन सुहृद युगल श्रीप्रिया-प्रीतम राधा कृष्ण की द्वार पालिका और द्वार स्थिता सखी सहचरी मंजरी सहेली झरोखों से निहारा करती हैं ऐसे निकुञ्ज परि पूर्ण श्री वृन्दावन का ध्यान करो ग्रन्थकार श्री तुङ्गविद्यावतार श्री प्रबोधानन्दपाद कहते हैं। (यह उनका अनुभूत प्रसाद है) श्री मद्धित हरिवंश महाप्रभु श्री वृन्दावन की सर्वोच्च महिमा को गाते हुए आज्ञा करते हैं।

रा[illegible]

श्लोक

क्वासौ राधा निगम पदवी दूरगा कुत्र चासौ।
राधा यश[illegible]स्तस्याः कुचमलयोरन्तरैकान्त वासः ॥
[illegible]च्छः परममधमः प्राण्यहो गर्ह्य कर्मा।
स्फुरति महिमा एष वृन्दावनस्य ॥

महाप्रभु आज्ञा करते हैं कि रसिकजन भावना में इस प्रकार रहैं कि—कहाँ तो निगमपदवी से अति दूर वर्तमान श्रीराधा और कहाँ उनके श्री युगल-कुच-कमलों के मध्य में एकान्त भाव से निवास करने वाले श्री श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण अहो ! और कहाँ मैं अति अधम निन्दित कर्म करने वाला तुच्छ प्राणी। इतने पर भी जो उनके नाम (राधा) का स्फुरण होता है, वह निश्चय ही श्री वृन्दावन ही की महिमा है।

* कवित्त *

कहाँ यह राधा जोई वानी करि गाई,
सोई निगम की पदवीतें दूर दरसत है।
कहाँ यह कृष्ण मत्त मधुकर सदाही सों,
जाके कुच कमल एकान्त में वसत है॥
कहाँ मैं तुच्छ परम-अधम निन्दकर्मा हों,
जाहि जग देखि मुख मोरकें हसत है।
फुरत है रसनासौं नाम श्रीराधा जो,
यहै एक महिमा वृन्दावन की लसत है॥२६०॥

* दोहा *

कहं राधा जिनकी कथा, निगमागम अति दूर।
कहं मोहन जो लाड़िली, हिये बसत चित चूर॥
कहां मैं दुष्कर्मी अधम, कपटी कायर क्रूर।
फरे जु महिमा नाम यह, कृपा विपिन भरपूर॥

(श्रीहित सुधा सागर)

जिज्ञासु ने पूछा कि आप मुझको सर्व त्यागकर वृन्दावन जाने की आज्ञा देते हैं। मैं वहाँ कैसे जाऊँ अर्थात् क्या साथ ले जाऊँ तो उत्तर दिया अपने मन में प्रेम भरकर जावो (प्रणयेन) ग्रन्थकार की आज्ञा है कि श्री वृन्दावन नव निकुञ्ज में जाने के लिये केवल शुद्ध प्रेम ही की आवश्यकता है योग, ज्ञान, तपस्या, दान, वैराग्य आदि

कोई भी साधन वृन्दावन नवनिकुञ्ज की प्राप्ति करा नहीं सकता है प्रेम क्या है, मन वचन कर्म सबही प्रकार से अपने प्रेमास्पद को सुख पहुँचाना और उनके सुख के लिये अपने देह मन बुद्धि आत्मा सब ही के सुखों को छोड़कर केवल अपने इष्ट सेवनीय प्रेमास्पद को ही मन, वचन, कर्म से निरन्तर सुख देने का नाम प्रेम है।

कितने भी विघ्न क्यों न उपस्थित हो जाँय अपितु प्रीति कभी भी न टूटे उसीको प्रेम कहते हैं।

सर्वथा ध्वंस रहितं सत्यपि ध्वंस कारणे।
यद्भाव बंधनं पूर्णः स प्रेमा परिकीर्तितः॥

स्वजन से, अन्यजन से अथवा अपने प्राण प्रिय से भी सुमेरु पर्वत के समान बड़े से बड़ा दुख हो जाने पर भी भाव बन्धन नष्ट हो वह प्रेम है भाव बन्धन का अर्थ है, एक दूसरे से जो स्नेह का सम्बन्ध जुड़ जाना है उदाहरण कहते हैं। एक पुरुष का एक कन्या से विवाह का सम्बन्ध बन गया एक दूसरे से मित्रता का सम्बन्ध बन गया। यह भाव मय सम्वन्ध है।

❀ भावों के संस्मरण ❀

हे चेत तू सब महत साधनों का दूर ही से परित्याग कर वृन्दावन का अनुसरण कर क्योंकि वृन्दावन ही में सुधारसौघ राधाभिधान जो श्री लाड़िली हैं उनकी कृपा से सर्वकाम पूर्ण हो जावेगा, सुधा नाम अमृत ओघ नाम बाढ उसकी बाढ (रसका अनन्त प्रवाह) रस का परम अर्थ काम मदन यह काम (मदन) दो दलात्मक है काम का वास्तविक स्वरूप अभिलाष होता है निकुंज का सर्वस्व धन माधुर्य की अभिलाषा है। भक्ति रस शास्त्रों ने काम शब्द को प्रेम का पर्य्याय कहा है भक्ति शास्त्रोंके समस्त आचार्यों ने श्रीमद्भागवतादि (भक्ति रस प्रदर्शक) ग्रन्थों में प्रेम की जगह काम शब्द ही का प्रयोग किया है "प्रेमएवहि गोपरामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम्"

इत्यादि । वैदिक वाङ्मय में इच्छा ही अभिलाष शब्द से घोषित हुई है कामना इच्छा 'एकाकी न रमते स द्वितीयमैच्छत् परात्पर सच्चिदानन्द परमात्मतत्व को रमण करने की इच्छा हुई एक का रमण होता नहीं इसलिये (रमण के लिए) दूसरे की (दो की) इच्छा की तब रमण के अर्थ राधा कृष्ण दो रूप एक ही के हैं एक प्राण दो देह की चरितार्थता हुई मायाश्रित जीव अतिकाल से गुणत्रयी माया के स्वरूप शब्द स्पर्श गंधादि इन्द्रियों के विषयासक्त होने से जीव को शुद्ध प्रेम में भी अशुद्ध इन्द्रिय का अर्थ स्त्री पुरुष सम्भोग की स्फुरण होती है विषय कलुषित तथा विषयावेष्ठित चित वाला प्रेम के विशुद्ध उज्ज्वल स्वरूप रस को नहीं देख पाता है जब सन्त महात्मा मधुर रस निमग्न रसिक भक्तों के संग में रहकर प्रेम भगवद् रस को समझ लेता है तब प्रेम का सत्य स्वरूप जान लेता है तब ही मोहान्धकार से निकल कर आनन्द स्वरूप प्रकाश को प्राप्त कर सकता है जिज्ञासु का विनम्र प्रश्न है कि वह श्री वृन्दावन नवनिकुंज में श्री राधा नामक रसौघ है उसमें निमग्न होने पर आनन्द का अनु-भव मिलेगा कृपया उस आनंद का दिग् दर्शन कराने की कृपा करें ।

❋ दोहा ❋

बैकुण्ठ हू ते अधिक है, मथुरा मण्डल जानि ।
तामें ताहू ते अधिक, ब्रज मण्डल सुख खानि ।।
अति सुदेश माया रहित, इकईस योजन भूमि ।
तहाँ सहाइ ब्रजवास की, रहत कृष्ण दिन झूमि ।।
मधिराबत ज्यों मुकुटमणि, वृन्दावन रस कंद ।
रसमय सुखमय तेजमय, झलकत कोटिक चंद ।।
एक रंग रुचि एकरस, अद्भुत नित्य विहार ।
जहाँ किशोरी लाड़िली, करी लाल उर हार ।।
निशिदिन तो पहिरे रहैं, रूप की मनि उजिहार ।

ता रस में लटके छके, रहत अधिक रस सार।
अंग अंग मन मनमिले, नैननि नेन विशाल।
रूप वेलि प्यारी बनी, छनि के श्याम तमाल ॥
जोरी दूल-दुलहिनी, मोहिनी मोहन आहि।
परत न अन्तर निमेष को, जीवत रूपहि चाहि ॥
महा मधुर रस माधुरी, नव नव वैस किशोर।
अद्भुत रस में मगन हैं, नहिं जानत निशि भोर ॥
नव किशोरता माधुरी, सब गुन लीने संग।
युगल चरन सेवत रहैं, रंगी प्रेम के रंग ॥
नित्य लाड़िली लाल दोउ, नित वृन्दावन धाम।
नित्य सखी ललितादि निज, सेवत श्यामा श्याम ॥

(ध्रुव० ४२ लीला)

* चौपाई *

कुन्दन रचित खचित थर बनी, सो छवि कैसे जात है भनी।
रस कपूर की झलकनि न्यारी, हियो सिराई निरखि शोभारी ॥
ललित तमाल लता लपटानी, कूंजत कोकिल अति कलवानी।
तापर सुता छवि जात न बरनी, रसपति रस ढारयो मनु धरनी ॥
कुंज सुरंग सुदेश सुहाई, रति पति रचि रचि रुचिर बनाई ॥

—दोहा—

कुंकुम अंबर अगर सत, बेलि चबेली फूल।
सखियनि सबको मोद ले, रची कुंज सुख मूल ॥
रूप पुंज रस पुंज दोऊ, पोढें प्रेम पर्य्यङ्क।
विलसत नवल विहार निज, सब विध होई निशंक ॥

(ध्रुव० रति मंजरी)

दोहा—कुण्डल यमुनाको जितो, तितो आहि विस्तार।
पंकति कुंजन की बनी, मंजु मण्डलाकार ॥

कहा कहों वृन्दा विपिन छवि, जहँ विहरत सुकुमार ।
पत्र पत्र सेवत दिनहि, कोटि कोटि रति मार ॥
हेमलता फूलन सहित, लसत छबीली भाँति ।
नेन चिते चकचोंधि रहे, शोभा कही न जाति ॥
मत्त फिरत मधुपावली, करत मधुर गुञ्जार ।
मनहु मेघ अनुराग के, गावत मङ्गलाचार ॥
कुञ्ज कुञ्ज अति झलमले, बनत न उपमा आन ।
सोम सूर सत जोरिये, होत न तोऊ समान ॥
रचना चित्र विचित्र दुति, राजत परम रसाल ।
झालर जलजनि झलकिरहि, बिच-बिच हीरा लाल ॥
यमुना की छबि कहा कहों, तहां न आनन्द थोर ।
मनहु ढरचो शृंगार रस, करि प्रवाह चहुँ ओर ॥
फूल फूल रहे फूल के, कमल सुरंग अनेक ।
हँस हँसनि फिरत विच, नृतत केको केक ॥
कुंज कुंज आसन सुमन, राखी सेज रचाइ ।
भरि सुरंग मादिक विविधि, भाजन धरे बनाइ ॥
संपति इक इक कुञ्जकी, को कहि सके प्रमान ।
शारद जो शत कोटि मिलि, हारहि तऊ निदान ॥
मधुर मधुर गति तालसों, कूजत विविध विहँग ।
मनो द्रुमनि चढि रागिनी, गावत तान तरंग ॥
विविध भाँति रह्यो फूलि कै, वृन्दावन निज बाग ।
रति अरु श्री लिये सोहनी, झारत कुसुम पराग ॥
मनिमय अवनि अति बनी, सुन्दर सुभग सुढार ।
बिच कंचन कों जग मगे, रतन खचित आगार ॥
फूली फूलन की लता, रही झरोखनि भूमि ।
प्रतिबिम्बित जहँ तहँ मनो, रची फूलन की भूमि ॥
सौरभताई जहां लगि, अरु सगंध रस सार ।
तिनकरि वासित रहत दिन, उठत मोद उद्गार ॥

अति अनूप सुख पुञ्ज में, चितवत चित्त लुभाइ।
रच्यो राज सत राजरति, नाना चित्र बनाइ॥
भानुकोटि तिहि सम नहीं, झलकत झलक अपार।
भाँति भाँति रचना नई, राजत चौंसठ द्वार॥
द्वार-द्वार प्रति सहचरी, खरी भरी रस प्रेम।
तिनको प्यारी पीयकी, सेवा ही को नेम॥
सुरत रंग सुख में सरस, दोऊ रस की राशि।
मरम भिदि बतियनि करै, मृदु मृदु ईषद हांसि॥
दसन चिलक मुखकी दमक, रह्यो झलकि सब मौन।
सो रसतो ललितादि निज, भरि पीबत दृग दोन॥
रंगी रंग अनुरागसों, पगी दुहुनि के प्यार।
और न कछु सुहाइ मन, जीवन युगल विहार॥
सहज सुभग अद्भुत अवन, सुख बरसत चहुँ कोद।
रंग मगे नवलकिशोर दोऊ, तामें करत विनोद॥

(ध्रुव• सभा मण्डल)

जिज्ञासु ने प्रश्न करते हुए पूछा कि रसौघ विशेषण देने का आन्तरिक भाव क्या है कृपया समाधान करें प्रश्न का उत्तर देते हुए आज्ञा करते हैं कि वृन्दावन में आनन्द से सदा ही श्री लाल और श्री लालन विराजमान हैं वहाँ श्री वृन्दावन नवनिकुञ्ज में मधुरातिमधुर रस की बाढ़ आती रहती है जो तत्रस्थ रसिक श्रीसखी मण्डल को वह मधुर रस आप्लावित करके परम सुखी बनाये रखता है। सखियों का सुख तो युगल श्री लाड़िलीलाल का सुख मात्र है।

❀ रस की लीला ❀

श्लोक--वापीकूप तड़ाग कोटिभिरहो दिव्यामृताभिर्युतं-
दिव्योद्यत्फलपुष्पवाटिक मनन्ताश्चर्य वल्ली द्रुमम्।

दिव्यानंत पतन्मृगवनभुवां शोभाभिरत्यद्भुतम्-
दिव्यानेक निकुञ्जमञ्जुलतरं ध्यायामिबृन्दावनम् ॥१८

(वृ० श० प्र० १८)

तत्रैवाविर्भवद्रूपशोभा वैदग्ध्यान्योऽन्यानुरागाद्भुतौघौ ।
नित्यामङ्ग प्रोन्मदानङ्गरङ्गौ-
राधाकृष्णौ खेलतःस्वालिजुष्टौ ॥१०॥

(वृन्दावन महिमामृत शतके)

दिव्य-जल से पूर्ण कोटि-कोटि सरोवर, कूप एवं तड़ाग जहां हैं दिव्य फल एवं पुष्प-वाटिकाओं से जो सुशोभित हो रहा है। अतीव चमत्कार कारी चिंतामणियों से भी अधिक फलप्रद वृक्षलताओं से जो समाकीर्ण है, जहां दिव्य असंख्य पशु इधर उधर दौड़ रहे हैं ऐसी वन भूमि जो विचित्र शोभा से समुद्भासित है। एवं जहाँ अगणित दिव्य मनोहर निकुंज पुन्ज परिशोभित है ऐसा वृन्दावन है ऐसे उस वृन्दावन के निकुञ्ज मन्दिर में रूप शोभायुक्त चतुर चिंतामणि तथा पारस्परिक अनुराग के अद्भुत सागर का एवं नित्य तथा भङ्ग (नाश) रहित उन्मादन कारी अनंग के रंग का आविर्भाव कर श्री राधाकृष्ण अपनी सखि समाज सहित मिलकर लीला करें हैं ये दो श्लोक तुङ्गविद्या जी गाकर चुप हो गईं। और श्री विपिनराज की शोभा निरखने लगी श्री तुङ्गविद्यासखी निकुंज की कैसी शोभा देखी वाको वर्णन करें।

श्री वृन्दावन में प्रिया-प्रीतम दोऊ आनन्द स्वरूप रस रंग भरे वनविहार को चले जात हैं। रंगीलो समाज चहुँदिशि संग है। ते वीणा, मृदंग, उपंग, मुखचंग, सारङ्गी आदि वादित्र को बजावत मधुर गान करत जाय रयो है। ताके बीच श्रीयुगल जोरीजु की शोभा कैसी है मानो रूप की घटा में छवि के सूर्य चन्द्र इकठेई उदय भये हैं और तैसौई श्री बृन्दावन सघन फूलिरयो है।

अरि सखि या वृन्दावन में वृक्ष कैसे हैं सुन

श्लोक

येनित्या निर्विकारा निरतिशयगुणा निष्प्रपञ्चस्वभावाः ।
निर्दोशा नित्यमुक्त निगम गण-समुद्गीत-दिव्यानुभावाः ॥
आनन्दापार.सम्विद् रसघनवपुषः कृष्णभावैक मग्ना ।
स्तान् वंदे श्रील वृंदावन तरुनिकरान् स्वं सर्वार्थिदातृन् ॥
(श्री वृ० म० पञ्चम शतके)

ये वृन्दावन में विराजित सब ही वृक्ष नित्यस्थायी, निर्विकार सर्वोत्तम गुणयुक्त, अप्राकृत स्वभाव वाले एवं निर्दोष नित्यमुक्त हैं। तथा जिनके दिव्य भाव समूहको वेदशास्त्र नित्य उच्च स्वर से गान करते रहते हैं। जो आनन्द तथा असीम ज्ञान-रसघन विग्रह को धारण किये हैं। एवं एक मात्र श्रीकृष्णभाव मग्न रहते हैं और जगत के समस्त पुरुषार्थ प्रदायक हैं।

श्लोक

दिव्यानेक विचित्र पुष्प फलभारानम्र शाखान् महा
विस्तीर्णान् परमोच्छ्रितान् खगकुलः संराव कोलाहलान् ।
नीरन्ध्रान् दल पल्लवैस्ततइतो मत्तालि माला कुलान्
वन्दे स्यन्दि मरन्द सान्द्र सुसुधान् वृन्दाटवी शाखिनः ॥

(श्री वृ० म० पञ्चमशतक)

दिव्य दिव्य अनेक वृक्ष विचित्र पुष्प और फलों के भार से जो झुक रहे हैं और बहुत दूर तक फैल रहे हैं एवं बहुत ऊँचे हैं।

पक्षियों के कोलाहल से जो मुखरित हैं एवं पत्र पल्लवों के द्वारा जो छिद्र रहित हैं। जिनके चारों ओर भ्रमर गुन्जार कर रहे एवं उत्कृष्ट रसघन सुधा राशी बरसाने वाले श्रीवृन्दावन के वृक्षों के नीचे युगल सरकार नित्य रसविहार करते हैं श्री श्याम सुन्दर

मोहिनी श्रीराधा एक तमाल वृक्षके नीचे अवस्थान करके अपनी तर्जनी करांगुलिको उठाकर अमृत मय वाक्य विन्यास द्वारा श्री श्याम सुन्दर को अपने मोहन कारी चंचल नेत्रों को जो ऊपर देखने से अपूर्व छवि को पारहे हैं नचाती हुई शरद चन्द्र को तिरस्कृत कारी अपने मुखचन्द्र में मन्द मृदुमुस्करा कर कह दिया कि प्यारे ये सुन्दर फूल अतिही मनोहर हैं इनको मैं अपने कर पल्लव से प्राप्त करूँ ऐसा उपाय करें तब मनमोहन विटकुल नृपति चतुर चूड़ामणि रसिक शेखर श्री श्यामसुन्दर बोले प्यारीजी आप मेरे कन्धे पर आरोहण कर इन मधुर अमृत सम फलों को तोड़लें, प्रिया सकुच गई ललिताजी आप करवद्ध हो मधुर बचन से विनया वंक प्रीतम से बोलीं हे नाथ ! हम दासियां इस सेवा के लिये उपस्थित हैं सुदेवी जी के कन्धे पर ललिता आरोहण कर परिपक्व फलोंको ले आई प्रीतम प्यारे के सन्मुख फल अर्पण किये ।

केनापि नागरवरेण पदे निपत्य,
संप्रार्थितैक परिरंभरसोत्सवाया: ।
सभ्रूविभंगमतिरंगनिधेः कदा ते,
श्रीराधिके नहिनहीति गिरः शृणोमि ॥

पदच्छेद—केन, अपि, नागरवरेण पदे, निपत्य सम्प्रार्थितैक-परिरंभरसोत्सवाया:, सभ्रू विभंगं, अतिरंगनिधे, कदा, ते, श्रीराधिके, नहि,नहि, इति, गिरः, शृणोमि ।

अन्वय, श्री राधिका केनापि नागर वरेण पदे निपत्य संप्रार्थिता एक परिरम्भ रसोत्सवाया: अतिरंग निधे: ते सभ्रू विभंगं नहि नहि गिरः शृणोमि ।

हिन्दी भाषा में अर्थ—हे श्री राधिके किसी एक अलौकिक चतुर शिरोमणि के द्वारा चरणों में गिर कर (चरणों में नत मस्तक होकर) एक बार आलिगन के रसमय उत्सवकी सम्यक् प्रार्थना

करने पर आपके रहस्यमय निगूढ केलि विधि रूप कुटिल भ्रकुटी पूर्ण नहि नहीं ऐसे निषेधात्मक वचनों को कब अपने कानों के द्वारा सुनूं ॥

दोहा—परत पांय नागर रसिक, करि करि विनय अपार।
कसि मिलिये टुक कण्ठसौं, प्यारो प्राण अधार ॥
तुम सुनिके नहि नहि कही, रस निधि ग्रीव ढुराय।
सुनत श्रवन श्रीमुख वचन, कब मम हियो सिराय ॥६॥

(श्रीहित किशोरीलालजी)

* कवित्त *

कोउ एक नागर वर पाइनि परचो आय,
चाह परिरंभ सउत्सव हिये धरैं।
प्रार्थना करत डरत धरत पद पद्म सीस,
कभू कर जोर कभू पीत पट ले गरैं ॥
अहो रसनिधे श्रीराधिके नचाय नैन नासिका,
उचाय कछु बंक भ्रकुटी करें।
नाहि नाहि गिरा मधुर सुनौं कब काननसौं,
फेरे केर अंगुरी तू कहब हरैं हरैं ॥ ९ ॥

(भोरी हितदास)

सरल संस्कृत व्याख्या संक्षिप्त—

हे श्रीराधिके रहसि प्रेष्ठं प्रति तव नहिनहीति गिरः कदा श्रृणोमि कथं भूतायाः केनापि नागर वरेण पदेनिपत्य संप्रार्थितैक परिरंभ रसोत्सवायाः पुनः सभ्रू विभंग यथा तथा अतिरंग निधेः ॥

(श्री भोरी हित०)

चेत सांगीकृतमालक्ष्य सुखांतरं भावयन् कथयति। केनापीति। हे श्रीराधिके ते सभ्रू विभंग यथास्यात्तथा नहि नहि इति गिरः कदा श्रृणोमि। कथंभूतायास्ते केनापि नागर वरेण पदे निपत्य सम्प्रार्थि-

तैक परिरंभरसोत्सवाया: । केनाप्यनिर्वचनीयेन । यद्वा । "को ब्रह्मणि समीरात्मा" इत्याद्यनेकार्थादात्मना नागरवेरण चतुर शिरोमणिना 'नागरं मुस्तके शुण्ठयां विदग्धे नगरोद्भवे' इतिमेदिनी । तेषुवर: श्रेष्ठ: तद्धेतुत्वादेव पदनिपतनपूर्वकप्रार्थना परिरंभस्तु बाह्य: । नाभ्यन्तरीय: । परिरम्भसुखमात्मना न लभ्यते । यथा गोसुगतं दुग्धं न तासांपुष्टि कृद् भवेत् वहिर्गतं यदि भवेत्तदा सुखमनंतकम् "इति । पदेनिपत्य सम्प्रार्थित एकवारं परिरम्भं आलिगनं ततस्तयोरसस्तस्य उत्सवो यस्या: । पुन: कथं भूतायास्ते । अति रङ्गनिधे: । रङ्गमति व्याप्यतिष्ठतीत्यतिरङ्ग: । विद्युदादे: । तस्य निधेरुत्पत्तिस्थानस्येत्यर्थ: दृष्टुमशक्य: तड़िल्लताभमिति वक्ष्यमाणत्वात् ।।९।।

(श्री विद्वद्वर कृपालाल)

रसकुल्या संस्कृत टीका

केनेति, अत्र पूर्वार्द्धभावरूपं, परार्द्धरसरूपमिति । अग्रेऽपि रसभावरूपं वक्ष्यत्येव 'एकं काञ्चनच्छवि परं नीलाम्बुद श्यामलं । कन्दर्पोत्तरलं तथैवमपरं नैवानुकूलं बहि: ।। किञ्चैकं वहुमानभङ्गी रसवच्चाटूनि कुर्वत्परं । वीक्षे क्रीड़ निकुञ्ज सीम्नि तदहो द्वन्द्वं महा मोहनम् ।

(रा० सु० श्लोक १६६)

हे श्रीराधिके केनेत्यादि अंतरंगेत्यादि विशेषण द्वय विशिष्टायास्ते सभ्रू विभंगं यथास्यात्तथा नहि नहि गिर: कदा श्रृणोमि इत्यन्वय: ।

"अज्ञाते कुत्सिते चैव संज्ञायामनु कम्पने । तद्युक्तनातावरूपे ह्रस्वे वाच्येतु क: स्मृत: इति सप्तस्वर्थेषु भावुक यथा संकल्पोऽर्थ: । यथा पूर्वमपि' क्वापि निकुञ्जदेवी

त्युक्तं तथात्रापि अनिर्वचनीय महा माधुर्यैश्वर्यत्वेनानून महनीये ॥१॥

अति वदान्य रससागर रससागर त्वादि विश्रुति कीर्ति स्तवन यशस्यं नेति नेति प्रत्याख्यानमिति किं निसर्गो ॥२॥

❀ रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद ❀

इस श्लोक में पूर्वार्द्ध भाव रूप है तथा उत्तरार्द्ध रस रूप है। एक ही श्लोक में इस प्रकार भाव रूप तथा रस रूप का एकत्र सम्मिलन।

※ श्लोक ※

एकं काञ्चन चम्पकच्छवि परं नीलाम्बुदश्यामलं ।
कन्दर्पोत्तरलं तथैकमपरं नैवानुकूलं बहिः ॥
किञ्चैकं बहुमानभंगि रचवच्चाटूनि कुर्वत्परं ।
वीक्षे क्रीडनिकुञ्ज सीम्नि तदहो द्वन्द्वं महामोहनम् ॥

(रा० सु० श्लोक १६९)

दोहा—मनु कंचन चम्पा कली, गोरी एक विशाल।
इक सुन्दर नवश्याम घन, राजत रूप रसाल ॥
श्याम काम आवेशवश, अति आतुर अकुलात।
नेति-नेति मृदु वचन छुटि, गोरी कहत न बात ॥
गोरी रूप गुमानसों, करत मान भ्रू तान।
चरण परस हा हा वदत, श्याम जोर जुग पान ॥
नवनिकुञ्ज विलसत उभै, अति सुन्दर चित चोर।
रे मन तिनहि विलोकचल, कालिन्दी तट ओर ॥१६९॥

दिखलाया है एकत्र भाव और रस दोनों स्वरूप।

हे श्रीराधिके, किसी चतुर शिरोमणि के द्वारा आपके चरणों में गिरकर (नत मस्तक होकर) मुख्य आलिंगन एवं अंकबारी भर-

भरकर रसोत्सव के लिये प्रार्थना की गई हो। रङ्ग निधि अर्थात् उत्सव की आप भण्डार हो ये केनापि नागरवरेण और अति रङ्ग-निधे दो शब्द प्रियाजी के विशेषण के हैं। इन दोनों विशेषणों से विशिष्ट आप अपनी भोंहों को टेढ़ी करती हुई (भोंहों को नचाती हुई) आपके नहिं नहीं इन शब्दों को मैं कब सुनूं।

यह अन्वयार्थ है। केन पद में क का अर्थ-अज्ञात, कुत्सित, नाम, अनुकम्पा, तद्युक्त नीति, अत्ररूप, लघुता, ये सात अर्थ क अक्षर के होते हैं। इन सातों अर्थों में यथा सम्भव अर्थ की कल्पना भावुक रसिकजन को करनी चाहिये। जैसे इसी ग्रन्थ के "दिव्य प्रमोदरसंसार" इस सातवें श्लोक में कापि निकुञ्जदेवी यहां क प्रत्यय (क अक्षर का) अनिर्वचनीय, माधुर्य तथा ऐश्वर्य युक्त क कार सम्पूर्ण रूप से पूजनीय होने का सूचक है।

अब सातों अर्थ की विशिष्टता दिखलाते हैं-

१-केन शब्द में नाम नहीं बताया क को अपरिचित यह अर्थ हैं।

२-कुत्सित-अतिवदान्य (सर्वाधिक दानी) तथा रस सागर आदि रूप से जिनकी कीर्ति चारों ओर से विद्युत विख्यात है उसकी स्तुति करना तथा नहिं नहिं (न) के द्वारा प्रत्याख्यान (तिरस्कार) करना क्या उचित है।

रसकुल्या संस्कृत टीका

३. **संज्ञा—**

राध्यते प्रियेण अथवा राधयतिप्रियं यथा सर्वसिद्धि यंदा आश्रय मात्रेणेति निरुक्ता राधा सैव राधिकेति संज्ञे।

४. **अनुकम्पा—**

अत्र अप्रौढरसेयं मुग्धा कथं विदग्धनागरवरसङ्गे विलास क्षमा भविष्यतीति परिजनानुकम्पनीये।

५. तद्युक्तनीतिपुणा—

पादपतनावधारणाद्यासज्य धर्मोयुक्तएवेति रसवृध्यर्थ नीति निपुणे ।

६. अवरूपे--

विविधांतर्निहित वैदग्ध्य रसाभिलाषा स्फुट प्रार्थिते परिरंभादि लक्षित प्रौढवयः प्रियातुर्किचित्ऊनवयस्तु लज्जातिरेकभावा अप्रकाशन शीलेति ।

७. ह्रस्वेति—

पादपतितेदृश नागरवरे प्राणनाथे प्रिये किमेक परिरम्भदानमशक्यं इत्यल्पज्ञापित निजवैभवे ।

इत्यादि सहृद हृदय हारि भावार्थ वैचित्र्य तरंगित नाम्नि परमाद्भुत वैभवपदपद्म परागोपलक्षित सकल निरतिशयानवरत गुणशोभायुक्ते श्रीराधिके । केनापि अदृष्टा श्रुतचरैतादृश प्रभावासक्त रसिकशेखरेण ।

अपीति, निरंतरांगसेवाधिकारिणः परिरंभदौर्लभ्या भावेपि प्रिया छंदानुगामितया शंकित द्योतानं ।

रसकुल्या टीका का हिन्दी अनुवाद

३. संज्ञा–

जो प्रियतम (श्यामसुन्दर) द्वारा आराधना की जाती है वह राधिका है अर्थात् उनका नाम राधा है। अथवा अपने प्रियतम श्यामसुन्दर की आराधना करती है वह राधा है यह दोनों अर्थ विरुक्त से सिद्ध होते हैं। अर्थात् दोनों अर्थवाची राधा शब्द है।

तब आश्रय मात्र से निरुक्त (व्युत्पन्न) राधाही राधिका है आशय यह है कि राधिका शब्द में क प्रत्यय संज्ञा अर्थ में लगाया गया है ।

४. अनुकम्पा—

राधा स्वयं मुग्धा है क्यों कि वह रस में प्रौढ (पूर्ण) नहीं है तो वह अप्रौढ राधा चतुरशिरोमणि प्रौढ रसयुक्त श्रीकृष्ण के संग में विलास करने में कैसे समर्थ हो सकेगी इस भावना से सखी जन राधा के ऊपर अनुकम्पा कर रही है अतः यहां क प्रत्यय अनुकम्पार्थ है।

५. तद्युक्तनीति—

प्रिय के चरणारविन्द में गिरने से अर्थात् श्रीकृष्ण के प्रिया के चरणों में गिरने पर ही प्रिया श्रीराधा जी की अनुकूलता प्राप्त होती है यह ही उचित आसज्य धर्म है। इस प्रकार रस बढ़ाने में नीति निपुणता है।

६. अवरूप—

श्रीकृष्ण के हृदय में रहने वाली चातुरी के कारण रस की अभिलाषा को तथा आलिंगन की स्पष्ट प्रार्थना करने में प्रौढवय की सूचना मिलती है प्रिया का वय इनकी (श्रीकृष्ण की) अपेक्षा किञ्चित् कम है इसलिये लज्जा की अधिकता से प्रिया अपने मनोभाव को विशेष रूप से प्रकट करने में असमर्थ है।

७. ह्रस्वता (छोटा पण)

अपने प्राणनाथ प्रियतम के लिये एक परिरंभ (आलिंगन) अशक्य है क्या इस प्रकार अपने वैभव को किञ्चित् रूप में प्रकट कर रही है ?

इस प्रकार सहृदयी पुरुषों के हृदय को हरण करने वाले विचित्रता से जिसका नाम सुशोभित है तथा परम अद्भुत वैभव से युक्त चरण-कमल पराग से उपलक्षित (प्रकटित) सकल निरतिशय (समग्र) और सर्वदा गुणों तथा शोभा से युक्त है श्री राधिके आपके नहिं नहिं वचनों को मैं कब सुनूंगी यह भाव है। अपि, श्रीकृष्ण निरन्तर अङ्ग

सेवा के अधिकारी हैं परन्तु आलिंगन की सुलभता होते हुए भी प्रिया की इच्छा के अनुसार (अनुगामि) होने से शंका है।

रसकुल्या संस्कृत टीका

नागरेति परम चतुर शिरोमणिना एवं कृते एवं रस वृद्धिरित्याद्युपाय विचारविदग्धेनेत्यर्थः।

पदे निपत्येति स्वाश्रयीभूत मध्यस्थजनमिव सहाकृत्य क्षीणस्वतंत्रोपायांतरानन्यगतिक एव शरणोस्मीति पालय-चेति दैन्यार्थं व्यञ्जयति।

समिति—सम्प्रार्थितैक तत्र सं इति, शपथाऽिना नान्य-लोभं नच साहसादि कुर्यामिति प्रार्थितो दासेनेवैकः परि रंभोयस्याः ममतवत् कृपास्पदस्यायमेवोत्सवो यच्छ्रीमदंगसङ्गी भवामीत्यन्यथा लोकप्रसिद्धोत्सव मम अकिंचित्करएवार्थः।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

नागर, परम चतुर शिरोमणी, ऐसा करने पर इस प्रकार रस की वृद्धि होती है इत्यादि उपायों के चिंतवन करने में जो निपुण है उसको नागर वर कहते हैं यह अर्थ नागरवर शब्द से सूचित होता है।

पदेनिपत्य—अपने आश्रय में रहने वाले मध्यस्थजन के समान सहायता लेकर जिसके स्वतन्त्र उपायक्षीण हो गये हों, जिसकी कोई भी दूसरी गति नहीं है ऐसा मैं आपकी शरण में आया हूँ अतएव मेरी रक्षा करें। इस प्रकार की दीनता को यह पद सूचित कर रहा है और सम्प्रार्थितैक पदक में सं शब्द का और भी यह भाव है कि शपथ खाकर मैं कहता हूँ कि न तो मैं किसी अन्य वस्तु का लोभ करूँगा और न साहस ही करूँगा। इस प्रकार अच्छी तरह दास की तरह प्रियतम श्रीकृष्ण एक मात्र आलिंगन दान

की प्रार्थना श्रीप्रिया जी से कर रहे हैं। मैं आपकी कृपा का पात्र हूँ अतएव मेरा यही उत्सव (अभिलाषा) है कि मैं आपके रमणीय श्री अंग के साथ मिलजावूँ और अन्य किसी जगत् प्रसिद्ध उत्सव की कामना मात्र मेरे काम की वस्तु नहीं है।

रसकुल्या संस्कृत व्याख्या

अतिरंगनिधेः रंज रागे निःसीमानुराग सिंधो-स्तदाधार तन्मूर्तेर्वा तादात्विक सदन शय्या भरणरूपगुणादि चमत्कारातिविस्मापक मृदु मधुरालाप श्रवणोत्कंठित धन्य मन्य प्रिय तदुपाय वंचक स्मितापत्रप दृष्टि त्वादि रङ्ग वर्तत एव यदा परिरंभः प्राथितस्तदा रुद्धजल समीरवेगवदत्य-भिलाष वर्द्धक निषेधादतिशय रङ्गनिधेस्ते नवोद्वहनमुग्ध-वरवर्णिन्याः पादस्पर्श त्रपाभर रभस वसनांचल प्रतीकाव-गुंठन परायाः।

सभ्रूविभंगमिति—साहसोदर्क स्मृतिज भीत्या सकोप हुंकारापांग नर्तन प्रिय विविधावस्थासंपादक भ्रकुटी कौटिल्यं यत्र कर्मणियथास्यात्तथा नहि नहीति स कर शिरोधूननानुभाव किंचिद्भीति प्रणयक्षामाक्षरगंथका गिरा निगीर्ण मनोदृष्टि सृष्टिरितिवीप्सा बहुत्वं च प्रांजलि दैन्याधैर्य प्रणत्यादिभिः।

कदा इत्युत् कंठेतिशये। अहं निकुञ्जग्रथित लताजाल-रंध्र विनिहित भ्रूभङ्गादि सूचितरसास्वादन लंपट मधुपाक्षी सखिरूपा शृणोमि शृणुयामि श्रोष्ये इति वक्तव्ये तादात्वि-कानन्दलयप्रेमावस्था वेगातिशयविस्मृतक्रमतया नित्यं तत् प्राप्ति विद्यमान स्मृति संस्कारेण च वर्तनानत्वं आनन्दाश्रु

भर क्रांति लोचनं प्रसारतिरोधाना किमशक्ता करोमि साधुश्शृणोम्येवेति महद्भाग्यमिति भावः। एवं सक्षेपेण सक्तासज्यभावोनिरूपितः। ननुगोपीष्वपि रसोदृश्यते अत आसज्यत्वं किं न कल्प्यमासामासक्तत्वं सक्तत्वमेव यत्र तत्रख्यातं कृष्णांगो कणामासामपि रासादौ तन्नखच्छटाप्रभा-बेणेत्याह यत्पादपद्म नखेति।

रसकुल्या की हिन्दी टीका

अति रङ्गनिधि का बर्णन--रंज धातु से रंग शब्द बना है अतिरङ्गनिधि पद का अर्थ है असीम अनुराग का समुद्र अथवा असीम अनुराग का आधार रूप उसकी मूर्ति। जिस समय प्रिया-प्रीतम का आलिंगन होता है उस समय इस प्रकार की चेष्टाएँ उत्पन्न होती हैं, महल, शय्या, आभूषण, आदि गुणों के चमत्कार से अत्यन्त आश्चर्य उत्पन्न करने वाले मृदु मधुर आलाप (संभाषण) के सुनने से प्राण-नाथ प्रियतम की उत्कंठा बढ़ती है, प्रियतम अपने को धन्यमान कर उन उपायों की वंचना करने के लिये मन्द मुसक्यान तथा लज्जायुक्त नेत्रों से देखते हैं (सलज्ज दृष्टि को धारण करते हैं) और जब आलि-गनार्थ प्रार्थना करते हैं तब वायु के और जल के वेग को रोकने के सदृश अर्थात् वायु और जल का वेग रोकने पर उनका प्रवाह अधिक बढ़ता है उसी तरह प्रिया जब उनकी प्रार्थना को निषेध करती (स्वीकार नहीं नहीं शब्द से अस्वीकार करती) है तब प्रियतम की अभिलाषा और प्रबल होती है। नव विवाहित मुग्धा नायिका के पांव स्पर्श करने के समय लज्जा के भाव से संकुचित हुई शीघ्र ही अपनी साड़ी के अंचल से मुख को अवगुण्ठित कर लेती है श्री किशोरी जी की भी यही लीला होती है। यह अतिरङ्ग निधि शब्द का भाव है।

सभ्रू विभंग—साहस के परिणाम की स्मृति से उत्पन्न भय के कारण कोप सहित हुँकार पूर्वक नेत्र के प्रांत को चलाकर प्रिय के हृदय में नाना प्रकार की हलचल करने वाली भ्रकुटी का टेढ़ापन हो जाता है, यह सभ्रू विभंग का आशय है।

नहि नहीं का भावार्थ—

हाथ और मस्तक के हिलाने के अनुभाव से (चेष्टा से) कुछ भय तथा प्रेम की क्षीणता सूचक ये नही नही शब्द हैं। इन शब्दों के द्वारा मन की दृष्टि बिलकुल ध्वस्त हो गई है यह सूचित है।

नहि नहि बारबारं का द्योतक दो बार कहना है। हाथ जोड़ कर दीनता तथा अधीरता के साथ प्रणाम आदि द्वारा छोड़ो-छोड़ो इत्यादि याचना के निषेध की सूचना दो बार नहीं नहीं शब्द दे रहे हैं। अर्थात् प्रेष्ठ तो करबद्ध हो दीनता आधीन पूर्वक प्रार्थना कर रहे हैं उनकी प्रार्थना बिलकुल अस्वीकृत हो रही है यह भाव है।

कदा—कब यह शब्द अत्यन्त उत्कंठा का द्योतक है। निकुञ्ज स्थित सघन लताओं के रंध्रों में से देखे जाने वाले प्रिया की भ्रू विभंगिमा के रस का आस्वादन दर्शन अर्थात् प्रिया के अद्भुत भ्रू भंगिमा के रस निमग्न प्रिय की रसलंपटता के दर्शन भंवर के समान लुब्ध हुए नेत्रों से लता रंध्रों में कब देखूंगी यह भाव है।

यह भविष्य वचन न कहकर मैं सुन रही हूँ इस वर्तमान के कथन का तात्पर्य है कि उस समय के आनन्द में मग्नावस्था के वेग के अतिशय से क्रम सजनी भूल गई है उस रस की प्राप्ति के विद्यमान होने की स्मृति संस्कार रूप से रहती है यह वर्तमान क्रिया का प्रयोग करने का आशय है। नेत्रों को प्रसार कर देखना आनन्दाश्रुओं के भार से युक्त नेत्रों से बन्द हुए नेत्रों को खोलकर देख रही है यह भाव है। आनन्द में डूबकर बिलकुल नेत्र मिच गये दीखना लुप्त हो रहा मैं क्या करूँ कुछ करने में अशक्त हूँ मैं भली प्रकार देख नहीं सकती भली प्रकार सुन नहीं सकती क्या करूँ यह मेरा अहो भाग्य है ऐसा

रस प्राप्त हो रहा है इस प्रकार संक्षेप में इस श्लोक द्वारा श्री आचार्य प्रभु ने आसक्त और आसज्य दोनों के भावों का प्रतिपादन किया है।

हिन्दी पद्यानुवाद—

हे राधिके ! चतुर चूड़ामणि,
शरणागत हों मांगत दान।
परिरम्भण, आलिंगन—सुखकी,
करते हो कामना महान ॥
किन्तु भ्रकुटी के कुटिल-धनुष पर,
नहीं नहीं का धर कर वान।
वर्ज रहीं हों आप सुनेंगे,
कब यह शब्द-हमारे कान ॥९८॥ मित्रानंद

एक दिन श्रीहित अलिजु केनापि नागर वरेण पदे निपत्य पद को गायन करत देहानुसन्धान रहित ह्वै ध्यान मग्न भई सखी समाज आस पास विराज रही सब ही सखी समाज हित अलि की अनुपम रस निमग्न दशा को देख प्रेमसागर की लहरों में भींज रही जब हित अलिजु बाह्य चेतना में आई तब सखियन में से चम्पक लताजु ने विनय सहित श्रीहित अलिजु से प्रार्थना की हे स्वामिनी आप देहानु-संधान रहित होकर मानसिक ध्यान मग्न हो गई तब कौन सी लीला को आस्वादन कियो वाको कृपाकर हमहू को बतावैं। यह सुन कृपा रत हित अलिजु कहन लगी कि हे सुहृद सखी वा समय मैंने निकुञ्ज लीला को आस्वादन कियो वाको तुमहू आस्वादन करो।

श्रीवन में श्री कुण्ड (राधा कुण्ड) की विहार स्थलो में सुन्दर-सुन्दर कुञ्ज रचीराजे हैं। श्रीकुण्ड के घाट के किनारे अष्ट दल पद्म के आकार की आठ कुञ्ज विराजित हैं। इन सबमें श्री ललिता-नन्द कुञ्ज बड़ी है।

इस कुञ्ज के बीचो बीच एक अनंग रंगाम्बुज नाम का चबूतरा है वहां सुन्दर रचना मंडित भूमि में हीरान के कमल जड़े चहुं ओर चन्द्रकांत मणिन की जाली की चार दिवारी झलक रही है सामने ही लाल मणिन की अनुपम कुंज है। तामें चहुँ ओर द्वार हैं तहां लाल रत्नन की जाली की विशाल बैठकें हैं। अनंग रङ्गाम्बुज नाम के चबूतरा के आगे केले के वृक्षों को पंक्तियां हैं उनमें फूल फल लगे हैं। इन केले की पंक्तियों के आगे सुन्दर फूलों की क्यारियाँ हैं इसके बाहिर की ओर अष्टदल कमल की मनोहर आठ बड़ी कुञ्जें हैं। यह मानो उस मूल कमल (चबूतरे) की पखुड़ियाँ हैं यह कुंज लीलाओं की अनुगामिनी हैं। ऊपर कही गई ललितानन्द कुञ्ज नामक कुंज भी पूर्णतया एक कमल जैसे आकार की है। इस कुंज में शृङ्गार भवन है। उसमें दोनों प्रिया-प्रीतम शृंगार करने के लिये आय विराजे। आज प्यारी की अभिलाषा यह हुई कि प्यारे तो मेरो शृङ्गार करें और मैं प्यारे को शृंगार करूँ। सखियन ने दोंनों का परस्पर अदल बदलकर शृङ्गार रचि बनायो। प्यारी जी प्यारे बनी और प्यारे प्यारी बने। प्यारे अब प्यारी बनी है किन्तु वंशी को आप अपने कर कमल में रखी है। प्यारी ने प्यारे को रूप धारण कियो। झट से बंशी छीन लीनी और बजाने लगी किन्तु वंशी बाजी नहीं।

❋ आसावरी ❋

निरखि श्याम प्यारी अंग सोभा मन अभिलाष बढ़ावत है।
प्रिया आभूषण मांगत पुनि-पुनि अपने अंग बनावत है॥
कुण्डल तट तरिवनलै साजत नासा वेसरि धारत है।
वेंदी भाल मांग शिर पारत वेनी गूंथि सँवारत है॥
प्यारी नैननि को अंजनलै अपने लोचन अंजत है।
पीताम्बर वोढनी शीशदे राधाको मन रंजत है॥

कंचुकि भुजनि भरत उर धारत कंठ हमेल भ्रजावत है।
सूरश्याम लालच त्रिय तनुपर करि श्रृङ्गार सुखपावत है ॥

❋ नट ❋

श्यामा श्याम छबि की साध।
मुकुट मंडल पीतपट छबि देखिरूप अगाध ॥
प्रिया हाहा करति पुनि पुनि देहु प्रीतम मोहि।
अंग अंग सँवारि भूषण रहति वह छवि जोहि ॥
काछि कछनी पटु कटि किंकिनी अतिसोभ।
हृदय वनमाला बनावन देखि छबि मनलोभ ॥
श्रवन कुण्डल धारि शोभा शीश रचि श्रीखंड।
सूरश्याम सुहागिनी रुचि कनक करलै दंड ॥

❋ रागिनी कर्नाटकी ❋

श्रीगोपल लालजी बंसी नेक मैं पाऊँ।
हो मदन गुपाल तुम्हारी मुरली मैं नेकु बजाऊँ ॥

❋ टेक ❋

मुरली बजाऊँ रिझाऊँ गिरधर गाऊँ न आज सुनाऊँ।
तेइ तेइ तान तुमसी गीतगावत जेइ कर्णाटी गौरी मैं गाय सुनाऊँ।।हो०
तहांलगि गान गाऊँ मोहन जहाँ लगि सात सुरन मैं पाऊँ ॥
सुरन विमान थकित करि राखों कालिंदी स्थिर नीर बहाऊँ ॥ हो०
बेनी शीशफूल पहिरो हरि मैं शिर मुकुट बनाऊँ।
तुम वृषभानु सुता है बैठो मैं नन्दलाल कहाऊँ ॥ हो०
तिहारे आभूषण मैं पहिरौं अपने तुम्हें पहिराऊँ।
तुम माननिको मान करि बैठो मैं गहि चरण मनाऊँ ॥ हो०
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरशको भक्तिभाव नीके करि पाऊँ।
कीजै कृपा अनेक अनुचर पर अनुपम लीला गाऊँ ॥ हो०

❊ नट ❊

तिहारी लाल मुरली नेक बजाऊँ।
जो जिय होत प्रीति कहिबेकी सो धरि अधर सुनाऊँ॥
जैसी तान तुम्हारे मुखकी तैसिय मधुर उपाऊँ।
जैसे फिरत रन्ध्र मगु अंगुरी तैसे मैंहुं फिराऊँ॥
जैसे आपु अधर धरि फूँकत मैं अधरनि परसाऊँ।
हाहा करति पायहौं लागति वांस वँसुरिया पाऊँ॥
सारंग नट पूरवी मिलैकै राग अनूपम गाऊँ।
तुम्हरे भूषण मोको दीजे अपने तुमहि बनाऊँ॥
तुम बैठो दृढ मान साजिकै मैं गहि चरण मनाऊँ।
तुम्हराधे हो माधोई माधो ऐसी प्रीति जनाऊँ॥
यह अभिलाष बहुत मेरे जिय नैननि इहै देखाऊँ।
सूरश्याम गिरिधरन छबीले भुजभरि कंठ लगाऊँ॥

❊ नट ❊

हरिजी मुरली तुम्हैं सुनाऊँ।
तुम सुरपुर वो प्राण नाथ प्रभु हौं अँगुरियन चलाऊँ॥
मधुरे सुर गति राग रागिनी भलीतान उपजाऊँ।
जेहिजेहि भाँति रिझहु नंदनन्दन तेहितेहि भाँति रिझाऊँ॥
अंश बाहु धरि करि विक्रम ज्यों ते मनुसुख हो पाऊँ।
सूरदास अटक्यो मन चलै न पगु मन अभिलाष बढाऊँ॥

❊ नट ❊

प्यारी कर वांसुरी लई।
सन्मुख होइ तुम सुनहु रसिक पिय ललित त्रिभंग भई॥
उठत राग रागिनी तरंगन छिनु छिनु उपजि नई।
आल बाल नन्दलाल श्रवनवर जनु मोहनो वई॥
नमित सुधाकर वदन अमित छबि मनमोहन चितई।
मनहुँ मत्त चकोर मेचक मृग तनु सुधि बिसरि गई॥

कटि पीताम्बर छाइ नाह को छल बलकै रिझई ।
सूर सखी हँसि कमल नैन कह राधे अङ्क दई ॥

* गूजरी *

मुरली लई करते छीनि ।
ता समय छबि कही जाति न चतुर नारि नवीनि ॥
कहति पुनि पुनि श्याम आगे मोहिं देउ सिखाइ ।
मुरली पर मुख जोरि दोऊ अरस परस बजाइ ॥
कृष्ण पूरत नाद उछरत प्यारी रिसकरि गात ।
बार बारहि अधर धरि धरि बजत नहिं अकुलात ॥
प्रिया भूषण श्याम पहिरत श्याम भूषण नारि ।
सूर प्रभु करि मानु बैठे त्रिय करति मनुहारि ॥

* बिलावल *

कहति नागरि श्याम सों तजौ मानु हठीलो ।
हमते चूक कहा परी त्रिय गर्व गहीली ॥
हँसतहि में तुम रिस कियो कहा प्रकृति तुम्हारी ।
बार बार कर धरति है कहि कहि सुकुमारी ॥
वृथा मान नहिं कीजिये शिर चरणन धारति ।
आनन आनन जोरिकै पिय मुखहि निहारति ॥
निठुर भई हौ लाड़िली कबके हम ठाढे ।
तुम हम पर रिसि करतहौ हमहैं तुव चाढे ।
श्याम कियो हठ जानिकै इक चरित बनाऊँ ।
सुनहु सूर प्यारी हृदय रस विरह उपाऊँ ॥

* बिलावल *

लाल निठुर ह्वै बैठि रहे ।
प्यारी हाहा करति न मानत पुनि पुनि चरण गहे ॥
नहिं बोलत नहिं चितवत मुखतन धरणी नखन करोवत ।
आपु हँसति पुनि पुनि उर लागत चकित होत मुख जोवत ॥

कहा करत एबोलत नाहीं पिय यह खेल मिटावहु ।
सूरश्याम मुख कोटि चन्द्रछवि हँसिकै मोहिं देखावहु ॥

❀ धनाश्री ❀

नागरि हँसति हृदय डर भारी ।
कबहुं अंक भरि लेति उरज विच कबहुँ करति मनुहारी ॥
मान करत नीके नहिं लागै दूरि करौ यह ख्याल ।
नेक नहीं चितबत राधा तन निठुर भए नन्दलाल ॥
शीश धरति चरणनि लै पुनि पुनि त्रियको रूप निहारत ।
सूरदास प्रभु मान धरयो दृढ़ धरणी नखन विदारत ॥

❀ गुँड ❀

निरखि त्रिय रूप पिय चकित भारी ।
किधौं वैं पुरुष मैं नारिकी वै नारि माहिं,
हौं पुरुष तनु सुधि विसारी ॥
आप तन चितै शिर मुकुट कुण्डल,
श्रवन अधर मुरली माल बन विराजै ।
उतहि प्रियरूप शिर माँग वेनी सुभग,
भाल वेंदी विंद महा छाजै ॥
नागरी हठ तजौ कृपाकरि मोहिं भजौ,
परी कह चूक सो कहौ प्यारी ।
सूरप्रभु नागरी रस विरह मगन भई,
देखि छवि हँसत गिरिराज धारी ॥

❀ धनाश्री ❀

निरखत पिय प्यारी अंग अंग बिरह सोभा ।
कबहूँ पियचरण परति कबहूँ भुज अंग भरति,
कबहूँ जिय डरति वचन सुनिवेको लोभा ॥
कबहुँ कहति पियसों पिय कबहुँ कहति प्यारी,
हो हाहा करि पाँइ परति विकल भई वाला ।

कबहुँ उठति कबहुं बैठ पाछे ह्वै रहति कबहूं,
आगे ह्वै वदन हेरि परी विरह ज्वाला ।।
काहे तुम कियो मान बोले विन जात प्रान,
दम्पति है सङ्ग दशा ऐसी उपजाई ।
रीझे प्रिय सूरश्याम अंकम भरि लई,
वाम विरह द्वन्द मेटि हरष हृदय उपजाई ।।

❀ धनाश्री ❀

प्रिया पिय लीन्ही अंकम लाइ ।
खेलत में तुम विरह बढ़ायो गई कहा बिताइ ।।
तुमही कह्यो मान करिवेको आपुहि बुद्धि उपाइ ।
काहे विवस भई बिन कारन ऐसी गई डराइ ।।
सुन प्यारी हम भाव बतायो अन्तर गए जनाइ ।
बारंबार अलिगन दीन्हों अबहिं रही मुरझाइ ।।
सींची कनकलता सूरज प्रभु अमृत वचन सुनाइ ।
अति सुखदै दुखको बिसरायो राधारवन कन्हाइ ।।

❀ गुंडमलार ❀

श्याम तनु पिया भूषण बिराजै ।
कनक मणि मुकुट कुण्डल श्रवन वनमाल,
अधर मुरली धरे नारि छाजै ।
निरखि छवि परस्पर रीझे दोउ नारि,
वर गयो तजि विरह उर प्रेम पागे ।
सूरप्रभु नागरी हँसति मन मन रसति,
वसत मन श्यामके बड़े भागे ।।

❀ नट ❀

नागरि भूषण श्याम बनावत ।
श्रीनागर नागरि अँग सोभा किवो निरखि मन भावत ।।

श्यामा कनक लकुट कर लीन्हे पीताम्बर उर धारे।
उत गिरिधर नीलाम्बर सारो घूंघट बोट निहारे॥
वचन परस्पर कोकिल वाणी श्याम नारि पतिराधा।
सूर स्वरूप नारि पति काछे पति नारी तनु साधा॥

※ नट ※

नीके श्याम मान तुम धारचो।
तुम बैठे दृढ़मान ठानि मैं देख्यो मान तुम्हारो॥
यह मन साध बहुत ही मेरे तुम बिनु कौन निवारै।
नागरि पियतन अपनी शोभा बारहि बार निहारै॥
वेनी मांग भाल वेंदो छवि नैननि अञ्जन रंग।
सूर निरखि पिय घूंघट की छवि पुलक न मावति अंग॥

※ धनाश्री ※

कुञ्जवन गमन दम्पति विचारै।
नारिको वेस करि नारिको मनहि हरि,
मुकुर लै भावती छबि निहारै॥
भामिनी अङ्ग वह निरखि नटवर,
भेष हँसतही हँसत सब मेटि डारे।
सहज अपनो रूप धरो मन भावती,
और भूषण तुरत अङ्गधारे।
त्रियाको रूप धरि संग राधा कुंवरि,
जात ब्रज खोरि नहिं लखत कोऊ।
सूर स्वामी स्वामिनी बने एकसे,
कोउ न पटतर अरस परस दोऊ॥

श्री प्रिया-प्रीतम शृंगार करके मरकत मणि खचित शृङ्गार कुञ्ज में मणिस्तम्भ के समीप खड़े हुए, चित्रा सखी दर्पण लेकर प्रिया-प्रीतम के साम्हने आकर दोनों को दर्पण दिखाने लगी श्रीप्यारी जी

चित्राजी के हाथों से दर्पण अपने हाथ में लेकर स्वयं अपनो मुखारविन्द जोय रही तब श्याम सुन्दर प्रियाजी से विनय पूर्वक बोले प्यारी आपको मुखारविंद पूर्णशरद के चन्द्रमासो सुशोभित है।

हे प्यारी अब आप जग मन्दिर में पधारकर सखियन सहित रासमण्डल में पधारो। यह सुनकर प्यारी जी कहने लगी कि हे प्यारे ! आज आपने मेरे मुख की उपमा चन्द्र से दीनी है तो का मैं चन्द्र के समान हूं। चन्द्र में अनेक दोष हैं प्रतिदिन घटे बढ़े है और उसमें कलंक भी है। यह कहकर प्रिया रिसायगईं और मानकर मुख फेर खड़ी हो गई। लालने बहुत विनती करी समुझाई इतउत बहलाई तब भी प्रसन्न नहीं हुई। लाल बोले प्यारी जी इतनो हठ तो कबहू नहीं कियो जितनो आज कीयो है। जब लालजी किशोरीजी की बलैयाँ लेकर गलबैयां देने लगे तब श्री किशोरी जी बोलीं—

पद ठुमरी खम्माच—

प्यारे मेरे गरवा में जिनडारौ बैयाँ।
छुओ न लंगर मेरो पकरौ न कर तुम छाड़ो अब कपट बलैयां॥
जावो पिया जहां मन भावे जाईके परोपैंयां नहीं तुम से हमें काम है।
झूंठी भूंठी सोहें क्यों खाओ नारायण जानूं मैं तिहारी चतुरैयां॥

यह सुनकर लालजी बोले—

सांची कहो किधौं हांसी करोजी। आज कहा कारण जो मोसों वेर वेर कहो यहाँ से टरोजी।

प्यारीजु नेक नहीं बोली रूठकर मान कुञ्ज में जाय विराजी तब लालजी निराशहो सुदेवी सखी के समीप जाकर अपना विरह कथा सखी को वर्णन करी और सखी को समझाय कर मान मनाने के लिये प्यारी जी के पास भेजी। सुदेवी श्री प्रिया जी के समीप आकर नतमस्तक हो विनय पूर्वक बोली—

शृणु सखि वचनमिदं मम मा कुरु मानं त्वमुन्मुखे तस्मिन्।
प्राणप्रियेऽनुरागिणि न ह्युचितं जातुमुग्धाक्षि॥१॥

मन्दानिले वहति माधव एष राधे–
प्राप्तोभिसार पदवीं यदि काननेऽस्मिन् ।
लोकत्रये किमपरं सुखमस्ति तत्त्वम्–
जानास्यहं किमु वदामि तथापि तस्मिन् ॥२॥

राधे त्वद्‌भाग्यमहिमा न वेदविषयोप्ययम् ।
यन्माधवस्त्रिलोक स्त्रीमृग्यस्त्वयि रतस्तराम् ॥३॥

किमिति विषीदसि मुग्धे मधुसूदनमाशु मिलमनस्तापम् ।
मुञ्चविलोचन युगलं सफलय तद्दर्शनेनाद्यः ॥ ४ ॥

कतिधा कथितमिदं ते मा परिहर माधवं जातु ।
सागस्केपि प्रणयिनि हृदयस्याशक्यवृत्ति त्वात् ॥ ५ ॥

कुचकुंकुम पङ्कं सखिलोचननीरेणसिञ्च मा यदयम् ।
प्रकटोनुरागएव प्रियतमविषयो हि नो दहनः ॥ ६ ॥

(श्री विट्ठलेश्वर विरचित शृङ्गार रस मण्डने)

श्री सुदेवी सखी श्रीप्यारी जी से कह रही हैं। हे मृगनैनी राधा प्यारीजु ! प्राणनाथ विषाद से मुरझा रहे हैं प्रेम बाण से छिन्न हो रहे हैं। अति आतुर व्याकुलित हुए तुम्हारे प्राणप्रिय श्यामसुन्दर से इतना कठोर मान करना आपको उचित नहीं है। सुनो प्यारीजु श्री श्यामसुन्दर की तीनों लोकों की सुन्दरियाँ वाञ्छा कर रही हैं किन्तु उनको कदापि प्राप्त नहीं कर पातीं ऐसे सुन्दर तुम्हारे आधीन होयके रहते हैं। तुम्हारे महाभाग्य की महिमा चारों वेद भी नहीं कर पाते हैं। इस समय मन्द सुगन्ध पवन बहता हुआ अभिसार की सूचना दे रहा है कि यह सुन्दर समय अभिसार का है। हे राधे इस वृन्दावन में अभी तू हमारे लिये मधुमथनकारी श्री श्याम के लिये अभिसार करना ही परम सुख है।

हे राधे ! आप तो जानती हो फिर भी कहती हूँ कि जगत् के तीनों लोक में इससे परे कोई तत्व नहीं है कृष्ण प्राप्ति ही परम तत्व और परम सुख है। हे राधे आपके भाग्य की महिमा का वर्णन करना वेद का विषय नहीं है। अर्थात् वेद से अगम्य वेदातीत है। क्योंकि तीनलोक की सुन्दरियाँ जिनकी लालसा करके विफल होतीं हैं वह तुम्हारे आधीन है।

हे सुनयनी ! मधुमथन हार प्यारो आज तुम्हारे कमलदल नयन के दर्शन पाकर अपने हृदय के सम्पूर्ण ताप को मिटा देगा, हे प्यारी ! अब अपने प्राण प्रिय से शीघ्र मिलो। हे सखि अपने कुचों में लगा अनुराग रूपी केशर को अपने आँसुओं से मत बहाओ यह तो प्यारे का अति प्रिय है इसको विरहाग्नि से दहन मत कर, आपके प्रभु का मन अत्यन्त कोमल है उसमें तुम्हारे मान का भार सहन करने के योग्य शक्ति नहीं है। मैंने तो आपको कितनी बार कहा है कि हे सुन्दरी आप अपने प्राणनाथ के पास जाकर अपने रसपूर्ण आलाप से उनके ताप को बुझाकर उनका दुःख दूर करो मेरे वचनों को क्यों टाल रही हो। मैंने तो आपको कई बार कहा है कि माधव से शीघ्र मिलो और अपने मान के संताप को मिटाकर उनके दर्शन पाकर अपने नयनों को सफल करो। हृदय की कोमलता से गुनेगार होने पर भी प्रेमी छोड़ने योग्य नहीं है तुम्हारे कुचों में लगा कुंकुम तो प्यारे का प्रकट अनुराग है इसको अपने आँसुओं से मत बहावो यह तो प्यारे को ही अर्पण करने की वस्तु है जलाने की नहीं है।

सखि प्रियाजी को समझा ही रही थी। कि इतने में प्यारे आ गये और अधीर होकर दीनता पूर्वक प्यारी के चरण सरोज में झुकते हुए काकुवाणी से कहने लगे।

कल्याण राग की गीति—

सरसिज वदने मानं त्यज ।
मयि न तवोचितमसम शरे परिधावति ॥

(ध्रुवपदम्)

निजाधर सुधया तापं मनसिज रचितं दूरीकुरु ।
निज वाचा सुखं तनु ॥ १ ॥

कुचक कुम्भपरिरम्भारम्भ सम्भावनैव ते ।
सुखयत्वालि मामेवं भूते किं नु विलम्बसे ॥२॥

लोचन कुवलय युगलं तव नव एकाकलानिधिः किरणैः ।
रंजयतु तत्र प्रभाप्रतिबिम्बात् साङ्को भवत्वद्य ॥३॥
यदि मयि कोपिन्येव प्रणयिन्यसि चारु विविध बन्धांस्त्वम् ।
रद खण्डन नखर शरान् घटय मुदाहं त्वदीयोस्मि ॥४॥

(श्री विट्ठलेश्वर रचित श्री श्रृंगार रस मण्डने षष्ठ श्लोक से)

प्राणनाथ श्यामसुन्दर बोले—कमलनयनी तू मान विसार मुझ पर मदन प्रेम का आक्रमण हो रहा है इस समय ऐसा कोप करना उचित नहीं है (इस समय तो मैं आपकी दया का पात्र हूँ) अपितु इस समय आप अपने अधरामृत सिंचन द्वारा मदन के द्वारा प्रज्वलित मेरे ताप को ठंडा करें । और अपनी मधु बोलनी द्वारा मुझ को सुखी करें । मैं आपका अतिथि हूँ सब से प्रथम आप अपने कुचकुंकुम (रस पूर्ण कलशों के) आलिंगन से मेरा सत्कार (आतिथ्य) करें इस प्रकार के आतिथ्य प्राप्त मुझ अतिथि को सुखी बनाने में बिलम्ब क्यों कर रही हो ।

आपके नेत्र जो शरद रात्री की पूर्णिमा को उदय होने वाला नवीन पूर्णचन्द्र की शीतल रस पूर्ण किरणों की प्रभा से मुझ को आज हे प्यारी सखि, और इसके बाद मदन (प्रेम) मंगल कलश

को नवीन पल्लवों (मेरी करांगुलीयों) से सुशोभित भी करें आप, तथा उज्ज्वल अधरामृत अर्धचन्द्रोपम अधर से आप्यायित करें। हे न्यायाधिपा, यदि आप मुझ अपराधी को दण्ड देना ही उचित समझती हो तो उचित दण्ड जो दन्तक्षत नखरवाणवेध (निशाना) खुशी से करो मैं आपका बन्दी हूँ । मैं आपके सामने अभी उपस्थित हूँ आप अपनी तिरछी भ्रकुटी धनुष पर तीखे नुकीले बाणों को चढ़ाकर अपना प्रेम निशाना लगा दो ।

* दोहा *

मैं आज्ञा अनुवर्तिहों, अहर्निशा आधीन ।
करत बिहारी लाल यों, विनय बाल रस लीन ॥

* पद *

विनय यों करत बिहारीलाल ।
मैं तिहारो आज्ञा अनुवर्ती, हे मन-हरनी बाल ॥
जिंहि जिंहि भाँति चलावति हो मोंहि चालत सोई चाल ।
श्रीहरिप्रिया स्वामिनि तुम मम प्राणनिकी प्रतिपाल ॥

(श्री महावाणी सहज सुख)

॥ दोहा ॥

पलकांतर अवलोकविन, कल्पान्तरहिं विहात ।
सरवसधन विनु स्वामिनी, और न कछु सुहात ॥

॥ पद ॥

मेरे सरवस-धन स्वामिनी मोंहि और न कछु सुहावैरी ।
पलकांतर अवलोके विन मोहि कल्पांतर विहावैरी ॥
एक टेक यहि चित चढो रहे विन अकुलांवैरी ।
श्रीहरिप्रिया प्रानधन जीवन जोइजु मोंहि जिवावैरी ॥

(श्रीमहावाणी सहज सुख)

पद

मान न कीजै मानिनि वर्षा ऋतु आई ।
अङ्ग सङ्ग मिलि गाउ राधिका, राग मलार सुहाई ।।
बिनु अपराधहि रूसनों छाँड़िदे, श्री वृषभान दुहाई ।।
व्यास स्वामिनी साँवरे सुन्दर, पाइन लागि मनाई ।।

(व्यास वाणी)

दोहा

रची कुँज मनि मय मुकर, झलकत परम रसाल ।
राजत हैं दोऊ रंग में, ह्वै गयौ बिच इक ख्याल ।।१।।
देखि प्रिया प्रतिबिंब छबि, चकित ह्वै रही लुभाइ ।
तेहि छिन बैठी लाड़िली, मान कुँज में जाइ ।।२।।
रहे सोच विस्माइ तब, तन की गति भई आँन ।
लेत स्वाँस दीरघ बचन, कहत कहाँ प्रिया प्राँन ।।३।।
कौंन चूक मोतें परी, गई कहाँ दुख पाइ ।
हे सखी मैं समुझी नहीं, इतनी सुधि लै आइ ।।४।।
बार-बार सोचत यहै, मैं तो कह्यौ कछु नाहि ।
मन दै नीके समुझ तू, कहा आई जिय माहि ।।५।।
कहा कहौं अब प्रान ये, नैंननि में रहे आइ ।
जो गति देखी जाति है, तैसी जाइ सुनाइ ।।६।।

सोरठा

को समुझै यह बात, कहा कहौ हिय चटपटी ।
प्रान चले ये जात, रहि न सकत हैं प्रिया बिनु ।।७।।

दोहा

सुनत बचन पिय के सखी, भरि आये दृग नीर।
रहि न सखी ब्याकुल भई, चली प्रिया के तीर ॥८॥
आवत देखी सखी जब, मुरि बैठी सुकुँवारि।
भोंह रुखाई मौन धरि, नीचे रही निहारि ॥९॥
मान कुँज अद्भुत बनी, माननि मान अनूप।
रस में कछु रिस नेंन भरि, बाढ़्यौ सतगुन रूप ॥१०॥
चतुर सखी परी चरन में, रुचि लै करत है बात।
देखें पिय की गति प्रिया, हीयौ दरक्यौ जात ॥११॥
लुटत धरनि असुवनि भरनि, बाढ़ी नदी अपार।
गहि रहे गुन इक नेह कौ, राधा नाम अधार ॥१२॥
मुकुट कहूँ बंशी कहूँ, भूषन कहूँ पटपीत।
मैन सैन लिये घेरिके, तातें भये अति भीत ॥१३॥
सेज कुंज भूषन बसन, अरु फूलनि के हार।
देखि सबै अनखात हैं, पावक कैसी झार ॥१४॥
चंदन चंद समीर बन, कंज कपूर समेत।
सब दिन तौ यह सुखद है, तुम बिन अब दुख देत ॥१५॥
नेह रीति समुझत सबै, तुमते कौन प्रवीन।
जलतें न्यारौ होय जो, कैसे जीवै मीन ॥१६॥
तुम मग जोवत छिनहि छिन, और न कछू सुहाय।
पत्र पवन खरकत जबहि, उठि धावत अकुलाइ ॥१७॥
जहाँ लगि तुम मग लाड़िली, राखे नैंन बिछाइ।
ऐसे नेह नवल पिय, लीजै कंठ लगाइ ॥१८॥
राधा-राधा रट लगी, धर धारा इक ध्यान।
तदाकार तुव रूप भये, अब जिनि करहु निदाँन ॥१९॥

अरिल्ल

कहत हिये की बात सुनौ जो कानदै।
बढ्यौ सरस अनुराग प्रान प्रिय दानदै॥
इती समुझिकै बात बिलंव न कीजिये।
पुनि हाँ हँसिकै प्यारौ लाल भुजनि भरि लीजिये॥२०॥

दोहा

जब जान्यौ कछु मन भयो, चतुर चित्त को पाइ।
ल्यावन प्यारेलाल कौ, तेहि छिन आई धाइ॥२१॥
सुनहु लाल नववाल वलि, बैठी अति हठ ठाँन।
मौन धरे नैना भरे, दै कपोल तर पाँन॥२२॥
पाइन पर तृन दंत धरि, कीने जतन अनेक।
लाल तिहारी लाड़िली, छाड़त नहि हठ टेक॥२३॥
बहुत जतन विनती करी, बातें अधिक बनाइ।
चलियै अब पिय प्रिया कौ. लीजै वेगि मनाइ॥२४॥
मन तौ कछु कोमल भयौ, बातें लगी सुहान।
मान छूटिये जातहीं, यह पायो उनमान॥२५॥
आय लाल ठाढ़े भये, आगे दोऊ कर जोर।
सुनि सुनि प्यारे बचन मृदु, रही कुँवरि मुख मोर॥२६॥
सुहृदय अली अति हेत सों, बातें कहत निहोर।
रसिकलाल वलिप्रेम सों, वंधे, तिहारो डोर॥२७॥

॥ श्री प्रियाजी के वचन दोहा ॥

कै तव स्याम सनेह में, समुझावत सखि तोहि।
अंतर सित बाहिर सुरंग, हिय के नैनन जोह॥२८॥
जाके उर कछु प्रीत है, कहत न अधिक बनाइ।

जैसे लहरि समुद्र की, फिर फिरि तहीं समाइ ॥२९॥
रति लंपट रस हेत ही, अति अधीन ह्वै जाइ।
मधुर बचन सब कपट के, कहत वनाइ वनाइ ॥३०॥
अबतौ कीनौ नेम यह, चलौ न तिनकी गैन।
कैसौ हँसिवौ वोलिबौ, सनमुख करों न नैन ॥३१॥

॥ श्री लालजी के वचन दोहा ॥

तुम प्रवीन सब अंग में, ऐसी जिय न बिचार।
तासों ऐसौ चाहिये, तन मन जो रह्यौ हार ॥३२॥
कैसे कै सहि जात है, नेक रुखाई भौंह।
याते नाहिन और दुख, प्यारी तेरी सोंह ॥३३॥
जो जानत अपराध कछु, दीजे दंड बिचारि।
भुजन वांधिरद अधर धरि, नख छद करि सुकुँवार ॥३४॥
तुम जीवन भूषन प्रिये, तुम ही हो निज प्राँन।
और करहु जो रुचै सब, विचि जिनि आनौ माँन ॥३५॥

सोरठा

मेरे है गति एक, तुम पद पंकज की प्रिये।
अपने हठ की टेक, छाड़ि कृपा करि लाड़िलो ॥३६॥

दोहा

मोहन के मोहन वचन, सुन मोनी मुसिकाइ।
प्यारौ प्यारी प्यारसों, ढरकि लियो उर लाइ ॥३७॥
जब देखें खेलत हँसत, रस में दोऊ सुकुँवार।
हित ध्रुव तेहिछिन सखी सब, करत प्राँन वलिहार ॥३८॥

राग केदारो (प्रेम वैचित्री में संभ्रममान)

छांड़ि दैं मानिनी मान मन धरिवो।
प्रणत सुन्दर सुघर प्राण बल्लभ नवल
वचन आधीन सों इतो कत करिवो ॥

जपत हरि विवश तव नाम प्रतिपद विमल-
मनसि तव ध्यान तैं निमिष नहिं टरिवो।
घटत पल पल सुभग शरद की यामिनी.
भामिनी सरस अनुराग दिशि ढरिवो ॥
होंजु कछु कहत निज बात सुन मान सखि,
सुमुखि विन काज घन विरह दुःख भरिवो।
मिलत हरिवंश हित कुञ्ज किशलय शयन,
करत कल केलि सुख सिंधु में तरिवो ॥८३॥

(श्रीचतुराशीजी)

*श्री हरिवंश अबोलनो, प्रगट प्रेम रस सार।
सहज समीप अबोलनो, करतजु आनन्द मूल ॥

(श्रीसेवक वाणी)

सखि विनय करत है उसकी विनय सुनकर रीझी प्रिया।

दोहा—करुनासिन्धु कृशोदरी, प्रानन की प्रतिपाल।
सुनि सहचरी के वचनतिय, हिय लगाय लियो लाल ॥

---

*अबोलना का अर्थ यहाँ मान करना है।

सखि पूछती है कि स्वामिनी आप बार बार मान कर लेती हैं इससे प्राणनाथ को अति दुःसह दुःख होता है आपतो उनके सुख में ही अपना सुख मानती हैं फिर यह विपरीत क्रिया क्यों। सखी को उत्तर देकर समझाती है श्री लाड़िली। हे सखि, मेरो मन जब जब प्यारे को अति सुख देना चाहता है तब प्रेम को समुद्र उमड़ पड़ता है उस प्रेम की लहरों के झकझोर में मैं अपना देहानुसंधान खो बैठती हूँ मुझ को कुछ भी संज्ञा नहीं रहती है और तब प्यारे मान लेते हैं कि प्यारी मुझ से नहीं बोलती यह भ्रम उनको होकर दुःखी हो जाते हैं किंतु मैं तो उनको सुख देने ही के लिये प्रेम प्रकट करती हूँ, यह मान तो परम सुखदायक है।

*** पद ***

लाल को लिये लगाय हियेसों सुनि के वचन रसाल।
करुनासिंधु कृपाल कृशोदरि उमगि मिली तत्काल ॥
श्री हरिप्रिया प्रवर परिपूरन प्रानिको प्रतिपाल ॥२६॥

(महा० सहज सुख)

कुन्दाभा, इन्दुहासा गुणाकरी, विश्वाभा, सुविलासा आदि सखियाँ मल्लिका की क्यारी में खड़ी खड़ी इस लीला का अवलोकन कर रही हैं। इनमें से इन्दुहासा सखी ने गुणाकरी सखि से प्रश्न कियो कि हे जीजी कल दिन के ४ बजे फूल कक्ष में फूल सेवा करने के समय चित्राजी ने प्रीतमप्यारी जी के प्रीतम के प्रानन की प्रति-पाल इस प्रिया जी के नाम की और प्राण पोषणी या नाम के रूपक का प्रवचन कीनो वा समय मैं झूले की रचना करवे के लिये अनंग-रङ्गाम्बुज कुञ्ज में गई हती वाको आप कृपा करके मोकूं समझाकर वर्णन करो। यह सुनकर गुणाकरी मधुर मुसक्यान करती हुई बोली कि चित्रा जी ने या प्रकार वर्णन कियो सुनो, निकुञ्ज, निभृत निकुञ्ज, दृढ़व्रत निकुंज तीन प्रकार की निकुञ्ज होती हैं। श्रावण की तीजों को झूलनोत्सव की तैयारी होने लगी प्रिया षोड़शश्रृंगार किये श्रृंगार कुञ्ज के स्फटिक मन्दिर में एक बड़े दर्पण के सम्मुख खड़ी अपने रूप को निहार रही मानो अपने रूप को तोल रही, अद्भुत अनुपम श्रृङ्गार बन्यो है आपके मुखारविन्द में तिल प्रसूनवत् अति कोमल शुक चंचुवत् नासिका में वेसर विराज रही है वेसर में छोटी सी पन्ना की हरी कणिका है उस पन्ना की कणिका के नीचे एक सुन्दर मुक्ता और वा मुक्ता के नीचे एक लाल मणि छोटी मणि जटित लटक रयो है। श्री लड़ेती जी दर्पण में या छवि को देख रही अर्थात् या वेशर की रचना निहार कर बहुत प्रफुल्लित हो रही हैं तत् सुख सुखी रङ्गदेवी जी इस प्रकार की रसमग्न प्रिया की इच्छा

देखकर परम उल्लास से मुदित मन होय नृत्य करने लगी वा नृत्य में अपने भाव भंगिमा से प्यारी के रसमग्न स्वरूप को दिखाने लगी प्यारी जी के पास खड़ी हुई अष्ट सखियाँ जो नृत्यकला निपुण सबही संगीत की स्वामिनि हैं श्री रङ्गदेवी जी के नृत्यकला पूर्ण भावोद्बोध को समझ समझकर उस लीलारस में गोता लगा रही है।

प्रीतम एक ओर मणिखम्भ के सहारे खड़े इस कला चातुर्य पूर्ण ललित लीला का आस्वादन कर रहे हैं इन्दुहासा सखी गुणाकरी सखी से पूछत है अहो जीजी मैं या नृत्यभंगिमा से गुप्त बोध किस बात को कर रही है यह मैं समझ न सकी कृपा कर मोकु समझाबो तब गुणाकरी कहन लगी हे मुग्धे या समय नृत्य की कला में विविध भाव भंगिमा से या प्रकार समझा रही है।

लाल मणिस्तम्भ के सहारे खड़े खड़े चाक्षुषी भाषा अबोल में प्रिया से विनय करत गुप्त रूप में मन से याचना करते हैं कि हे प्यारी मैं आपके मधुमय मधुर श्री अङ्ग से परिरम्भ की प्रार्थना करूँ, कि आप कृपा करें तब चतुर चूड़ामणि प्यारी जो दर्पण के सामने उपस्थित हुई प्यारे को चाक्षुष भाषा से अबोल बोलकर समाधान कर रही है और वाही लीला को श्रीरङ्गदेवी जी अपने नृत्यकला से सारे भाव प्रकट दिखा दिखा कर प्रीतम को दिखा रही है रंगदेवी जी प्रिया की प्रेमकला में निमग्न हो सुधङ्ग नृत्यकर प्रेमानन्द सागर में गोता खा रही और सब सखी समाज भी प्रेमार्णव की तरङ्गों में आप्लावित ह्वै रही। रंगदेवी जी के नृत्य के भावों से यह प्रकट हो रहा है। हे लाल ! प्रिया का मुख कमल ही साक्षात् रासमण्डल है वा में श्री नासिका सिंहासन है वेसर रत्न खचित गद्दी बिछी है वेसर में तीन आभूषण मणि विराज रहे हैं ऊपर ही ऊपर पन्ना की मणि उसके नीचे मुक्ता बीच में है नीचे (तृतीय) मदन वाटिका (बाग) में मदन प्रेमोत्सव देखकर, चन्द्रानना, गुणाकरी

आदि सखियाँ कुञ्ज में आय विराजीं वहाँ पर कुछ समय बिश्राम करके चन्द्राननना, गुणाकरी आदि सब सखिगण निकुंज में आईं। वहाँ पर ललिता विशाखा चंपकलता आदि अष्ट हित सखी जन के यूथ विराज रहे उनको देखकर चन्द्राननना आदि सखी जन ने सबको प्रणामकर के प्रिया प्रीतम के लिये फूलन को चुनने में लग गईं।

फूलन को चुनकर चन्द्राननना और गुणाकरी दोनों सखी एक कदम्ब वृक्ष के नीचे बैठकर प्रियाजी के लिये फूलन को आभूषण बना रही और परस्पर लीलाओं की चर्चा भी करन लगी। गुणाकरी सखी चन्द्राननना से प्रश्न करती है कि हे जीजी निकुंज की बाटिका १. कुंज २. निकुञ्ज ३. निभृत निकुंज और दृढ़व्रत निकुंजों ५ में नित्यविहार होने की बात आप कहत हैं सो इन पांच प्रकार के कुजों का रहस्य क्या है तथा इनके भेद एवं इनको विशेषता क्या है वह कृपाकर मुझको समझावें। यह सुनकर चन्द्राननना बोली हे प्यारी सखी यह तेने जो प्रश्न कियो है वह परम रहस्यमय गोपनीय है। केवल रसिक जनों के जानने का विषय है बिना रसिक के मर्म को जान नहीं सकते हैं प्यारी बहिन तुझ को अधिकारी समझकर गुप्त रस की बात कहूँगी तू किसी अनधिकारी से इसकी चर्चा ही मत करियो।

१. बाटिका (बाग) वह है जिसमें सखा और सखियों के साथ वृषभानुनन्दिनी और श्यामसुन्दर की ब्रजलीला हुआ करती है।
२. कुंज उसको कहते हैं जहां सखाओं का प्रवेश नहीं है सखियां हो नित्यविहार में साथ रहती हैं।
३. निकुंज में प्रिया प्रीतम के विहार के समय सुहृद अलिगण ललिता विशाखा आदि निज सहचरी ही रहती हैं अन्य सखीगण का वहाँ प्रवेश नहीं है।
४. निभृत निकुँज में रहस्य पूर्ण प्रेम की लीलाएँ होती हैं वहाँ एक अलि तथा दूसरी निज सखी (अन्तरङ्ग सखी) नित्यविहार

में प्रिया प्रीतम के पास रहती हैं अन्य किसी का भी प्रवेश नहीं है।

५. दृढव्रत निकुञ्ज उसको कहते हैं कि जहाँ प्रिया प्रीतम के नित्य विहार में एक मात्र अन्तरंग हित सजनी चिकके आड़ में रहती है अन्य किसी सखी तो क्या वहाँ शुक सारिकाओं का भी प्रवेश मना है।

यह सुनकर गुणाकरी सखि ने प्रश्न किया कि हे प्यारी बहिन प्रिया प्रीतम तो विशुद्ध उज्ज्वल प्रेम ही की मूर्ति हैं उनमें लौकिक मलिन काम की तो गन्ध ही नहीं है वहाँ तो एकमात्र प्रेम का विलास होता है इस विलास की कथा के श्रवण मात्र से लौकिक काम और लौकिक कामना (वासना) दोनों नष्ट हो जाते हैं इन कुञ्जों में किसी का प्रवेश है और किसी का प्रवेश निषेध माना जाता है इसका कारण क्या है इस रहस्य को समझने की मेरी लालसा है।

गुणाकरी सखी की जिज्ञासा को समझकर चन्द्रानना सखी इस प्रकार कहने लगी, कि हे प्यारी बहिन अब तू माधुर्य्य रस जो परम विशुद्ध उज्ज्वल, अद्वैत रस का आस्वादन कराने वाला आस्वाद्यतत्व मधुराति मधुर है उसको प्राप्त करने की अधिकारिणी है उसको मैं तेरे सामने प्रकट करती हूँ ध्यान लगाकर सुन।

निकुञ्ज का नित्यविहार वृन्दावन का सर्वस्व है यह निकुञ्ज विहार जीव को (आत्मा को) परमात्मा से युक्त करने वाला सहज मधुराति मधुर शोधन है। इस तत्व ज्ञान को समझने के लिये उदाहरण पूर्वक समझाती हूँ मन को एकाग्र करके श्रवण कर।

जीव को ब्रह्म में लीन करने के लिए मन की अनन्त वृत्तियों को एकत्रित करके प्राण वायु के साथ वृत्तियों को जोड़ देते हैं और प्राण वायु समस्त वृत्तियों को आत्मसात् करके (अपने में निरोध कर) सुषुम्णा रूप राज पथ से चलकर सुख पूर्वक ऊर्ध्व राजमहल में

पहुंचता है और राजाधिराज के दर्शनकर अपनी समस्त कलाओं के साथ अपने को महाराज की सेवा में समर्पित कर कृतकृत्य हो जाता है तद्वत् सखी रूप जीव को गुरु रूपा सजनी अपने स्वरूप में तल्लीनता पूर्वक समर्पण कर तदीयता तद्रूपता को जब प्राप्त हो जाता है और गुरु रूपा सखी इसको आत्मसात् कर अपना ही रूप बनाकर तत्सुख सुखित्वरूप राज मार्ग (सुषुम्णा मधुर रस रूप राजमार्ग) में प्रवेश कर कुंज, निकुंज, निभृत निकुंज में होती हुई हृदन्त निभृत निकुञ्ज (महल) में पहुँचकर श्री युगलकिशोर की सेवा में रत होकर अपने को सम्पूर्ण कलाओं (कृपा पात्रों) सहित समर्पित हो जाती है तल्लीन हो जाती है इस तरह नामादि भेद रहित हो प्रथङ् मानित्व रहित हो अभेद रूप से दम्पति युगल सरकार को प्राप्त होकर कृत-कृत्यता कर लेता है । इस तरह हे सखि अब तुम समझ गई होगी यह प्रेम महाराज अनेक को एक ही बनाकर महासुख को विलसाने में प्राप्ताधिकार है अतः रागात्मिका तत् सुख सुखित्वभक्ति सर्वोत्कृष्ट है । गुणाकरी सखी ने पुनः प्रश्न किया कि हे स्वामिनी चन्द्रानने प्राण प्यारी ने मान कर लिया और प्यारे उनको मनाने लगे वह मधुरलीला किस प्रकार हुई वह कृपया फिर सुनावो ।

चन्द्रानना सखी वर्णन करने लगी हे प्यारी गुणाकरी, जब प्यारी ने अपना मान नहीं छोड़ा तब निराश होकर प्यारे श्यामसुन्दर ललिता जी के समीप जाकर प्यारी को अनुकूल बनाने की प्रार्थना ललिता जी से करते हुए प्यारी के दर्शनों की प्रति उत्कंठा ललिता जी के सम्मुख प्रकट करने लगे ।

* श्लोक *

कदा वा कालिन्दी कुवलयदलश्याम तरलाः ।
कटाक्षा लक्ष्यन्ते किमपि करुणावीचि निचिताः ॥

कदा वा कन्दर्पप्रतिभटजटा चन्द्रशिशिराः ।
कमप्यन्तस्तोषं दधन्मधुमती केलिनिनदाः ॥

(कृष्णकर्णामृत)

हे श्रीराधे, कब मैं कालिन्दी के नीलकमल की अपेक्षा अधिक श्यामल, अधिक तरल, तथा कोई अनिर्वचनीय करुणा लहरी से व्याप्त सुस्निग्ध आपकी कटाक्ष धाराओं के दर्शन करूँगा। हे ललिते कालिन्दी तो रस की सरिता है और सिन्धु तो राधाप्यारी जी का नेत्र ही है । उसीके रसविन्दु को पाकर के तो कालिन्दी कृष्णा बनी है ।

कालिन्दी में कमल हैं आपके मुख पर भी नेत्र कमल कर-कमल चरणसरोज आदि अष्टकमल विराजित हैं। किन्तु उनमें ये दो नयनकमल ही करुणा रस से सदा परिपूर्ण रहते हैं। जिस पर भी आप कृपा करते हैं प्रथम नयनकमल की ही करुणा रस धारा से उसे शीतल किया करते हैं। अतएव मुझ पर भी आपके नयनकमलों के करुणा रस बिन्दु प्राप्त हो जाय, आपके नेत्रकमल तो सदा "किमपि करुणावीचि निचिताः" हैं, कोई असाधारणी करुणा की लहरियों से भरपूर है। इसीलिये तो सखी मण्डल "सब द्वारन को छाँड़िके गह्यो कुंवरि तुम्हरो द्वार" कहती हुई आप ही के चरणों में रहती हैं। ऐसी असाधारणी करुणा हे राधे ! आपके लोचन में करुणा न होती तो मुझ को इन चरणों का आश्रय ही क्यों मिलता।

अहा ! क्या मेरा सौभाग्य सूर्य भी कभी उदय होगा कि जब मैं "कन्दर्प प्रतिभट जटा चन्द्र शिशिराः तव वीणा केलि निनदाः" को इन कर्णों से श्रवण करूँगा। सुना है आपकी वीणा की ध्वनि में अनन्त गुण हैं, आपसे सम्बन्धित सब ही वस्तु अनन्त हैं। आपके नाम, धाम, लीला, सबही अनन्त हैं। फिर वीणा के गुण भी अनन्त क्यों नहीं होंगे। परन्तु उनके कीर्तन करने के लिये भी तो अनन्त

रसना और अनन्तकान भी चाहिये। अतएव इस समय तो मैं केवल तीन गुणों को ही वन्दना करता हूँ—कन्दर्पदलनत्व, शीतलत्व तथा सूक्ष्मत्व यह अपनी कलध्वनि के द्वारा मेरे काम को दमन करके मेरी ज्वाला को शीतल करे, तथा कल के द्वारा राधा प्रेम को बढ़ावे। श्री लालजी राधा के मान से उत्पन्न विरह के तीव्र ताप में दग्धीभूत हो रहे हैं, ऐसी अवस्था में पद्माक्षी सखी सान्त्वना देने के उद्देश्य से मानो तो यह कहती है कि हे प्राणनाथ तनक धीरज धारण करो अवश्य ही श्रीराधा जी मान को छोड़कर आपको परिरम्भण देंगी। वह अपने नूपुर की मधुर शिञ्जान करती हुई मधुर कटाक्षों द्वारा आपको शीतल करेंगी। हे प्यारे आपको शीघ्र ही प्रसन्न करेंगी। सखी के इस आश्वासन से यत्किञ्चित् शान्त होकर प्यारे अनेक प्रलाप पूर्ण जिज्ञासा करने लगे, वे बोले आवेगी न सखी कब आवेगी, कब मैं उसके कटाक्ष के दर्शन करूँगा।

कौन कहता है कि राधा प्यारी के कटाक्ष बाण हैं, वे बाण नहीं, विदग्ध रस की धाराएँ हैं (कटन्ति विविधरसान् वर्षयन्त्यक्षीणि दृष्टयोयेषु ते कटाक्षाः) कट का अर्थ (वर्षा और आवरण दोनों ही में है। तन-मन प्राण रोम-रोम को शीतल करने वाली रस रङ्ग की धाराएँ प्यारी के कटाक्ष हैं कालिन्दी के नील-कमलों में वह श्यामलता, वह रसार्द्रता, वह प्रफुल्लता, वह चपलता, कहां जो मेरी प्यारी के श्याम नेत्र कमलों में हैं और वे नयन दया से विलक्षण एक अनिर्वचनीय करुणा भाव से सदा परिप्लुत रहते हैं। उस करुणार्द्र रस धारा से कब प्यारी जी मेरे हृदय को शीतल करेंगी। हाय उनके विरह में।

श्रीराधा प्यारी के विरह में श्यामसुन्दर को उन्माद हो आया इस उन्माद में दो मुख्य लक्षण प्रगट हो आये। भ्रममयी चेष्टा १ तथा प्रलापमय वचन २। अर्थात् करना कुछ था और कुछ कर बैठते तथा

कुछ कहते-कुछ कह बैठते, कुछ देखते-कुछ देख बैठते। परन्तु इन सब में राधा के नाम, रूप, गुण, लीला, धाम आदि के सम्बन्ध के अतिरिक्त अन्य बात का भान भी नहीं रहा। श्रीराधा प्रेम सिंधु का महा-आवर्त भी श्रीराधा प्रेममय ही तो होगा।

श्री श्यामसुन्दर श्रीराधा प्यारी के दर्शन के लिये व्याकुल होकर प्रार्थना करते हैं कि—मस्तक पर चन्द्रिका धारण की हुई, मन्द-मन्द मुसकराती हुई, वदन चन्द्र में मधुरस की धारा बरसाती हुई वह भोली-भोली सुकुमारी बाला मेरे नेत्रों को कब शीतल करेगी। अर्थात् वह यदि कृपा करके स्वयं दर्शन न दे तो अब अन्य किसी उपाय द्वारा उनके दर्शन पाने की सम्भावना नहीं है। उनके बिना कौन इन नयनों को शीतल कर सकता है। इस प्रकार प्रेम में प्रलापोक्ति श्रीकृष्ण कर रहे हैं। उनको ललितादिक सखियां सान्त्वना देती हुई कह रही हैं।

प्यारे कृष्ण धीरज धरो। राधा प्यारी आपके बिना रह ही न सकेगी शीघ्र प्रसन्न होकर तुमसे मिलेगी। वह तो आपके शृङ्गार के लिये पुष्प चयन करने को गयी होंगी, अभी आती ही होंगी। इस प्रकार कहते कहते सखियों का भी धीरज टूट गया, श्यामसुन्दर अधीर होकर पुकारने लगे। हे प्राणेश्वरी राधे कासि कासि (कहां हो कहां हो) 'शीघ्र दर्शन दो' की क्रन्दन ध्वनि उनके अवरुद्ध कण्ठ से निकल पड़ी और सखियों के प्रति श्रीकृष्ण प्रलाप वचन भावापन्न दशा में बोलने लगे। हे सखियो! वह किशोरबाला मेरी प्यारी राधा कब मेरे नेत्रों को अपने मुख चन्द्र के दर्शन कराकर शीतल करेंगी।

अरी सखियो चन्द्र चन्द्र नहीं है हे सखि उनका मुख ही चन्द्र है। मधु मधु नहीं है, उनके मनोहर हास से जो मकरन्द धारा क्षरित होती है वही मधु है,अमृत अमृत नहीं है,वह मेरी राधा ही मेरा अमृत

है। भूषण भूषण नहीं है, वह चिकुर चन्द्र बिच रोरी ही मेरा भूषण है। वे गोरे गण्ड कपोल ही लावण्य के सरोवर हैं। वे लोल कुण्डल ही सरोवर के मीन हैं। अरी सखी वह मीन नहीं है वह तो मेरा मन ही है। उनकी वह मन्द-मन्द मृदुहास ही मेरे मन को फँसाकर पकड़े रखने की फांसी है।

मैं तो ग्वाल हूँ किन्तु विमान में चढ़ने वाली देवांगनाएँ भी उनके मन्द मृदुहास को देखकर लज्जित हो चरणों में गिरा करती हैं। ऐसी वह श्री हेम बदरिया प्रगट होकर मेरे तन मन नयनों और प्राणों को अपनी सुधा वृष्टि से सिंचन करके मुझ को कब सुशीतल करेगी। ऐसे ही भाव के प्रवाह में बहते हुए श्यामसुन्दर फिर कहने लगे।

* बसंत तिलक छन्द *

कारुण्य कर्बुर कटाक्ष निरीक्षणेन।
तारुण्य संवलित शैशव वैभवेन॥
आपुष्णता भुवनमद्भुत वैभवेन।
प्राणेश्वरी सा शिशिरी कुरु लोचनं में॥१॥

* छन्द *

हा, सींचहु राधे मम लोचन,
तुम चन्द्र बदनी जो कहाती।
त्रिभुवन ताप विमोचिनी॥
करुणा भरे सहज रंग राती।
नैंनन की ढरो कोरन॥
तरुण किशोर वयस मदमाती।
छुटि न शिशुता भोलनी॥
मधुर विलास भुवन सुखपाती।
तुम प्रणत जन पोषण॥

हे प्यारी राधे आप मेरे नयनों को शीतल करदें, करुणा मिश्रित कटाक्ष दृष्टि धारा से शीतल करदें। तारुण्य मिश्रित शैशव की वैभव धारा से शीतल करदें, एवं भुवन पोषण कारी अपनी अद्भुत विलास धारा से शीतल करदें। यह एक धार ही त्रिलोक के त्रिविध तापों को हरण कर सकती है, फिर जहां करुणा की निर्मल गंगा तारुण्यभरी छबीली यमुना तथा विलास की रंगीली सरस्वती की त्रिवेणी हो, उसको मेरे नेत्रों को शीतल करने में क्या कोई प्रयास करना पड़ेगा। क्या सूर्य के लिये कमल को प्रफुल्लित करने में कोई प्रयास करना पड़ेगा। क्या चंद्रमा को कुमुदिनी को विकसित करने के लिये कोई चेष्टा करनी पड़ती है। ऐसे ही, हे श्री राधे, आपका मुख भी तो चन्द्र है, और मेरे नेत्र कुमुदिनी हैं इनको प्रफुल्लित करने में आपको रंचक मात्र भी परिश्रम करना नहीं पड़ेगा। केवल कृपा करके आपका मुखचन्द्र उदय मात्र हो जाय। यही मेरा अनुरोध है। आपका मुख ही चन्द्र है और वह सदा प्रफुल्लित रहने वाला है। नित्य ६४ कलापूर्ण है निष्कलंक है निरार्तक है मेरे प्राण वल्लभ है, अमृत रस पूर्ण है अनवद्य अह्लादक है, तथा आत्यंतिक तापहारी है। हे राधे मेरा तो माधुर्य रसदातृत्व और मेरा अस्तित्व भी आपसे ही है हे राधे आपके बिना राधारमण राधाबल्लभ कोई कैसे कह सकते आप ही से मेरा सुख है आपके बिना मैं कोरा, अधूरा ही हूँ। समस्त वेद पुराणों में मेरा प्यारा नाम "श्रीकृष्ण" ही कहलाता है।

श्री का अर्थ है राधा जो सर्वातिशय रूप, नव यौवन वयस, माधुर्य, लावण्य, लीला, विलास, वैदग्ध्य आदि सम्पत्ति का आश्रय है वह है श्री वह ही श्रीकृष्ण की श्री है शोभा सौन्दर्य, माधुर्य, चातुर्य, औदार्य आदि धर्म हैं। मेरे विभु का विभुत्व भी श्री राधे आप ही हो। चाँदनी के बिना चाँद का होना न होना जगत् के लिए न होने के समान ही है। वृन्दावन के रसिक जन इसे अपनी रसीली वाणी के द्वारा अति सुन्दर रीति से कहते हैं—

सुघर भये हो विहारी याही छविते ।
जे जे गढी सुजान पन्यो की ते ते याही बांहते ।।
"पूर्ण पुरुष पुराण भयो, (तब) पुरुषोत्तम नाम कहाये"

(स्वामी श्रीहरिदास जी)

राधा राधा नाम रटत ही, नवकिशोर फल पायो ।।

(हितरूप वधाई पद)

"हो तो जो न राधे को रकार याके नाम संग ।
मेरे जान राधे कृष्ण आधे कृष्ण हो जाते ।।

श्रीहित महाप्रभु अपनी चतुराशी जी में यही भाव प्रकट करते हैं।

जै श्रीहित हरिवंश प्रताप, रूप, गुण, वयबज श्याम उजागर ।
जाकी भ्रू विलास वश पशुरिव दिन विथकित रस सागर ।।

अतएव हे श्रीराधे आप करुणा करके मेरे नेत्रों को शीतल करें, आप करुणा निधि हैं। अपनी करुणा मण्डित लोचन कोर की एक कृपा भरी कटाक्ष धारा को प्रवाहित कर दें तो मैं शीतल हो जाऊँ ।

"गई न शिशुता की झलक, यौवन झलक्यो आय"

विद्यापति बंगाली कवि का कहना है कि—

शैशव यौवन दरशन मेलो ।
दुई पथ होरई ते मनसिज होलो ।।

अर्थात् इधर से शिशु अवस्था आई हुई है उधर से यौवन अवस्था आई। दोनों की सम्पति, रूप, गुण, विलास माधुरी, एकत्र मिलीं उस वय: सन्धि का नाम हुआ पूर्ण किशोर अथवा नव-यौवन। इस वय: सन्धि में शिशुता की चञ्चलता तथा मुग्धता (भोलापन) के सहित यौवन की चपलता तथा मुग्धता (मनोहारित्व) का अपूर्व मिश्रण रहता है। पूर्ण यौवन में यह वय: सन्धि की सम्पदा नहीं

रहती है । किन्तु श्री राधा को नित्य किशोरता रहती है अतएव श्री राधा में दोनों अवस्था की चपलता और मुग्धता सदैव एकत्रित हो कर रहती है ।

हे प्यारी राधा अब आप अपने जन पर ढरो मैं आपका हूँ । यह कहते हुए प्यारी जी के चरणों में आ बिराजे प्यारीजी मन्द मधुर मुस्कान युक्त प्यारे को परिरम्भन दियो, रूप और रस दोनों सागर मिलन से परम प्रेम रस पूर्ण हुओ । सखिजनन के हृदय में परम सुख की प्राप्ति हुई। हाथों में अञ्चल छोर करके आशीस दे रही लाड़िलीलाल की जय हो सदा जय हो ।। इति ।।

यत्पादपद्मनखचन्द्रमणिच्छटायाः ।
विस्फूर्जितं किमपि गोपवधूष्वदर्शि ।।
पूर्णानुराग रससागर सारमूर्तिः ।
सा राधिका मयि कदापि कृपां करोतु ।।१०।।

पदच्छेद– यत्पादपद्मनखचन्द्रमणिच्छटायाः, विस्फूर्जितं, किं अपि, गोपवधूषु, अदर्शि, पूर्णानुरागरससागर सारमूर्तिः, सा, राधिका मयि, कदा, अपि, कृपां करोतु ।

अन्वयार्थ– सा श्रीराधिका, मयि कदापि कृपां करोतु यस्याः पादपद्मनख चन्द्रमणिच्छटायाः किमपि गोषवधूषु अदर्शि सा कथंभूता पूर्णानुरागरससागर सारमूर्तिः ।

यत् जिनके, पादपद्मनखचन्द्रमणिच्छटायाः, चरणकमल के चन्द्रमा के आकार वालो नखमणि की कान्ति का, विस्फूर्जितं चमत्कारी प्रभाव, गोपवधूषु गोपवधूटियों में अदर्शि, लक्षित हुआ है ।

सा० वह, पूर्णानुराग रस सागर सारमूर्तिः, परिपूर्ण अनुराग रूप शृंगार रस सागर को सारमूर्ति राधिका श्रीराधिकाजी, कदापि, कभी मयि मेरे ऊपर, कृपां करोतु कृपा करें ।

(यह प्रार्थनात्मक श्लोक है)

* कवित्त *

जाके पद पद्मनख चन्द्रमणि छटा की प्रभा,
आभासी देखियत गोपवधू जनमें ।
पूरण अनुराग रस सागर को सार,
चारुता ही की मूरत सो रची बनितन में ।
ताही के प्रभाव को विचार द्वार-द्वार सीस,
गिरा गिर रही मुख बानी कवि गन में ।
ऐसी श्रीराधे कब कृपा करै मोपै दास,
तिन ही की आस दृढ़वास वर मन में ॥

(हितदास भोरी)

* चौपाई *

जिन पग नखमणि छटा जुन्हाई ।
कछु व्रज जुवतिन मँह लखि पाई ॥
सो अनुराग सार वपु गोरी ।
कृपा करैं कब नवल किशोरी ॥१०॥

(श्रीहित० रूप)

हिन्दी भाषा में सरल अर्थ—

जिनके चरण-कमलों के नख रूप चन्द्रमणि की किसी अनिर्बचनीय छटा का प्रकाश गोपांगनाओं में देखा गया है, उसी परिपूर्ण अनुराग-रस-सागर की भी सार-मूर्ति श्रीराधिका जी कभी मुझ पर भी कृपा करेंगी ।

संस्कृत गो० कृ० र० व्याख्या—

इदानीं कृपातिरेकमन्यत्र संलक्ष्य तद्भावमात्मन्यप्यालक्ष्यति धाष्टर्येन प्रार्थयति । यत्पादेति । सा राधिका मयि कृपां करोतु । किमर्थं त्वयि कृपां करिष्यतीति चेत्तां विशिनष्टि । सा का । यत्पादपद्म नख चन्द्रमणिच्छटाया विस्फूर्जितं किमपि गोपवधूषु मया अदर्शि सा ।

यत्पाद पद्मे नखाएव चन्द्रमणयः मौक्तिकानि तेनखां छटायाः किमत्य-निर्वचनीयं त्रिस्फूर्जितं गोपवधूषु गोपांगनासु मया दृष्टं तस्मादहमप्यात्मानं तत्कोटावेव मन्येऽतो मय्यपि संभावनेति भावः। पुनरपि तद्धेतुमाह। तद्विशेषणेनैव। पुनः कथंभूता सा पूर्णानुराग रससागर सारमूर्तिः। पूर्णो यो अनुरागः स्नेहस्तस्य यो रसः स सागर रूपो विस्तृततत्त्वात्तस्य रसमूर्तिः आधिदैविकी या सा ॥१०॥

रसकुल्या

ननु गोपीष्वपि रसो दृश्यते अत आसज्यत्वं किं न कल्प्यं, आसामासक्तत्वमेव यत्र तत्र ख्यातं कृष्णांगीकरणमपि रासाशौ तन्नखच्छटा प्रभावेणैवेत्याह यत् पाद पद्मेति।

हिन्दी टीका

क्योंजी गोपियों में भी प्रेम रस की अभिव्यक्ति है। अतः श्यामसुन्दर के आसक्त होने की सामग्री गोपियों में भी क्यों न मान ली जाय। उत्तर यह है कि गोपियों में रसाभिव्यक्ति रास में (स्वतन्त्र नहीं है अपितु आनुगत्य सिद्धांत से) प्रियाजी की नखमणि चन्द्रिका के प्रभाव ही से है।

यत्पाद पद्मनखचन्द्रमणिच्छटायाः।
विस्फूर्जितं किमपि गोपवधूष्वदर्शि॥
पूर्णानुराग रससागरसारमूर्तिः।
सा राधिका मयि कदापि कृपां करोतु॥१०॥

रसकुल्या

सा राधिका मयि कदापि कृपां करोतु। सा का यत् पाद पद्मेत्यादि, स्वयं तु रससागर सारमूर्तिः अस्तीति

सम्बन्धः । सा तटस्थ लक्षणानुमित विलक्षण स्वरूपा राधिका अनिर्वचनीय निजासमोर्द्ध विभव दर्शितान्य हेय-भाव सिध्यर्थाधानानुकंपाधार बाह्याभ्यंतर लीलायुक्ति नीति वैदग्ध्यप्रेमिसुलभमुग्धेत्यादि गुणविशिष्टनाम्नो मयि मदीयत्व कृपा मात्रानन्य गतिक निदेशवर्ति बिरहानुभविजने । कदापीति संभावनायां दुर्लभत्वं सूचितं साधकजन सवि-श्रंमार्थं स्वस्य च भवांतरायेऽपि चिरकाल दुरति वाहता दर्शिता कदेति कस्मिन् सुचरित परिपाक काले इत्यर्थः ।

हिन्दी टीका

वह श्रीराधिका जी—मुझ पर भी कृपा करें।

वह कौन ? जिनका वर्णन यत् इस पाद पद्म इत्यादि श्लोक में है।

श्रीराधा स्वयं तो पूर्णानुराग रस सागर सार मूर्ति हैं उसी सम्बन्ध से कृपा अभिलाषा है।

श्रीराधिका-पूर्णानुराग रस याने प्रेम रस रूपा ही नहीं है अपितु प्रेम रस की अनन्त परिमाण स्वरूप सागर की भी सार स्वरूपा है इस (तटस्थ लक्षण) स्वतन्त्र लक्षण के द्वारा, विलक्षण स्वरूपा है, अर्थात् सर्वथा अनिर्वचनीया है उनके स्वरूप को यथावत् कहना या समझना सम्भव ही नहीं है। कहना इतना है कि श्रीराधाजी का वैभव और विशुद्ध भाव उपमा के द्वारा लक्षित हो नहीं सकता। (श्रीमद् भागवत के द्वितीय स्कन्ध के तीसरे अध्याय में श्रीराधारानी के शिष्य शुक मुनी ने उनका स्वरूप बताने में अपने आपको भी असमर्थ पाया और) तथा भागवत में "निरस्त साम्यातिशयेन राधसा स्वधामनि ब्रह्मणि रंसते नमः" कहकर श्री सुधानिधिजी के उस श्लोक को यथावत् सिद्ध किया "यन्नारदाजेशशुकैरगम्यं" कि श्रीराधा जी का स्वरूप शुक मुनि के लिये भी अगम्य है। तथापि

जो कुछ अनुभव में और उनके कृपापात्रों के शब्दों में उनका स्वरूप लक्षित हुआ है वह 'अनुकम्पा' स्वरूप है और प्रकट तथा नित्यलीला निर्वाह रूप है। भक्तों के लिए मुग्धाआदि गुण विशिष्ट हैं, तो केवल मदीयत्व भाव वाले और श्रीराधाजी के अतिरिक्त जिनकी दूसरी गति ही नहीं है, उन वशवर्ती विरहीजनों पर भी कभी कृपा होगी, उस सम्भावना के द्वारा दुर्लभता की सूचना के साथ साधक जनों के निराश न होने के लिए विश्वास को भी स्थान है कि कभी कृपा करेंगी। अपना दुर्भाग्य रूप विलंब, कालक्षेप समाप्त होने पर और परम सौभाग्योदय होने पर कृपा अवश्य होगी। वह सहज मृदुता, दयालुता, कृपालुता, की मूर्ति है।

रसकुल्या

कृपा-निजा साधारण करणीयां करोतु इति स्वभिलाष-पूरणाशीरासंशनं स्वयमेव कृतं वा तदीयत्व प्रेम दास्यसख्य वात्सल्य गर्वेण प्रेरणाञ्च कृपाढ्यस्य कृपादानं निजजनपोषणं परमोचित यशोवर्द्धकमिति परस्मैपदार्थः विहितत्वेन विशिनष्टि।

रसकुल्या की हिन्दी

कृपा अर्थात् अपनी असाधारणदासी (निजसखी) बनावें। इस अभिलाषाकी पूर्ति हो ऐसी आशा अपनी ओर से है। अथवा तदीयत्व (उनकी बनने में) होने के लिये किसी प्रकार का (प्रेम संवन्ध हो जाय वह चाहे सख्य दास्य वात्सल्य आदि रूप का हो किसी प्रकार से कृपाधन की स्वामिनी का यश बढ़ाने और अपने जनों को पोषण वर्द्धन कारी भी होगा। परस्मैपद के (करोतु) ध्वनित है, कि उनकी कृपा दूसरों के लिए है उनके पास रहती है।

रसकुल्या

पूर्णेति–पूर्णयोर्निरपेक्षयोरनुराग रसयोर्वा प्रेमैवरसः तस्य सागरः तं सागरमुन्मथ्य सारवदुधृतं ततःपरं उपायं प्राप्य साराभावात्। यथा भगवल्लोकेष्वपि सच्चिदानन्द मयत्वमस्त्येव। तदप्यंश कलावतार वत्ताबिभेदात् तार तम्यमंशी कृतमेव मंशीतु पूर्णतमः। सर्बेषं परम स्वरूपे पर्य्यवसानात्।

रसकुल्या की हिन्दी टीका

पूर्णानुराग---इत्यादि विशेषणों के अर्थ हैं कि अपने सुख के लिये निरपेक्ष और सर्वथा उदासीन होने के कारण 'तत् सुख सुखित्व' पूर्ण केवल श्रीप्रिया-प्रीतम परस्पर सुख देने की होड़ में अथवा आश्रित सखीजनों को सुख देने की इच्छा से पूर्ण प्रेम रस सागर स्वरूप है उस सागर का भी सार कहा जाना भी पूर्ण वर्णन नहीं है। इससे अनवस्था दोष नहीं जाना जायगा, अपितु अनन्तता ही सिद्ध होगी कि आगे कल्पना करने वालों की गति ही नहीं है। इससे अनिर्वच-नीयता माननी पड़ेगी। जैसे भगवान स्वरूप अनन्त सच्चिदानन्दमय हैं। 'सत्यं ज्ञानमनंतं' विशेषण विशिष्ट है तथापि मत्स्यकच्छप बाराह आदि अंशावतार कलावतारों में गुणों को जितना प्रकट किया है उसी प्रदर्शन के द्वारा उनके स्वरूप को न्यूनाधिक कहा जाता है और अंशो को पूर्ण कहा जाता है, क्योंकि अंशी के द्वारा पूर्णगुणों का प्राकट्य है। इसीसे अंशी (श्रीकृष्ण को) भी सब ही अवतारों का पर्यवसान माना है (वस्तुतः सब ही पूर्ण है) किन्तु "मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनजय" गीता के वचनों द्वारा अवधि और पूर्णतम अंशी को ही कहा गया है क्योंकि उनके बाद कोई प्राप्य तत्व नहीं

रहता है । इसी प्रकार यहाँ भी पूर्णानुराग सर सार श्रीराधा ही है ।

रसकुल्या टीका

ननु प्रेमानुरागे तु स्वरूपाः व्रजस्त्रियः (गोप्यः) श्रूयते यथा— नायं श्रियोऽङ्ग उ नितांतरतेः प्रसादः-

स्वर्योषितां नलिनगंधरुचां कुतोऽन्याः ।
रासोत्सवेऽस्य भुजदण्डगृहीतकण्ठ-
लब्धाशिषां यदगाद् व्रजबल्लवीनाम् ।।

न पारयेहं निरवद्य संयुजामित्यादौ स्वयंपूर्णत्वेन भगवाँसंस्तुतानां किं जातीयंप्रेम कियद्वा श्रीमत्याश्चेति अनुराग रसलेशकं उत किंचित् स्वल्पोपि गोपवधूषु । आधायेत्युक्तं सादरेण रेणुसेवन निष्ठासु सुदृष्टं सद्भिर्मावुकैरिति ।

बा तादात्विक सामोप्य वर्तिना पूर्णानुराग रस साराश्रयभाव प्रभाव प्राप्तदुर्घट सामर्थ्येन वक्तृभूतेमयि इत्याध्याहारः ।

रसकुल्या की हिन्दी टीका

अनुराग सागर का सार राधा ही है तो फिर व्रजगोपियों को भी प्रेमानुराग रूपा सुनते हैं जैसे श्रीमद्भागवत में नायंश्रियोऽङ्ग इत्यादि श्लोकों से वर्णित है उस सम्बन्ध में नीचे लिखे श्लोक श्रीमद्भागवत में प्रमाण हैं ।

नायंश्रियोऽङ्ग उ नितांतरतेः प्रसाद इत्यादि । इस रस का अधिकार तो श्री लक्ष्मीजी तक को भी प्राप्त न हुआ फिर देवांगनाओं को तो सम्भव ही कहां है। जो रस श्रीकृष्ण की भुजाग्रों को अपने कण्ठ में धारण करने वाली रासरमणि गोपियों ने प्राप्त किया, और स्वयं पूर्णतम श्रीकृष्ण ने भी 'न पारयेहं निरवद्यसंयुजां' कहकर अपने

आपको उनका रिणी माना है। तो यह प्रेम उनमें स्वतन्त्र है या श्रीराधारानी की कृपा से है। उस अनुराग रस का लेशमात्र या स्वल्पमात्रा में गोपांगनाओं में माना तो गया है। पर वह आया कहाँ से यह विचारणीय है। इसका उत्तर भी उपरोक्त श्रीमद् भागवत के श्लोकों में ही है कि उनके भुजदण्ड को धारण करने के कारण ही यह प्रेम रस प्रकट हुआ है। तथा व्रजरज के समाश्रम से और स्तुति से कि "धन्या अहो अमी आस्यो" उनमें स्वतन्त्र तो नहीं माना जा सकता यही माना जायगा कि व्रजरस उसकी अधिष्ठातृ श्रीराधा जी की कृपा सापेक्षही है स्वतन्त्र नहीं है। ऐसा भावुकों का मत है। श्रीराधारानी की चरणरेणु (व्रजरेणु) की निष्ठा के कारण श्रीराधा पूर्णानुराग रस सागर स्वरूपा के आश्रय के प्रभाव से दुर्घट दुर्लभ प्रभाव ब्रजगोपियों को प्राप्त हुआ वैसे ही हम को भी प्राप्त हो ऐसी अभिलाषा मेरी भी है कि प्राप्त हो सकता है।

रसकुल्या

किंवा अन्यथानुपपत्त्यपि दृश्यते, स्वसंवेद्यलीलाधिष्ठात्री देवी विना लीलामात्रा सिद्धेर्यत्र यत्र यस्या तावदंशस्तत्र. तत्र तावदेव लीलयांगी करोति कृष्णः। किंचच्छटा आदान-मपि व्रजलीला सिद्ध्यर्थमेवप्रियोपि तच्छटालेश लुब्धस्तासा मनुरागे रसं च महारासादौ अंगोकृतवान् तन्मात्रेणैव ब्रह्मादि काम्य रजस्काजाता। परिकराणांतु भगवदंश भूत सख्य रस मूर्तयएव इति लौकिकालौकिकत्वेन निर्दापितैव।

रसकुल्या की हिंदी टीका

किंवा और भी रहस्य की बात यह है कि अन्य किसी भी प्रकार से यह रस प्राप्त हो सकता है यह तो माना ही नहीं जाता संदर्भों में--स्वयंवेद्य लीलाधिष्ठात्री देवी तो श्रीराधारानी हैं (जो स्वयं श्रीकृष्ण की स्वरूपभूताह्लादिनी सार हैं स्वयं श्रीकृष्ण भी

इनही के स्वरूप हैं इस कारण (के जाने वृषभानुनन्दनी के वह कान्ह-रकारो) उस रस के निर्वाह में अन्य सब ही बाह्य गुण अग्राह्य हैं इस रस की सिद्धि तो रासेश्वरी श्रीराधाजी ही से है। श्रीराधा जी की छटा जहाँ भी प्रतीत होगी वहाँ उस छटा का श्रीकृष्ण आदर करेंगे उसके आधार के बिना सम्बन्ध न होगा। महारास में श्रीराधा जी के प्रेम की अभिव्यक्ति जिन गोपियों में थी उन गोपियों के प्रति श्रीकृष्ण का आकर्षण उस अभिव्यक्त रस का ही आदर था। उस राधा रस को धारण करने वाली गोपांगना ब्रह्मादिकाम्य पदरज वती हुई। भगवल्लीला में परिकर स्वरूप से जिनको माना गया है वे रस को धारण करने के कारण परिकर में मानी गई यह बात लौकिक अलौकिक रूप व्यवहार दृष्टि से ही है।

रसकुल्या

यद्वा—गोपवधूष्वित्रतिजातिरूप्या गोपीष्वेवेति तात्पर्यं। तदनुरागच्छटालेश रूपलावण्य विलासादि तदेवं गुञ्जा मेरु व्याजेन श्रीमत्यां तु पूर्णानुरागरस सारत्वं कदाचिदासक्तत्वं कदाचिदासज्यत्वं युगपदेववा पूर्णमाविर्भवत् विरुद्ध धर्माश्रया चिन्त्यशक्तित्वात् ॥१०॥

रसकुल्या की हिंदी टीका

अथवा—गोपांगनाओं में जो गोपी जाति की है उनमें अनुराग की छटा का लेश, रूप, लावण्य विलास आदि रूप है तो वह श्रीराधा जी के अनुराग रूप लावण्य के सामने इतना ही है जितना सुमेरु के सामने एक गुञ्जा (रत्तीचरमु) के बराबर ही है। गोपांगनाओं में पर्वत के सामने एक गुञ्जा जितना श्रीप्रिया जी के सामने है श्रीराधा जी पूर्ण हैं। वह श्रीराधा कभी आसक्त रूप से और कभी आसज्य रूप से दीखती हैं यह विरुद्ध धर्माश्रय होना यह उनकी अचिंत्य शक्ति है। सच्चिदानन्द ईश्वर में विरुद्ध धर्म विराजते हैं यह उनका अचिंत्य भगवद् गुण है ॥१०॥

आज बसन्तु ऋतु को मनोहर समय है। मोती महल में विहार भयो हो, अब श्री लालजी प्रियाजी, स्नान, शृङ्गारादिक सौं निवृत्त ह्वै कें रत्न जटित सिंहासन पै विराजमान भये हैं। बसन्तोत्सव के उपलक्ष में रङ्ग-रङ्ग के पराग-अनुराग सौं उड़ रहे हैं, जिनकों देखि-देखि मोरन की मण्डली, मुदित भई नाचें हैं, मतवारे भौंरान की पंक्ति गुञ्जार कर रही हैं, इनके स्पर्श सौं पुष्पन को पराग उड्यो, जाकूँ लेवे के ताईं पवन की हिलोरें उठीं, जासौं लता झक झोरी और पुष्पन की मन्द-मन्द वर्षा चारों ओर ह्वैवे लगी।

पुष्प और पराग, राग रञ्जित अति रम्य, सौरभमयी परम पवित्र पुलिन के मध्य भाग में, सोने को सुन्दर चोकोर चोंतरा बनों है, जापे पुखराज (पीतमणि) की जाली वारो विचित्र सभा मण्डप सुशोभित है, जामें मणि खचित तारेन की ध्वजा झिलमिल करती झालर की झलक सों मन कूं मोहि रही है। ध्वजा के नीचे, कनक कलश हैं, जिनके चारों ओर मणिमय कगूँरा जगमगाय रहे हैं, कंगूँरान के नीचे पद्मराग (लाल मणिन) के खम्ब चित्र विचित्र जालीदार सुशोभित हैं जिनकी दरन में पन्ना के (हरित मणि) महराव हैं और हीरान की जवनिका (परदा) पड़े हैं, चारों ओर मुक्ता मालान के जालीदार बितान (चँदोवा) तने हैं जिनमें माणिकन की झालर झलकें हैं।

ऐसे दिव्य सभा मण्डप के नीचे बसन्त खेलवे कूं, बड़े २ रत्नन के थालन में गुलाब की पंखुँड़ी भरी धरी हैं, एक ओर मणिमय थारन में रङ्ग रङ्ग के अबीर गुलाल भरे धरे हैं। कञ्चन की कमोरिन में कस्तूरी भरी है, अबीर, अरगजा, अम्बर भरे हैं, बड़ी २ रत्न जटित नांदन में केसर घुरी धरी है, जिनमें सोनेन की पिचकारी परी हैं, रत्नन की टोकरिन में हजारी गेंदा, गुलाब, गुलनार, कचनार, चम्पा, चमेली, जुही, कुन्द, मन्दार के पुष्प भरे हैं मणिमय थारन में, लाल,

पीले, नीले, हरे, गुलाबी रङ्ग के गुलाल और अबीर भरे हैं। बड़े २ रत्न जटित, पानकन में (शीशीन में) सुगन्ध सार (अतर) भरे हैं। चारों ओर सखी चोबा, चन्दन, केशर, कस्तूरी, अम्बर और अतरन के कटोरा लिये, मोरछल, व्यंजन, चमर छत्र लिये, चित्र, विचित्र, वस्त्राभूषणन से सुसज्जित सेवा में सावधान खड़ी हैं।

सभा मण्डप के नीचे, चोकोर चौतरा पे पुष्पन की दिव्य निकुञ्ज बनी है, जामें पीत के परकोटा हैं. मोंगरा की मुडगेली हैं, दाऊदी के द्वार जिनमें चमेली की चौखण्डी और दुपहरिया के दासे हैं, चम्पा की चौखट है जिनमें केतकी की किवाड़ हैं, कसूम की किवाड़न में सेवती की सांकर है, कुन्द के कुन्दा जिनमें गुलतुर्रा के तारे हैं। भीतर केलान के खम्ब जिनमें मोतिया की मरगोल, सहदेही की सोट और केसू के किरचा हैं, टेसू के टोड़े बने, छावटी के छज्जे हैं मदनवान की महरावन में जुही की जाली हैं, गुलाब के गोरवा और मोंगरा के मोखा बने, जाफरा के झरोखा हैं, अरनी कौ अटा और अनार की अटारीन में तुर्रा की तिवारी, चम्पा की चित्रसारी, हार सिंगार के हटरा हैं, कोमल के कोठे और कसूम की कोठरी, पान की पौरी जिनमें अनार के आले हैं, सुगन्धरा की सीढ़ी हैं छुई की छत्तन पे कुन्द के कलसा हैं, पीत चमेली की पताका और धाप की ध्वजा हैं, द्वारन पै बेला की बन्दनवार–भीतर पितौनिया को पलका जाकी पीतकी पाटी और सेवती के सेरे हैं. पद्मन के पाये हैं. निवारी की निवाड़ से कसो है, गुलाव को गद्दा जापे चमेली की चादर विछी, गुल सेरा के गेंदुआ हैं, ऐसी पलिकिया पै प्रिया प्रियतम विराजे हैं जिनको शृङ्गार आज पुष्पन सों ही कियो है।

प्रिया जी की चूँदरी चम्पा की वनी, लाल कमल को लहंगा है, कुन्द की कंचुकी और चमेली की चंद्रिका है, मोतिया की मांग और सूरजमुखी को सीस फूल, वेला को वैना है, कदम के कर्ण फूल,

वसन्त के वाला हैं, नरगिस की नथ जामें मोर छली के मोती हैं, गेंदा को गुलीवंद चम्पा को चन्द्र हार, सदा सुहाग की सतलड़ी, हार सिंगार को कंठ हार, कचनार का कठला, और मरुआकी मोहन माला जुही की जयमाल, तिलहर की तिमनिया है, गुलवांस के बाजूबंद, वेला के वरा, और पीत की पछेली हैं, पितौनी की पहुँची और मोर छली के छैन हैं, दाऊदी के दूआ और अरनी की आरसी है, कुंद के कड़े और कमलन के कंगन हैं, छावरी के छल्ला, छुई की छाप, हार सिंगार के नथ फूल, अनार की अँगूठी है. कमर में केवड़े की कौंधनी, चरणन में, कोयल के कड़े, पीत के पायजेव, चम्पा के नूपुर और चमेली की चुकटी है सेवती की सांठ सहदेई के सांकड़ा है।

लालजी को शृङ्गार पुष्पन सों भयो है—मोतिया को मुकट और पक्ष की पाग जापे कसूम की कलंगी और गुलतुर्रा के तुर्रा हैं, कदम के कुण्डल और जुही को जामा है पाहर को पाजामा और पीत को पटका है चरणन में निवारे के नूपुर और केतकी के कड़े हैं। कर कमलन में केतकी के कड़े हैं उँगलीन में राय बेल की मुंदरी जिनमें नवल के नग जड़े हैं, बाजू में कनक बेल और वसन्ती के बाजूबंद हैं, कंठ में मालती की माला और गुनकली को गोफ है ऐसो पुष्पन को शृङ्गार किये प्रिया प्रियतम विराजे हैं जिनके श्रीअंगन में लगी दिव्य गन्ध चारों ओर सुरभित होय रही है। प्रिया प्रियतम की आज्ञा में रहने वारी सखीगण सेवामें तत्पर हैं। आज वसन्तोत्सव की झाँकी कछु अनोखी ही है।

सभा मण्डप के चारों ओर रंगबिरंगे गुलाब जल के कुण्ड हैं, जिनके मणिमय घाटन पै अति सुगन्धित, गुलाब, केवड़ा, जल के फुआरे चल रहे हैं, और गोशन पै रंग रंग की नहर बह रही है जिनमें फुआरेन को जल गिर रह्यो है।

कुण्डन के चारों ओर मणिमय निकुञ्ज हैं जिनकी शोभा को वर्णन करवे में शारदा की हू मति सकुचावै है। जहाँ पिरोजा के पर कोटा हैं जिनमें मूंगान की मुड़गेली हैं, वैदूर्य के द्वार और माणिक के किवाड़, जिनमें कौस्तुभ की कील और चुन्नी की चौखट है, गोमेद के दासे हैं, भीतर बैदूर्य की बारह द्वारी है जिनमें चन्द्रकान्त की चाँदनी है, नीलमणि के खम्ब जिनमें लालन के दीपक जगमगाट कर रहे हैं। हीरान के हटरान पे कौस्तुभ के कलश अति शोभित हैं; जिनमें पन्ना की ध्वजा और पिरोजा की पताका, जिनकी मूँगान की डंडी है। बारह द्वारी के ऊपर गोमेद के गोखा जिनपे मोतीन की जाली और मूँगान की झालर झिलमिलाट कर रही है। चारों ओर मणिमय सरोवर हैं जिनमें नीलमणि से स्वच्छ नीर भरे हैं, जिनके हीरान के घाट हैं, पन्ना पुखराजन के कमल खिल रहे हैं तिनपै नीलम के भोंरा गुञ्जार करें हैं। कहूँ पद्मराग मणि (लालमणि) की जालीदार विचित्र चित्रसाखी है जिनपै पन्नान के परदा पड़े हैं, भीतर सुन्दर मणिमय शैया है जिनके पाये पिरोजा के पाटी मूँगान की और जरीन के गद्दा तकिया बिछे हैं तिनपै श्रीप्रिया-प्रियतम विराजे हैं और समस्त रागिनी मूर्ति मति, रमणी, रूप में गान कर रही हैं कोई गुजरी गावें, तो कोई गौरी गावे, कोई आसावरी, टोडी, विलावली गुजरी वराडी गावे हैं, कोई मागधी, कौशिकी, पाली, ललित मंजरी, पट मंजरी, सुभगा, सिंधुरा, भैरवी, गुनकली, रामकली गावें हैं। कोई राग अलापें हैं, मालकोश, देश, सारंग, जोगिया, पूर्वी, हिंडोल, हंस, काफी, वरवा, गौरी, छायानट, श्यामकल्याण, शुद्ध भूपाली, हमीर, दरबारी, कामोद मेघ, मल्हार, जैजैवन्ती, सोरठ, खम्माच, वागेश्वरी, अडाना, पूरिया, धूरिया दीपक, मालश्री, भीम पलासी, दीपक, बसंत, बंगला, सिन्धु, सकराभरण, परज, केदार, मास और विहाग राग गावै है। इन्हीं के मध्य, श्रीहित अलिजू वसन्ती शृङ्गार साजें, सभा मण्डप के बीच,

श्री ललिता, विसाखा, रंगदेवी, सुदेवी, चित्रा, इन्दु आदि यूथेश्वरीन के संग श्रीप्रिया प्रियतमजू के आगे बिराजे हैं !

अति दिव्य, साज समाज सहित, नाना प्रकार के वाद्ययंत्र लिये सब सखी, शोभित हैं। काऊ के हाथ में, मृदंग है तो काऊ के हाथ में मुखचंग, उपंग, वीणा, ढफ भेरी, कठताल, तम्बूरा, सितार, जलतरङ्ग, सारङ्गी, खंजरी, ढोलक, मुरली, भेरी तुरही, शंख, कटोरा, मंजीरा, झाँझ, अलगोजा, नरसिंहा, नगाड़े, नफीरी, सहनाई, घंटा, घंटारी, पखावज, वेला, दुन्दुभी, मेरु, पटाव, चंग, उपंग, डमरू, वेणु, वीन, चिकारा इकतारा, सुरमंदार, सुरवीन, विचित्र वाद्य लिये हैं। ऐसो परम मनोहर, अद्भुत सुख को समय जानि आपने श्रीहित अलिजु तथा ललितादिक संगीत की स्वामिनीन के संग मधुरातिमधुर वसंत राग को गान आरंभ कियो।

पद

मधु रितु वृन्दावन आनन्द न थोर।
राजत नागरी नव कुशल किशोर॥
यूथिका[२] युगल रूप[३] मञ्जरी रसाल[४]।
विथकित[५] अलि[६] मधु माधवी[७] गुलाल[८]॥
चम्पक वकुल[९] कुल विविध सरोज[१०]॥
केतकी मेदिनी मद[११] मुदित मनोज[१२]॥
रोचक रुचिर बहे त्रिविध समीर।
मुकुलित नूत[१३] नदत[१४] पिक - कीर॥

---

१ बहुत, २ चमेली, ३ श्वेत और पीत दो प्रकार की, ४ आम, ५ थके हुए, ६ भंवर, ७ मधुर माधवी लता, ८ पराग, ९ मौलसरी, (मोलछली), १० कमल, ११ मकरन्द, १२ कामदेव, १३ आम, १४ शब्द करते हैं।

पावन पुलिन घन मंजुल निकुञ्ज।
किसलय शेन रचित सुख-पुञ्ज॥
मञ्जीर मुरज डफ मुरली मृदंग।
बाजत उपंग वीणा वर मुख चंग॥
मृगमद[१५] मलयज[१६] कुंकुम अबीर।
वन्दन अगर[१७] सत सुरंगित[१८] चीर॥
गावत सुन्दरि-हरि सरस धमारि।
पुलकित[१९] खग-मृग बहत न वारि॥
जै श्रीहित हरिवंश हंस-हंसिनी समाज।
ऐसे ही करौ मिलि जुग-जुग राज॥२७॥

[श्रीहित चतुराशी जी]

या पद कूँ बसन्त राग में गाती भयी सखी, गीतन में ही अपनी सखिनकूँ बतावै है कि—देखो एक तो परम मनोहर ये बसन्त ऋतु है दूसरे श्रीवृन्दावन की परम कृपा ते लता वृक्ष सब फल फूलन सों लदे भये अति मनोहर दीखैं हैं तो ये वृन्दावन स्वयं ही आनन्दमय है रह्यो है, यामें आनन्द की तो कछू कमी है नहीं यहाँ तो अपार आनन्द है ही जाऊ के ऊपर परम शोभा धाम श्रीराधेश्याम, गुणन सौं अभिराम, चतुर शिरोमणि श्रीप्रिया-प्रियतम दोनों नवल-नागरी और नवल-किशोर विराजे हैं तो अब शोभा को वर्णन कहाँ तक है सकै और कौन कर सकै है। ये तो देखते ही बने है।

या वृन्दावन में वसन्त ऋतु के कारण कैसे-कैसे फूल खिल रहे हैं, जिनसों ये कैसो रमणीय लगे है, देखो, श्वेत, पीत, मल्लिका (चमेली) मिलकें कैसी फूली है, ऐसी लगे है जैसे गौर श्याम दोनों लाल-प्रिया मिलकें विहार कर रहे हैं। सुन्दर रूप मंजरी के संग

१५ कस्तूरी, १६ चन्दन, १७ चोवा, १८ रंग गये, १९ रोमाञ्चित।

रसाल मंजरी (आम की बौर) कैसी फूल रही हैं जैसे मानों; गौर-श्याम दोनों प्रिया प्रियतम; आनन्द में फूले होंय। अलि-भ्रमरी और मधु-भौंरा दोनों फूली-फूली माधुरी लतायें, प्रेम विवश हैकें ऐसे भूले हैं जैसे; प्रेम परवश दोनों लाड़िलीलाल भूलें हैं। और माधुरीलता, गुलाला परस्पर कैसे फूल रहे हैं जैसे लालजी प्रियाजी ही प्रेम में भूल रहे होंय। देखो चम्पा और मालती के झुण्ड कैसे फूल रहे हैं और मोरछली कैसी फूली है ये सब ऐसे लगें मानो प्यारीजू के अङ्ग-अङ्ग की शोभा झलक रही होय। देखो-भाँति-भाँति के कमल, नील, पीत, सित, असित, रक्त, आरक्त, सब प्रियाजी के आनन, अधर, उरोजकर चरण से दीखें हैं। इनमें नील कमल तो श्याम सुन्दर से लगें हैं और लाल कमल प्रियाजी की सी शोभा कूँ याद करावे है, ये सब फूले फूले श्वेत कमल, श्री प्रिया जी के दन्त-हास्य, नेत्रादिक की शोभा कूँ स्मरण करावै है।

देखो सुन्दर केतकी और केवड़ा कैसे फूले हैं, मेदिनी फूल हू कैसौ सुन्दर फूल रह्यो है, ये तो रति तनोज के प्रेम कूँ बढ़ाय रहे हैं (वृन्दावन के रति, मनोज लाल प्रिया हैं) इनको देख कर प्रसन्न रति मनोज को प्रेम बढ़्यौ है। ऐसे ही युग-युग राज करै, नित-नूतन, विलास करै और हम सब सखिन के सुख कूँ बढ़ावें। श्री प्रियाप्रीतम कूँ सुखी और आनन्दित देखनों ही तौ हमारौ सुख है। हमारे जीवन कौ उद्देश्य केवल प्रिया-प्रियतम कूँ सुखी देखनो ही है।

श्रीहित सजनी जू सखीन सों कहें कि श्री प्रिया जी तो 'पूर्णानुराग रस सागर की सार स्वरूपा, मूर्तिमती प्रेम की पराकाष्ठा हैं। याही ते लाल नित्य ही प्यारी की रूप माधुरी, लीला माधुरी, वचन-माधुरी, गान माधुरी, नृत्य माधुरी, परिरम्भन, चुम्बन, अधरामृता-स्वादनादि अनन्तानन्त माधुरी की, नित्य ही, सदा ही, प्रतिक्षण, नव-नवायमान आस्वादन में अवगाहन करै है और 'मिले रहै मानौ कबहु

मिलेना' और प्रियाजी हैं निरन्तर नवनवायमान आनन्दलालजी कूँ प्रदान करै हैं। प्रियाजी तो प्रतिक्षण, चमत्कारी, नवनूतन, प्रेमानन्द की, रसानन्द की धारा ही हैं,याही ते पूर्णानुराग रस सागर सार मूर्ति हैं। अनुराग को तो लक्षण ही ये है कि :—

सदानुभूतमपि यः प्रियं कुर्यान्नवं नवम्।
रागोऽभवन्नव नवः सोऽनुराग इतीर्यते॥

(उज्वल नीलमणि)

अर्थात्—जो अनुराग (प्रेम) सदा सर्वदा और नित्य अनुभव में आतो भयो हू प्रतिक्षण विलक्षण और नवीन प्रतीत होय, वाकूं अनुराग कहै हैं। जा वस्तु को निरंतर कछू समय अनुभव कर्यो जाय, वामें अरुचि उत्पन्न है जाय, नित्य नित्य रबड़ी खाते खाते रबड़ी सों अरुचि है जाय, जारूपकूँ नित्य निरन्तर देखें वासें तृप्ति है जाय, और आगे प्रत्यभिज्ञान अर्थात् घृणा तक है जाय, 'सोऽयं रूपः योनुभूतः पुरा मे' तो या दोष की निवृति करवे कूँ श्री प्रियाजी को अनुराग, प्रतिक्षण नवीन बने है जासे लालजी की तृप्ति ही न होय सके। और लालजी 'मिले रहै मानो कबहु मिलेना'—आदि आदि अनंत विहार करे पै लाल प्रियामें भई न चिन्हारी'—ये है अनुराग।

लालजी नित्य निरन्तर प्रियाजी के मुखारविन्द को पान निर्निमेष दृष्टि सों करते रहैं तो हू प्रतिक्षण नवनवाय मान रूप (क्षणभर पहले जो देख्यो, दूसरी वासेहूँ विलक्षण सुन्दर आदि नवीन) प्यारे लालकूँ तृप्त न होन देय, लालजी देखते देखते न अघावें और प्रतिक्षण विलक्षण रसानुभव करते रहैं।

याही अनुराग के वश, लालजी प्रियाजी के आधीन रहै और अपनी प्रभुताकूँ भूल के मोहित है जाँय। इतनों ही नहीं जाकाऊ कृपापात्र भक्त के हृदय में प्रिया प्रियतम को अनुराग आय जाय, वाके

है आधीन दोनों लाड़िली लाल रहै। ये है अनुराग की विलक्षणता।

दोहा–नागर दोऊ अनुराग वश, नवल नेह रंग रात।
अनुरागे विनकों भजें और न दूजी बात ॥६२॥

(ध्रुव.)

वृन्दावन को रस तो प्रियाप्रियतम को अनुराग ही है। अनुराग मय युगल विहार ही तो रसिक कहावै है और इन्हीं रसिकन की पद रज मांथे पै धारण करिवे की अभिलाषा, रसिक शिरोमणि श्रीसेवक जी आदि ध्रुवदास जी तक रखें।

दोहा–अनुरागे जिनको भजन, युगल किशोर विहार।

श्रीलडेंतीलाल के अनुराग मय नित्य विहार रस में आसक्त, भक्त जगत में अति दुर्लभ हैं, थोरे ही हैं। जिनके हृदय मन्दिर में अहर्निश नित्य विहार रस छलकतो रहे, उन भक्तन को तो दर्शन हू दुर्लभ है, सच्चे रसिक तो वे ही हैं, उनके हृदय में प्रेमाप्लावित अनुराग, रस रंजित नित्य विहार के अतिरिक्त दूसरी वस्तु आवे ही नहीं, ऐसे ही रसिक महानुभावन की चरणरज माथे पै धारण करवे ते हृदय में प्रेमचन्द्र प्रकाश होय है। ऐसे रसिकन की चरण-रजकूँ अपने मस्तक को मुकुट बनायवेकूँ महारसिक ध्रुवदासजी लिखें हैं—

दोहा–अनुरागे जिनके भजन, ते तौ पैयत थोर।

(ध्रुब—४२ लीला) १७६

दोहा–अनुरागे जिनके भजन, दूजी बात न और।

॥७२॥ (आनंद लता)

भगवत्प्रेम अथवा अनुराग, उन्हीं प्रेमिनकूँ प्राप्त है सकें जिनने अपने मन और इन्द्रियन को सुख त्याग दियो होय।

दोहा—खान, पान, सुख, चाहत अपने।

प्रेमरस को पान किये बिना, भगवान में आसक्ति होनों संभव नाय है।

प्रेम रसासव चाख्यो जबही, औरै रंग चढ़ै ध्रुव तब ही।

जाकी लगन, प्रेम से भगवान में लग जाय, वाकी गति नीर के बिना मीन की जैसी है जाय। जैसे बिना नीर के मीन नहीं रह सके तैसे ही भक्त भगवान के बिना जी नाय सके।

शुद्ध प्रेम को तो स्वरूप ही ये है कि प्रेमी प्रेमास्पद से रंचमात्र हूँ कछु सुख, स्वार्थ न राखे, सपने हूँ में स्वार्थ सम्बन्ध न राखे।

नारद भक्तिसूत्र में लिख्यो है:—सा तु न कामय माना, निरोध रूपत्वात् प्रेमी ते असह्य दुःख हूँ मिले पर प्रेम की डोर न टूटे।

शुद्ध प्रेम में कछु गुण, रूप, रंग, अवस्था आदिक स्वार्थ नहीं रहें हैं। उदाहरण के रूप में मछली आदि मण्डूक (मेंढ़क) बताए हैं। दोनों ही जल से प्रेम करें हैं किन्तु सच्चो प्रेम तो मछली को ही मानों है जो जलते बिछुरते ही मर जाय है, प्राण छोड़ देय है और मेंढ़क जो जल ते बाहर हू टर्रात रहैं, मौज में गीत गाते रहैं। जो एसो प्रेम को सिद्धान्त जाने है बोही प्रेमरस को अधिकारी मानो गयो है। जो प्रेम रसकूँ समझें नहीं वातें तो बात करनों हीं मूर्खता है।

जिन नहि समुझो प्रेम रस तिनसों कौन अलाप।

(ध्रुव)

प्रेम को स्वरूप संसार के लोग तो जानै कहा, ब्रह्मादिक, ईश कोटि के देवताहू पूरी तरह नाय जाने।

'प्रीति की रीति को पैंडो ही न्यारो, कै जाने वृषभानु नन्दिनी कै वह कान्हर कारो' प्रेम को स्वरूप लोक वेदातीत है:—

'अनिर्वचनीयं प्रेम स्वरूपं, सर्वथा लोक वेदातीतं च'

दोहा–प्रीति की रीति सबनि ते न्यारी,
को समुझे विनु लाल विहारी ।

श्रीलालजी श्रौर प्रियाजी के अनुराग में इतनों ही अन्तर है कि लालजी तो अनुराग रस सागर सार मूर्ति हैं और प्रियाजी लालजी ते बढ़-चढ़कें पूर्णानुराग रस सागर सार मूर्ति हैं ! ध्रुवदासजी कहते हैं कि—

प्रिया प्रेम के सिन्धु में, पैरत नवल किशोर ।

लालजी अनुराग रससागर मूर्ति हैं, किन्तु प्रिया जी पूर्णानुराग (असीम प्रेम निश्शेष प्रेम) रस सागर (महाप्रेमार्णव) के सार की मूर्ति हैं । श्रीलालजी प्रियाजी के अथाह श्रौर अगाध प्रेम समुद्र में तैरे गोता लगावें, पर पार और थाह नहीं पाते, थकके हारके बैठ जाय हैं । अनंत को पार ही नाय है, तो पार पावें कहाँते ?

श्रीप्रियाजी के अनुराग की एक झलक है कि :—

दोहा—छिन छिन नवल विहार में

चौपाई–करि सिंगार जब दोऊ निवरे

एक दिन सन्ध्या समय श्री प्रिया-प्रीतमजू ललितादिक नित्य परिकरकूँ संग लेकें मदन वाटिका में वन विहार करिवेकूँ पधारे ! वाटिका में सखीन ने सुन्दर फूलन की गेंद बनाई, जासों प्रिया-प्रियतम खेलिवे लगे, 'उत्क्षेपण-निचयन-प्राप्त संगोपन' नामको तीन प्रकार को खेल भयो ! लालजी के पक्ष में चन्द्रावलीजी, मंजु भाषिणीजी और अनेक सखी हीं और श्रीप्रियाजी के पक्ष में, ललिताजी, विशाखाजी आदिक सखी हीं । पहले बड़ो ही मनोहर उत्प्रेक्षण नाम को खेल भयो या खेल में लालजी हारि गये और प्रियाजी की विजय भई ! दूसरी

बेर फिर प्राप्त संगोपन नामको गेंदको खेल भयो, किन्तु श्यामसुन्दर दूसरी बेरहू हारे और प्रियाजी जीतीं ! दोनों बेर लालजी हारे तो कछु उदासी भई, तो चन्द्रावलिजी कूँ दया आई और संकेत में लाल जीसूं कही कि प्यारे गेंद के खेल में तो ललिताजी आपकूं जीतन न देंगी, याते आप अब प्यारीजी ते नृत्य कला में होड़ वदो, नृत्य कला में प्यारी आपते जा समय हार जायेंगी, कारण गेंद के खेल में उन्हें बड़ो परिश्रम भयो है, नृत्य में भली प्रकार ते कला प्रदर्शन न कर सकेंगी तो आपकी जीत होयगी और प्यारीजी की निश्चय हार होयगी। श्यामसुन्दर सब समझ गये और बड़ी चतुराई ते प्रियाजीसों बोले कि–प्यारीजू गेंद के खेल की समाप्ति नृत्य के पीछे मानी जाय है, ताते अब आप नृत्य और करो, यदि आप नृत्य में जीत जाओगी तो मैं अपनी हार स्वीकार करूंगो परन्तु मैं कहूँ तैसे आपकूं नाचनो पड़ेगो। ललिताजी बोलीं–श्यामसुन्दर हमारी प्यारी तो भोरी हैं आप कहोगे सोई मान लेंगी परन्तु नृत्यकला में प्यारी जीत जायेंगी तो आपकूं वंशी हमारी स्वामिनीजीकूं भेंट करनी पड़ेगी। श्यामसुन्दर बोले–जीत जायेंगी तो वंशी जरूर भेंट करूंगो। श्यामसुन्दर बोले–आपके नृत्य में आभूषणन के शब्द न होंय, आपके वस्त्र न उरझें, शीघ्र गति के नृत्य में मजीरादिक को भी शब्द न हो—

(कला चातुरी का वर्णन बंगाल के रसिक प्रेमी भक्तों ने अपनी बंगदेशीय (बंगला) भाषा में सुन्दर रूप से किया है और सुललित गान के द्वारा किया है। इस वासंतिक रास गायन का वर्णन संगीत के द्वारा बंग देश के भक्तजन, कलापूर्ण ढंग से घर घर में आज भी गा गाकर भक्तिरस में अवगाहन करके आनन्द सागर में गोता लगाकर भक्तिरस में अवगाहन करते हैं। इस गायन को हिन्दी भाषा में अनुवादित कर यहाँ उद्धृत किया है। (भक्तजन पढ़कर प्रेमरस में निमग्न हों।)

चांदबदनी। नाच त देखि

ना ह, बे भूषणे ध्वनि, ना नड़िबे चीर,
द्रुत गति चरणे ना बाजिबे मंजीर,
विषम संकट ताले बाजाइब वाँशो,
धनु अङ्क मांझे नाच, बूझिब प्रेयसी ।
हारिले, तोमार लब वेशर काँचुली,
जिनिले, तोमाय दब मोहन मुरली ।
जेमन बलेन श्यामनागर तेमन नाचे राइ,
मुरली लुकान श्याम चारदिके चाइ ।
सबाइ बले राइर जय, नागर हारिले,
"दुखिनी" कहिछे गोपीर मंडली हासाले ॥

हे चन्द्रबदनी ! नाचो तो देखें। तुम्हारे नृत्य में न तो भूषण की ध्वनि होनी चाहिये और न चीर मुड़ना चाहिये तथा चरणों की द्रुत गति में भी मंजीर नहीं बजना चाहिये। मैं विकट सङ्कट ताल में वंशी बजाऊँगा, धनुष आकार के भीतर तुमको नाचना होगा, तब हे प्रेयसी मैं तुमको समझूँगा। यदि तुम हार गईं तो तुम्हारे वेशर कांचुली ले लूंगा, और यदि तुम जीत गईं तो तुमको मोहन मुरली दे दूंगा। जिस प्रकार श्याम नागर ने बताया वैसे ही राइ (श्रीराधाजी) ने नृत्य किया। उस पर मुरली छिपाए हुए श्याम चारों ओर देखने लगे। सब कहने लगीं 'राइ की जय, नागर हार गये।' 'दुखिनी' (गीत की रचियता) कहती है कि गोपियों की मण्डली हँसने लगी।

श्याम तोमाय नाचते ह'बे,
ना नड़िबे गण्ड मुण्ड, नूपुरे कड़ाइ ;
ना नड़िबे बनमाला, बूझिब बाड़ाइ:
ना नड़िबे क्षुद्र घंटि, श्रवनेर कुण्डल,
ना नड़िबे नाशार मोती, नयनेर पल,

ललिता बाजाय वीणा, विशाखा मृदङ्ग,
सुचित्रा बाजाय सप्तस्वरा, राइ देखे रङ्ग'
उद्‌भट ताले यदि हार बनमाली
चूड़ा वांशी केड़े ल' ब दिब कर ताली
यदि जिन राइके दिब आभरा ह' ब दासी
नइले कारागारे राखिब दुखिनी शुनि हाँसि ।

हे श्याम ! अब तुमको नाचना होगा। उस नृत्य में न तो गण्ड-मुण्ड हिल पायेंगे और न नूपुर और कड़े, तथा न बनमाला हिल पायेगी और न क्षुद्र घंटी और श्रवण के कुण्डल हिल पायेंगे एवं न नासिका का मोती हिल पायगा और न नयनों के पलक-तब तुम्हारी बढ़ाई समझेंगे। ललिता वीणा बजायेगी, विशाला मृदङ्ग बजायेगी और सुचित्रा सप्त स्वरा बजायेगी, ये सब उद्‌भट ताल में बजायेंगी और राइ रंग देखेगी। हे बनमाली ! यदि तुम हार गये तो तुम्हारा चूड़ा और वंशी छीन लेंगे और हाथ से ताली बजायेंगे। यदि तुम जीत गये तो राई तुम्हें समर्पण कर देंगे और हम सब तुम्हारी दासी बन जायेंगी, नहीं तो तुमको कारागार में रखेंगे। यह उक्ति सुनकर "दुखिनी" (गीत की रचियता) हँसने लगी।

गोपी— तुम नाचौ नँदलाल, नचामें बृजबाल ।
तुम याही विधि नाचौ, ज्यौं बजामें हम ताल ॥

दोहा—पग नूपुर बाजें नहीं, यहि विधि नाचौ श्याम ।
क्षुद्र घंटिका ना हलें, तब मानें बृज बाम ॥
तुम याही०……

हले न मुक्ता नासिका, कुण्डल श्रवनन दोय ।
यहि विधि नाचौ सामरे, तो विजय आपकी होय ॥
तुम याही०……

ललिताजी वीणा गहें, चित्रा चतुर मृदङ्ग ।
गहें तमूरा विशाखा, सुदेवि जी मुहचङ्ग ॥
तुङ्गविद्या कपिनाश लें, इन्दु लेंय रवाव ।
रंगदेवी मन्दिरा गहें, यही विधि बने बनाव ॥
तुम याही०......

श्रीकृष्ण— तुम यही विध नाचो, मैं नचाऊँ बृजबाल ।

दोहा—कर कंकण बाजें नहीं, बजें न भुजन की जङ्ग ।
शब्द कीयो कटि किंकणी, तौ कला होयगी भंग ॥
तुम याही०......

चरनन में बिछुआन की, जो कहू भई झनकार ।
तौ समझो नव नागरी, भई सबन की हार ॥
तुम याही०......

नृत्य करत में हे सखी, हले न अंचल छोर ।
कच, कुच, कंचुकी, नाहले, हलै न नीवी डोर ॥
तुम याही०......

सखियों के वचन सुनकर श्यामसुन्दर नृत्य करने लगे । श्यामसुन्दर नृत्य कर रहे और सखियां बादित्र बजाने लगीं और प्रियाजी ताल दे रही हैं ।

श्यामसुन्दर का नृत्य ताल स्वर के अनुसार ठीक रीति से नहीं होता देख सखियों ने श्यामसुन्दर को नृत्य से निषेध करती हुई कहने लगी हे श्यामसुन्दर भली प्रकार नृत्य करो तुम्हारा नृत्य ताल से विपरीत जा रहा है स्वर के साथ मिल नहीं रहा है ।

हे प्यारे यह माखन को चुरा के जल्दी से मुँह में नहीं रखना है यह नृत्य है नृत्य ।

अवशिष्ट

पृष्ठ १५३ के विषय को यहाँ पढ़ें

तब श्री राधा प्यारी जी ने अति विलक्षण गति से सुधंग नृत्य प्रारम्भ कियो।

मणियों के समान देदीप्यमान कमलों की पंखड़ियाँ बिछी हुई वृन्दावन की नृत्य-स्थली पर कमलवत् चरणारविंद नूपुर आदि आभूषणों की छमछम मधुर ध्वनि जहाँ हो रही है। ललिता वीणा, चित्रा मृदङ्ग, विशाखा तमूरा, सुदेवी मुहचङ्ग, तुङ्गविद्या कपिनाश, इन्दुलेखा रबाब, रङ्गदेवी मन्दिरा ललित रीति से बजा रही हैं। श्रीश्यामसुन्दर की श्रीश्यामाप्यारी आज थई थई करती हुई अद्भुत अपूर्व ढङ्ग से नाच रही हैं। प्यारीजी के नृत्यमें कर के कंकण, भुजन के जङ्ग, कटि की किंकिणी, चरणन के बिछुवा, अञ्चल आदि किसी आभूषण का शब्द नहीं सुनाई पड़ रहा और न वसनाञ्चल ही हिलता दिखाई पड़ता, और नृत्य हो रहा है। इस नृत्य को देखकर प्यारे श्यामसुन्दर चित्र लिखित से हो गये। सखियों के जय-जयकार पूर्वक पुष्प वर्षा का नृत्य समाप्त हुआ।

ललिताजी बोलीं—हे नन्दलाल अब आप नाचो, जैसी गति से हमारी स्वामिनी ने नृत्य कियो, उसी तरह आप भी अपनी कला दिखावो तब हम जानेंगी। श्यामसुन्दर ने नृत्य को आरम्भ किया सब ही सखीगण अपने - अपने वाद्यों को बजाने लगीं प्यारीजी ने आलाप आरम्भ कियो। श्यामसुन्दर के नृत्य में नूपुर बज रहे कङ्कण बज रहे किंकिणी बज रही और दुपट्टा हिलरयो तथा नृत्य को मेल वाजों और आलाप से नहीं जुड़ पायो, श्यामसुन्दर ने अपनी पराजय होती देखकर वंशी को बगल में दबाकर भागनो चायो किन्तु सखियों ने उनको पकड़ लिया। सब ही सखी ताली पीट - पीट कर कहने लगीं

श्यामसुन्दर हार गये। हँसती हुई प्यारे की वंशी छीन कर प्यारीजी के कर-कमल में देदी।

वंशी छिन जाने पर श्यामसुन्दर उदास हो गये। प्यारे को उदास देखकर प्यारीजी ने ललिता सखी की ओर संकेत कियो कि ललिता प्यारे संकुचित होकर कुछ अनमना हो गये हैं। तुम शीघ्र अद्भुत नृत्य शाला को निर्माण करो. मैं प्यारे को प्रसन्न करूँगी यह आज्ञा होते ही ललिताजी ने वृन्दा सखी को बुलाकर सुन्दर नृत्य शाला को रचने की आज्ञा दी वृन्दा सखी सुन्दर नृत्य शाला को निर्माणकर ललिताजी से विनय पूर्वक सूचना दीकि हे ललिताजा नृत्य शाला तैयार है श्रीप्रिया मंद मुसकान युक्त प्य.रे के पास पधारी और प्यारे के कर-कमल में वंशी को देती हुई बोली प्यारे यह आपकी वंशी लोजिये मैं तो आपकी सदा की दासी हूँ। पधारो सखियों ने एक अद्भुत विहार स्थल को सजायो है वहाँ पधारो तब दोनों प्यारे गल-वैयाँ दीये सखि समाज सहित चले।

सखि समाज चहुँ ओर सेवा सोंज छत्र, चमर मोरछल लिये गावत बजावत सङ्ग चल रहा है। उनकी छबि ऐसी है मानो अनुराग के छत्र छाय रहे हैं। निकट ही सुन्दर सरसी है उसमें अरुण नील सित असित कमल फूल रहे हैं इस सरसी के तट पर नाना रङ्ग के सुगन्धी तेल के फुब्बारे चल रहे हैं मर्कत मणि के सदृश देदीप्यमान मनोहर धूब विछी है विशाल रङ्ग स्थली में नृत्य शाला है। वहाँ पर दोऊ प्यारे आकर खड़े हुए हैं सब सखीजन मण्डल जोड़कर चारों तरफ खड़ी हो गईं उनकी शोभा ऐसी है मानो चितेरे ने चित्र सी लिखी हो। उसके पास ही मानसरोवर है उसके तट पर विविध वृक्ष विराज रहे हैं उनमें मनोहर सुन्दर सुगन्धी पुष्प खिल रहे हैं त्रिविध पवन बह रहा है। सारस, हंस, चकोर, मयूर अपनी पत्नियों के सङ्ग नाच रहे हैं. इन पक्षियों को प्रसन्नतापूर्वक नृत्य करते देखकर

किशोरीजी मनमें प्रसन्न हुई. उस समय की प्रियाजी की छटा को देखकर नव-नव प्रेम में डूब रहीं सखीगण परस्पर बतराने लगीं कि आज की छटा तो निराली है। प्यारी की अद्भुत छटा को देखकर प्यारे के मनमें एक बात उत्पन्न हुई किन्तु प्यारीजी से अपनी बात कहने में संकुचित हो रहे।

प्यारे विह्वल होकर प्यारीजी के चरण में नूपुर को संभालने लगे और उठ कर बीणा बजाने लगे किसी भी तरह प्यारी प्रसन्न हो जावें यह चेष्टा करने लगे बार - बार चरणों का स्पर्श करते हुए पायल को कभी बिछिया को छूवें। प्रियाजी अपने प्रीतम के भावों को समझ गईं और प्यारे के मनोरथ को पूर्ण करने के लिये आपने प्यारे के गलों में अपनो हस्त कमल रख कर नृत्य कला विस्तारी प्यारे प्रीतम मैं आपको नृत्य दिखाऊँ। तिरप बाँधकर श्रीराधा प्यारी मान-सरोवर के कमलों पर नृत्य करने लगी, श्यामसुन्दर इस अद्भुत नृत्य कला को देखकर विस्मित हो रहे। सखियाँ इस नृत्य विलास को देखकर बिचारने लगीं परस्पर कहने लगीं सखी यह नृत्य तो परम अपूर्व अद्भुत है मानो नृत्य ही मूर्तिमान होकर लज्जित हो गयो है कहकर बलैयाँ लैन लगे। सखियाँ हुड़क, रबाव, गजक, किन्नर, मुरज डफ भेरी मृदंग बजा रहीं। नवीन-नवीन गति तान लै रही हैं प्यारीजी रङ्ग से नाच रही शास्त्रों में गायकों के पास जो-जो भेद नृत्यके हैं उनमें से एक को भी काम में नहीं लिया नया-नया नृत्य भेद आप स्वयं ने प्रकट किया ऐसी नृत्य गति तो न कभी देखी न सुनी नवीन ही आपने प्रकट किया है। कमल के पुष्प की जिस पङ्खड़ी पर प्रिया ने नृत्य किया वह पंखड़ी वैसी की वैसी रह गई न मुड़ी न मरगजी हुई अछूत पंखड़ी ही रह पाती है आपके नृत्य की लाघवता तो ऐसी है मानो किसी को छुआ ही नहीं है ऐसी चतुरता से नृत्य कर रही हैं कि पुष्प कली हिलती नहीं है। मुख से ज्यों-ज्यों आप थई-थई बोलें त्यों-त्यों सखियों के नेत्र पानी होकर बह चले।

※ चौपाई ※

एक समै नागरि नव नागर। प्रेम रूप गुन के दोऊ सागर ।।
परम प्रवीन सखी सङ्ग रहहीं। छिनछिन प्रति नव-नव सुख लहहीं ।।
मण्डल जोरि चहूँ दिसि ठाढ़ी। प्रेम चितेरे चित्रसी काढ़ी ।।
राजत मान सरोवर तीरा। आवत परस सुगन्ध समीरा ।।
सारस हंस चकोर चकोरी। निर्त्तत फिरत वरहि सङ्ग मोरी ।।
देखि मुदित भई नवलकिशोरी। आनन्द में झलकत छबि गोरी ।।
उपजी बात एक मन माहीं। सकुचत हैं पिय कहि न सकाहीं ।।
कबहूँ नूपुर धाइ बनावैं। याही मिसि चरननि छू आवैं ।।
कबहूं सुन्दर बीन बजावै। नवल प्रिया मन रुचि उपजावै ।।
निरखत मुख कहि सकत न प्यारौ। हेत लालकौ प्रिया बिचारौ ।।
परम प्रवीन मुकुट मन प्यारी। निर्त कला गुन की बिस्तारी ।।
तिरप बाँधि कमलन पर चली। निरखत थकित रही ह्वै अली ।।
अद्‌भुत कमल मध्य सरमाहीं। ताके सिर पर निर्त्त कराहीं ।।

※ दोहा ※

निर्त्त बिलासहि देखि सखि, रही सोच बिस्माइ।
निर्त्त जु मूरतिवत रहो, ठाढ़ी लेत बलाइ ।।

※ चौपाई ※

हुड़क रवाव गजक बहु बाजै। सखियनि अति आनंद सौं साजै ।।
किन्नर मुरज मृदंग बजावै। गति में गति नव नव उपजावै ।।
अति सुकुँवारि निर्त्त रंग भीनी। भाइ भेद गति लेत नवीनी।
जो गति सुनी न देखी कबही। नौ तन प्रगट करीते अबहीं ।।
अलग लाग हुरमई जु लीनी। प्रगट कला निज गुन की कीनी ।।
परत आइ मान जेहि दल पर। वैसेई रहत चरन के तरहर ।।
लाघवता सौं पग रहे ऐसे। परस न होत दूसरे जैसे ।।

सुलप अनूप चारु चल गींवाँ। सहज सुधंग बिलास की सींवाँ।
थेई थेई कहत मोहनी वानी। सखियनि नैंन चले ह्वै पानी।
मुसिकनि मधुर चित्त कौ हरही। चितवनि पासि दूसरी परही।

※ दोहा ※

निर्त्त सुधंग कला जिती, कही प्रगट परमाँन।
छुई न तिनमें एकही, उपजी आनही आँन।।

※ चौपाई ※

पुनि केशरि पर लसत रंगीली। झलकत वेशर परम छबीली।
कछुक अलाप मधुर धुनि कीनी। मति बुधि सबही की हरि लीनी।
कबहुँ सुनी न राग धुनि ऐसी। कीनी अबहि कुँवरि सखि जैसी।
राग रागनि जूथ लजाये। खोजि रहे ते सुर नहिं पाये।
भृङ्गी मृगी सुनत मृदु वानी। थक्यो पवन अरु चलत न पानी।
श्रवत द्रुमनि तें रस की धारा। आनन्द प्रेम कियौ बिस्तारा।
राग पुंज बरषत बरषासी। हित ध्रुव गुन सीवाँ सुखरासी।

※ दोहा ※

सुनत राग अनुराग धुनि, मोहे नागर लाल।
सक्यौ न धीरज धरि सखी, मरम लग्यौ सर वाल।।

※ कुण्डलिया ※

लाल बिवस सहचरि सबै, मोरी मृगी बिहङ्ग।
गावत रस मै नागरी, नव नव तान तरङ्ग।।
नव नव तान तरङ्ग सप्त सुर सौम न ढरही।
ऐसी को सखी आहि सुनत जो धीरज धरही।।
नव नव गुन की सींव सब अति प्रवीन बरवाल।
नागर कुलमनि तैसेई श्रोता सुन्दर लाल।।

❋ चौपाई ❋

अति विह्वल ह्वै गये विहारी। भूषन पट सुधि देह बिसारी।
रही सँभारि सखी हितकारी। नैंननि होत प्रेम बरषारी।
प्रिया प्रिया रव मुख ते निसरै। नाम रूप गुन कबहूँ न बिसरै।
यह गति देखि लाल की प्यारी। नेह रङ्ग मगी अति सुकुँवारी।
महा प्रेम समुझत उर घूँमी। तेहि छिन आइ लाल पर झूमी।
देखत बिवस भुजनि भरि लीना। चितै बदन नैंना भरि दीना।
महा प्रेम सौं उर लपटानी। तिन की प्रीति न जात बखानी।
भरि अनुराग लाल उर लायौ। अधर सुधा जीवन रस प्यायौ।
खुलि गये नैंन प्राँन घट आये। प्रिया प्रेम झकझोर जगाये।
ललित लाल डोलत सङ्ग लागे। प्रिया प्रेम नख सिख लौ पागे।

❋ दोहा ❋

नख सिख लौ सखि पगि रहे, प्रीतम प्रेम सुरङ्ग।
तेहि भाँति पुनि लाड़िली, रङ्गी लाल के रङ्ग ॥

❋ कुण्डलिया ❋

नागरि नित्त विलास जस, जे अवगाहत नित्त।
हित ध्रुव अद्भुत प्रेम सौं, सरस रहै दिन चित्त ॥
सरस रहै दिन चित्त और कछु सुन्यौ न भावै।
बिन बिहार रस प्रेम और उर में नहिं आवै ॥
अद्भुत सुख की सींव सकल अंगनि गुन आगर।
प्रीतम मन हरि लेत सहज, रस में नव नागरि ॥

❋ दोहा ❋

युगल प्रेम रस सार सर, रसिक हंस अवगाहि।
जगत काक बक विमुख जे, पलकहु पहुँचत नाहिं ॥

ध्रुव अली सहचरी अपने यूथ की सखियों से कहने लगी कि हे सखियो! यह प्रिया प्रीतम का प्रेम रस रूपी सरोवर है यह सरोवर ही मानो मानसरोवर है इसमें प्रेमरूपी मुक्ता भरे पड़े हैं इन मुक्ताओं को चुगने का सौभाग्य प्रिया प्रीतम की लीला सहकारिणी जो ललितादि सखियाँ हैं उन्हीं के भाग्य में है और इन श्रीललितादि सखियों के शरणापन्न रसिक वृन्दावन निकुञ्ज रस के निष्काम तत् सुख सुखी रसिक भक्त हैं जिनको माहात्म्य और वैभव की लीला रुचती ही नहीं केवल प्रिया प्रीतम के सुख ही को सर्वस्व धन समझते हैं उनको भी यह प्रेम रस रूपी मुक्ता मिलते हैं।

* चौपाई *

वैभवता में सब अरुझाने। नित्यविहारी नहिं पहिचाने।
यह रस समुझै जौई जाने। और भजन विधि मन नहि आने।
प्रेम सुभाव जाहि उर आवै। ताहि न बात दूसरो भावै।
निसि दिन ताहि न कछु सुहाई। प्रीतम के रस रहैं समाई।
जाकौ है जासौं मन मान्यौ। सो है ताके हाथ बिकान्यौ।
अरु ताके अङ्ग सङ्ग की बातैं। प्यारी लगत सबै तेहि नातैं।
रुचै सोई जो ताकौ भावै। ऐसी नेह की रीति कहावै।
जो रस लाल लड़ैती माँही। ऐसो प्रेम और कहूँ नाही।

* दोहा *

बृज देविन के प्रेम की, बँधी धुजा अति दूरि।
ब्रह्मादिक बांछित रहैं, तिनके पद की धूरि।।

* चौपाई *

तिनहूँ कौ मन तहाँ न परसै। ललितादिक जेहि ठां छबिदरसै।
नित्य बिहार अखण्डित धारा। एक वैस रस मधुर बिहारा।
नित्य किशोर रूप निधि सीवाँ। बिलसत सहज मेलि भुज ग्रीवाँ।
तिन बिच अंतर पल कौ नाहीं। तऊ तृषित प्रीतम मन माहीं।

अद्भुत सहज रङ्ग सुखदाई। तहाँ प्रेम की एक दुहाई।
पिय गज मत्त न अंकुस के बस। परम स्वछंद फिरत अपने रस।
देखतहीं तिनकी परछाँहीं। मदन कोटि ब्याकुल ह्वै जाँहीं।
ते मोहन बस कीने गोरी। राखे बाँधि प्रेम की डोरी।
छुटत न क्यौंहूँ ऐसे अटके। प्रान हारि चरननि तर लटके।
प्रीति की रीति लालही जाँनें। तजि प्रभुता बिन मोल बिकाँनें।
तैसीय रसिक प्रवीन किशोरी। रसनिधि नेह के सिंधु झकोरी।
पिय कौ राखत नैंननि आगे। हुलसि हुलसि प्रीतम उर लागे।
अवधि प्रेम की सहजहि प्यारे। परवस प्रेम दुहुंनि मन हारे।
एक रङ्ग रुचिहै सब काला। उज्वल प्रेम लाड़िली लाला।

* दोहा *

तन मन रूप सुभाव मिलि, ह्वै रहे एकै प्राँन।
जीवनि मुसिकनि चितैवो, अधर रसासव पाँन॥

* चौपाई *

वृन्दाबन घन राजत कुंजै। बिहरत तहाँ रसिक रस पुंजै।
एक प्रान विवि देह है दोऊ। तिन समान प्रेमी नहिं कोऊ।
सब पर अधिक जान यह प्रेमा। ताके बस भये तजि सब नेमा।
या सुख पर नाहिन सुख कोई। जानै सो जो भेदी होई।

* दोहा *

अद्भुत नित्य अभूत रस, लाल लाड़िली प्रेम।
छिन छिन नख मनि चंद्रकनि, सेवत हैं सुख नेम॥

* चौपाई *

प्रेम मई रस मैंन विनोदा। नव नव उपजत है दुहुँ कोदा।
तेहि बिहार रस मगन बिहारी। जानत नहिं कित द्योस निसारी॥
जो कोऊ कोटिक भाँति बखाँनें। बिन स्वादी या रसहि न जाँनैं।
रहत है दिनहि प्रेम सरसाई। तहाँ मान की नाहि समाई।

—❀❀❀—

फिर श्यामसुन्दर संभलकर नाचने लगे किन्तु फिर भी नृत्य ताल के साथ नहीं मिला, तब सखीगण बोलीं हे प्यारे तुमको नाचना नहीं आता है नृत्य की कला गुरू बिना नहीं आवेगी हमारी श्री राधा जी से नृत्य की शिक्षा लेओ यह नृत्य है नृत्य। गोपियों के चीर हरण करना नहीं है जो कि चीर चुराकर जल्दी से कदम पर जा बैठे, लाला यह नृत्य है नृत्य।

तब श्यामसुन्दर ने कहा कि हे प्यारीजी आप नाचकर बतावो मैं देखूँ आप कैसे नाचते हैं।

पूर्णानुराग रस सागर सार मूर्तिः

चन्द्र जो जगत में प्रकाशित होता है वह पूर्णिमा के दिन अर्थात महीने में एक ही दिन पूर्ण रूप से विद्यमान रहता है। बारह पूर्णिमाओं में अर्थात् ३६० दिनों में एक पूर्णिमा अर्थात शरद पूर्णिमा की एक ही रात्री के लिये षोड़ष कला पूर्ण सम्पूर्ण रस युक्त पूर्ण कला (आल्हाद-जनक समस्त किरणों) सहित एक वार ही प्रकाशित हो भूलोक स्थित औषधियों को रस प्रदान कर अनुरंजित करता है। किंतु परात्पर पर-ब्रह्म सच्चिदानंद श्री कृष्ण की जीवन मूली परम सुंदरी परदेवता प्रेम-मूर्ति श्री राधा प्यारी अनादि निरवधि काल से अनवरत नित्य ही पूर्ण अनुराग रस सागर सार मूर्ति सखि मंडल विराजित परि पूर्ण रूप से प्रकाशित हो जग मगा रही है उस पूर्ण अनुराग का स्वरूप वाणी से वर्णनातीत ही है ऐसा अनुराग है तथापि शाखा चन्द्रन्याय की भाँति रसिक महानुभावों ने प्रेमी जिज्ञासुओं के प्रति कृपा पूर्वक यत्किंचित् वर्णन करने का प्रयास किया है उसका दिक् प्रदर्शनार्थ अनुराग (प्रेम मय लाड़िली लाल का स्वरूप वर्णन जो महापुरुषों से वर्णित हैं यहाँ प्रकट कर हृदय को आनन्द समुद्र में गोता लगाने का प्रयास किया गया है।

श्रीलाड़िली (प्रियाप्रीतम) राधाकृष्ण के परस्पर अनुराग को वर्णन ही अति अगम्य दुर्बोध अटपटो जगत् से न्यारो मनबुद्धि से परे है। निकुञ्ज में सदा साथ रहने वाली सखीजन जब श्रीप्रियाजी की इच्छा से यहाँ भारतवर्ष में अवताररूप में मनुष्याकृति में पधारती हैं। वे ही कृपाकर अनिर्वचनीय लीलारस को यथा कथंचित् अपने भावमय वचनामृत का वर्षण करती हैं अधिकारानुरूप उस अमृत का पान करने वाले करते हैं तथा अपने कृपा पात्रों के लिये अनुभव पूर्ण सांकेतिक शब्दों में वाणी लिपिबद्ध भी कोई कोई कृपालु करते हैं वही प्रसादरूप में आजकल छिपा हुआ है। स्वाती बूँद के समान कुत्र कुत्र कदाचित् किसी जिज्ञासु को प्राप्त होजाता है और प्राप्त होने पर भी उसको समझने वाले विरले ही हैं। यथा रसिक सभा-मण्डन श्री ध्रुवदासजी अपनी रहस्यलता में कह गये हैं :—

❊ दोहा ❊

जो कही श्रीहरिवंश रस, विरलौ समझनहार।
एक दोई जो पाईये, खोजत सब संसार ॥१॥

नवकिशोर सुकुमार तन, मृदु भुज मेले अंस।
जोरी सनी सनेह रस, प्रगट करी हरिवंश ॥२॥

नव दूलह नव दुलहिनी, एक प्रान द्वै देह।
वृन्दावन वरषत रहैं, नवल नेह को मेह ॥३॥

प्रेम सुख का विलसन तब तक संभव नहीं जब तक सहचरी भाव परिपूर्णरूप से हृदयंगम न हो जाता है।

❊ दोहा ❊

रस की ही मूरति दोऊ, रसिक लाडिलीलाल।
रस ही सों चितवत रहैं, रस भरे नैन विशाल ॥

प्रेम नेम की दशा जिती, उपजत आनहि आन ।
रसनिधान विलसत रहैं, सुख को नांहि प्रमाण ।।

ओर न कछु सुहाय मन, यह जांचत निशि भोर ।
या सुख धनसौं लगरहे, ध्रुवलोचन दिन भोर ।।

यह सुख निरखत सखिन के, आनंद बढ्यो न थोर ।
हेमलता फूलि मनो, झूंम रही चहुं ओर ।।

उपरोक्त दोहावलि में गहन प्रेम को दर्शन है तथापि इस आनंद वारिधि में वही गोता लगा पावेगा जिसके हृदय में विशुद्ध उज्ज्वल तत्सुख सुखित्वभाव पूर्णप्रेम लह लहाता होगा, महल की बात महली ही समझ सकता है, आत्मसुख कामना विरहित प्रिया चरणकमल मकरंद का पान भ्रमर ही (पूर्णविरक्त त्यागी प्रेमीजन) ही करने का अधिकारी है ।

आनन्द की राजधानी श्रीवृन्दावन ही है । वृन्दावन में दो मन नहीं हैं, श्यामसुन्दर, प्यारीराधा, सखी सहचरी मंजरी सहेली सबही तथा वृन्दावन के पशु-पक्षी और तरु-लता जो चिन्मय हैं इन सबका ही एक मन हैं अर्थात् सबही को मन एकमात्र प्रेम ही में निमग्न है । प्रेम का स्वरूप त्याग रूप है अर्थात् सब ही तत् सुख सुखी हैं ।

❀ दोहा ❀

आनन्द को रङ्ग नित, सोच न दुचिताई लेस ।
इक छत विलसत राज रस, वृन्दा विपिन नरेस ।।

एक कुसुम कुञ्ज में सखियों सहित प्रिया प्रियतम खेल करने लगे, उस खेल का वर्णन उपमा देकर किया है । प्रेम भरे हृदय के नेत्र से उस खेल को देखते हुए वृद्धि से समझ कर अन्त:करण में प्रेम रस रङ्ग से उसका चित्र खेंचने का प्रयत्न कीजियेगा तो आपके हृदय

में निकुञ्जान्तरवती आनन्द लता के रस मय पुष्पों की सुवास आत्मा को प्रेम रस में ओत प्रोत कर देगी ।

खेलत फूलन कुँज में, बाढ़यो रंग आनंद ।
आनंद में सब सहचरी, आनंद के विवि चंद ।।२।।

बास रंगीली बाँसुरी, फूल रंगीलौ पीय ।
नेह देह नागर नवल, नागरि आनंद हीय ।।३।।

आनंद द्रुम आनंद लता, फूले आनंद फूल ।
आनंद रस जमुना बहै, मनि मय आनंद कूल ।।४।।

सर्वोपरि आनंद निधि, वृन्दाबन सुख पुंज ।
द्रुम द्रुम बोलत खग मधुर, कुंज कुंज अलिगुंज ।।५।।

जहाँ तहाँ फूले कमल वर, और फूल चहुँ ओर ।
फूले फूले फिरत तहाँ, रस में मधुपनि दोर ।।६।।

राजत हैं दोऊ रंग भरे, रूप सींव सुकुँवार ।
तन मन अरुझे प्रेम रंग, आनंद रंग सिंगार ।।७।।

मदन हुलास बिलास रंग, आनंद रस को कंद ।
कहा कहों चहुँ ओर सखि, लुटत फिरत आनंद ।।८।।

नव किशोरता माधुरी, छवि विद्या सब आनि ।
प्रिया चरन सेवत रहें, ठाढ़ी जोरत पान ।।९।।

अधर जुरनि उर उरघुरनि, मुरनि अंग कोऊ भाँति ।
सो छबि अद्भुत सहज की, कैसे वरनी जाति ।।१०।।

छुवनि कुचनि मन मन रुचनि प्रीतम कर धरैं आँनि ।
कञ्चन के श्री फल मनौ, ढँके कमल दल वाँनि ।।११।।

उरज कलस कुन्दन बने, मानौ मंगल साज ।
कुँवरि रूपके नगर कौ, पिय पायौ सुख राज ।।१२।।

कजरारे चञ्चल नैंन, निरखत अति सुख होइ ।
मानौ छबि के कञ्ज पर, खेलत खंजन दोइ ।।१३।।

नैंन जुरनि भौंहनि मुरनि, संधि छबीली ठौर ।
कैसे निकसै परचौ जहँ, चित्त रसिक सिर मौर ।।१४।।
प्यारी तन प्यारौ सबै, करत नैंन मग पाँन ।
अधर नाभि भुज मूल कुच, तहाँ बसत पिय प्रॉन ।।१५।।
ललित लड़ैती कुँवरि की, चलनि छबीली भांति ।
विवस लाल पाछे फिरत, अवलोकत तन काँति ।।१६।।
जहँ जहँ मनि मय धरनि पर, चरनि धरति सुकुँवारि ।
तहँ तहँ पिय दृग अँचलनि, पहिलहिं धरहिं सँवारि ।।१७।।

* सोरठा *

श्री वृन्दावन माँहि, आनन्द सिंधु तरङ्ग उठैं ।
घन अनुराग चुचाँहि, फूले छवि के फूल द्वै ।।१८।।

* सवैया *

रूप कौ फूल रसीली बिहारनि मैंन कौ फूल रसीलौ बिहारी ।
फूलि रहे अनुराग के बाग में रागकौ रंग बढ़्यौ रुचिकारी ।।
भावै यहै पिय के मनकौ सुख खेलैं हँसैं रसमें सुकुँवारी ।
सखी चहूँ ओर विलोकत हैं ध्रुव आनन्दवारि किधौं फुलवारी ।।१९।।

* दोहा *

भुजनि भरत मन मन हरत, करत रंग रस केलि ।
आनन्द स्याम तमाल सौं, लपटी आनन्द बेलि ।।२०।।
नखसिख भूषन झलकि रहे, प्रति विंबित अङ्ग अङ्ग ।
झलमलात अगनित मनी, दर्पण दीप अनङ्ग ।।२१।।
अद्भुत रंग अनग रस, बिच बिच प्रेम तरंग ।
इहि कौतुक न अघात कोऊ, जद्दपि मिले अंग अंग ।।२२।।
श्रम जलकन मुख गौर पर, छुटेवार अरु हार ।
लपटि परे पट सहजहीं, सोभा बढ़ी अपार ।।२३।।

यह सुख निरखत सहचरी, भरी रङ्ग दुहुँ ओर।
अँखियां तौ दुचिती भई, परी रूप झकझोर ॥२४॥
नैंन श्रमित मुद्रित मनौं, प्रीतम रहे छबि जोहि।
मानौं कञ्चन कमल में, छवि के अलि रहे सोहि ॥२५॥
निरखत छबि मुख माधुरी, बाढ़्यौ प्रेम अनङ्ग।
जैसे सिंधु तरंग उठैं, बिधुतन अतिहिं उतंग ॥२६॥
तबहिं लाड़िलीलाल तन,हँसि चितवति मुख ओर।
मानौ प्यावत प्यार सौं, प्रेम रसासव घोर ॥२७॥
निरखत मोहन रूप तन, छिन छिन होत अचेत।
प्याइ अधर रस माधुरी, करवावत हैं चेत ॥२८॥

* सोरठा *

रुचि कौ यहै अहार, प्यारी की उनहारि सखि।
जीवत तेहिं अधार, प्रान प्रिया हिरदैं वसैं ॥२ ॥

* दोहा *

परम रसिक नागर नवल, और न कछू सुहात।
कै भावै छबि देखिवौ, कै सुन्यौ चाहत बात ॥३०॥
पाँनिप कौ पानी पियत, त्रिपित होत नहि नैंन।
उमड़्यौ रहत है एक रस, प्रेम रङ्ग उर ऐंन ॥३१॥
जब जब सुख देखत रहैं, कज्जल नैंननि कोर।
पिय लोइनि निर्त्तत मनौं, आनन्द के द्वै मोर ॥३२॥
मेघ महल परदा फुही, राजत कुंज निकुंज।
बैठ नेह की सेज पर, करत केलि सुख पुंज ॥३३॥
अतिहिं लालची लाल पिय, निरखत हूँ न अघात।
प्रिया रूप तन बिपिन मैं, रहे नैन उरझात ॥३४॥
फूलनि देखत फिरत हैं, तदाकार इहि भाइ।
प्रिया चरन पावत जहाँ, तहँ तहँ रहत लुभाइ ॥३५॥

महा भावगति अति सरस, उपजत नव नव भाव।
मोहन छबि निरख्यौ करत, बढ्यौ प्रेम कौ चाव ।।३६।।

राजत अंक में लाड़िली, प्रीतम जाँनत नाँहि।
त्रिलपत रुदन बढ़्यौ जहाँ, महा भाव उरमाँहि ।।३७।।

अति प्रवीन सब सहचरी जानत रसकी रीति।
अंगनि छूवनि करनि पिय, होत न तऊ प्रतीति ।।३८।।

हँसि लागी जब कंठ सौं, लये जगाइ अनुराग।
मानौ दीनौं रीझिकै, आनन्द हार सुहाग ।।३९।।

एक समै भ्रम प्रेम कौ, बढ़्यौ दुहुनि के हीय।
पीय कहत हौं ही प्रिया, प्रिया कहत हौं पीय ।।४०।।

अटपटी चाल है प्रेम की, को समुझै यह बात।
रंगे परस्पर एक रंग, अदल बदल ह्वै जात ।।४१।।

उपजत अंगनि अंग रंग, छिन छिन औरै और।
अति प्रवीन बिलसत रहैं, परम रसिक सिर मौर ।।४२।।

वृन्दावन आनन्द की, वारि सुदृढ़ ध्रुव आहि।
माया काल प्रपंच की, पवन न परसत ताहि ।।३४।।

दुक्ख निसानी नेकु नहिं, इकछत सुख कौ राज।
मत्त भये खेलत दोऊ, सखियनि संग समाज ।।४४।।

छवि विताँन आनन्द कौ, वृन्दावन रह्यौ छाइ।
सोच धूपकी ताप तहाँ, कबहूँ न परसत आइ ।।४५।।

वृन्दावन छबि झलक को, उपमा नहि कछू आँन।
जेहिं आगे ससि भाँन दोऊ, होत है तिमिर समान ।।४६।।

भूली छबि श्रीमोहनी, सोहनी रहि गई पाँनि।
झनक भनक श्रवननि परी, नैंननि मृदुमुसुकाँनि ।।४७।।

भजन आहि बहु भाँति के, नहिं आवत उर ऐंन।
जुगल रूप घन बिपिन तन, तहाँ उरझौ ध्रुव नैंन ।।४८।।

उपरोक्त प्रेम समुद्र का आवर्त है इसको वास्तविक रूप से समझ कर प्रेमानन्द (जो कि ब्रह्मानन्द से अति परे है शुद्ध स्वरूप है) सागर की लहरों में झूलने वाले श्रीहित हरिवंश, श्री गौराङ्ग महाप्रभु श्री स्वामी हरिदास जी और उनके कृपापात्र श्री सेवक जी, श्री विहारिन दास प्रभृति महान् त्यागी महापुरुष अथवा उनके सदृश महात्मा गण ही हैं। इस आनन्द सागर के बूंद की प्राप्ति आज भी उन कृपापात्र प्रेमी जन को ही हो रही है और होगी जो उनके निर्दिष्ट त्याग और प्रेम मय जिनका जीवन है ऐसे महात्मा आज भी वृन्दावन के निकुञ्जों में तथा गिरिराज और व्रज की कन्दराओं में गुप्त रूप से विराजमान हैं किन्तु बहुत ही अल्प संख्या में हैं जिनको पहिचानना अति कठिन है उन्हीं की कृपा हो तो जनाय देते हैं। वे लोग बहुत गुप्त रूप में अपने को रख रहे हैं, देखने में मूर्ख, अज्ञानी, पागल, गूंगे, बहिरे, भिखारी रूप में विचर रहे हैं। पात्रता होने पर स्वयं दर्शन देते हैं। ऐसे महापुरुष का सङ्ग यदि मिल जाय तो पारस के स्पर्श से स्वर्ण की कहावत चरितार्थ हो जाती है। वैसे ही पहुँचे हुए महापुरुष भगवान को प्रकट कर स्वयं दिखाय देते हैं। यही व्रज वृन्दावन की अद्भुत महिमा है।

उज्जृम्भमाण रस वारि निधेस्तरंगै-
रंगैरिव प्रणय लोल विलोचनायाः।
तस्याः कदानु भविता मयि पुण्य दृष्टि-
वृन्दाटवी नव निकुञ्ज गृहाधिदेव्याः ॥११॥

रसकुल्या टीका

ननु पूर्णाऽनुराग रसानुभवः किंचिदनिर्वचनीयः सुचरित परिपाक जनित भाग्य वैभवेन लभ्यते, अतस्तद्भाग्य निदानमभिलषतिउज्जृम्भेति:-

हिन्दी टीका

(शङ्का यह है कि—पूर्णानुराग रस का अनुभव तो कुछ अनिर्वचनीय है (विलक्षण है), बड़े-बड़े सत्कर्मों के फलों से बने हुए भाग्य के प्रताप से प्राप्त होता है-अतः उस भाग्य के निर्माण को चाहने वाला कहता है—उज्जृम्भेति)

रसकुल्या टीका

अहो ! दुर्लभमनोरथ वितर्के ! तस्याः पूर्वोक्तानुराग रससागर सारमूर्तेः ? निकुञ्जग्रहमधिदीव्यतीति, क्रीडा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, गत्यर्थदशकं यथा सम्भवं वाच्यम् ।

रसकुल्या की हिन्दी टीका

अहो ! आश्चर्य की बात है, दुर्लभ मनोरथ है ! उस पहले कही गई अनुराग रससागर सार मूर्ति की पुण्य दृष्टि प्राप्त करने की अभिलाषा है ! जो निकुञ्ज गृह को पूर्ण रूप से देदीप्यमान (प्रकाशवान्) बनाती है, दीव्यति शब्द के, क्रीड़ा, विजिगीषा, व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति और गति आदि दश अर्थ हैं जो लीला सम्बन्धानुकूल समझने चाहिये ।

रसकुल्या

गृहेति–गृहणी, गृहेश्वरी--पति पूर्ण प्रेम, ममतास्पदा ? निरंतर गृह क्रीडा, व्यवहारादि व्याप्ततातिछंदाऽनुगत पतिका, परम सौभाग्योभय कुल लालनीयदर्पवतो, वर वर्णिनी इत्यादि सहृदयोद्दीपिनीयार्थाभिधाना ।

रसकुल्या की हिन्दी टीका

गृहाधिदेव्याः—गृह माने गृहणी (गृहणी गृहमुच्यते) घर की स्वामिनी–जिसे पति का पूर्ण प्रेम प्राप्त हो और जिस पर पति की ममता भी हो और निरन्तर (सदा) गृह क्रीड़ा और घर के कार्यों में व्यस्त हो, पति के द्वारा जिसे पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त हो, पति भी वश में और इच्छा में चलने वाला हो ! जो परिपूर्ण सौभाग्य वती हो, दोनों (पिता और पति के) कुल में जिसका आदर लाड़ प्यार हो, इसका थोड़ा गर्व भी हो ! सुन्दर वर्ण वाली हो, आदि आदि--गुणों से सहृदय पुरुषों के हृदय में, उत्पन्न आदर के भावों को बढ़ाने वाली हो--ये सब गृहणी के लक्षण और गुण वाली ही गृहाधि देवी होती है !

रसकुल्या टीका

नवेति—नवेति नित्यत्वं तादृश रूपेण निकुञ्ज गृहाणां अधिदेव्याश्चापि प्रतिक्षण विलक्षणानन्ददायित्वं च प्रवाह रूप वदिति, अधिकृत्येति गृह गमन, दर्शनादिव्यापारस्थ तदिच्छान्यथाऽनुपपत्तिः सूचिता ? निकुञ्जे सकल नित्य भुवनाधिपतेरविलक्षण यथेष्टाभिलषितानन्दपूरक, सर्वर्तु सुखद काम तरु, गुल्म वीरुध, लता किशलय कुसुमादि स्वैरविरचित गवाक्ष, द्वाराऽजिरान्तर, वितान, जवनिका स्वर्णादि मयत्वं । अटवीति हृदयावकाशाद वैशद्य सविश्रम रहस्योद्दीपन विस्मृतेतर कार्यत्वसूचिनी ।

रसकुल्या की हिन्दी टीका

नव शब्द का अर्थ नित्य निरन्तर है, सदा ही उपरोक्त गुण-वती निकुञ्ज गृह की स्वामिनी, क्षण-क्षण में विलक्षण (वर्णनातीत)

आनन्द की धारा प्रवाहित करने वाली, और निकुञ्ज गृह संचार के समय निकुञ्ज गृह में लक्षित (दीखते समय) होने में और लीला में पूर्ण आत्मेच्छा वाली (जिनकी इच्छा, आज्ञा के विरुद्ध कुछ नहीं होता है)।

निकुञ्ज में, समस्त लोक लोकान्तर और चतुर्दश भुवन में, दुर्लभ नित्यानन्द, इच्छितानन्द की पूर्ति करने वाली समस्त रितुएँ और उन रितुओं में होने वाले सर्व सुखप्रद, कामप्रद (इच्छानुसार सेवा करने वाले) वृक्ष, लता, औषधि, झाड़, पत्ते, पुष्प और इसके द्वारा बनाये गये झरोखे, द्वार, आंगन, चंदोवा, परदा और शैयादिक होना माना गया है ! अटवी--(वन) शब्द से, हृदयाकाश से भी विलक्षण, विशाल और एकान्त तथा स्वच्छ स्थान लक्षित है जहाँ रहस्य वस्तु का उद्दीपन (जागरण) और अन्य सभी अतिरिक्त भावों को भुलाने की शक्ति वाला स्थान, बताया गया है।

रसकुल्या टीका

वृन्देति–पुराणोक्त निःश्रेयसादि वनेभ्योऽपि परमत्वं तन्नाम्नः प्रसिद्धमेव वेद रहस्यत्वात्तदधिष्ठात्र्य त्रेति ।

रसकुल्या की हिन्दी टीका

वृन्दाटवी शब्द का अर्थ है कि—यह वन पुराणों में कल्याण प्रद सभी वनों की अपेक्षा श्रेष्ठ है और इसी नाम से (वृन्दाटवी या वृन्दावन) प्रसिद्ध है, इसको स्वामिनी वेदों में भी रहस्यमयी मानी गई हैं।

रसकुल्या

पुण्य दृष्टिः सुदृष्टि श्चारु दृष्टिरिति यावत् ? 'पुण्यं तु चार्वपीत्यतरः' यद्वा पुण्य दृष्टेः सहज चारु धर्मत्वेऽपि पुण्य-

त्वांश सर्वपूर्वफलवत् स्वस्मैतद्दृष्टि–विलास वैभव विल-सन्नाहं भाग्योत्कर्षोत्पादनार्थ । किंच सुखंतु पुण्यं बिना नस्यात् साधारण पुण्यादिना अहैतुकी भगवद्भक्तिर्नस्यात् । तदा तद् रहस्यं दर्शयितुं दुर्लभं यथा वक्ष्यति न'देवै ब्र'ह्माद्यै नंखलु' ।

रसकुल्या की हिन्दी टीका

पुण्य दृष्टि का अर्थ सुदृष्टि चारु दृष्टि है ! पुण्य शब्द का अर्थ अमर कोष में चारु भी किया है, अथवा पुण्य दृष्टि वाली की सहज मनोहर धर्म वाली दृष्टि, पुण्यांश के सभी फल पहले कहे अनुसार हैं, ऐसी पुण्य दृष्टि अपने ऊपर हो-तो विलास वैभव का उपभोग (आस्वादन) करने का उत्कृष्ट भाग्य जगे—तथा सुख तो पुण्य के बिना मिलता नहीं, साधारण पुण्यादिकों से अहैतुकी (कृपा साध्य) भक्ति भगवान में होती नहीं तो दुर्लभ भगवद्भक्ति प्राप्त करने का रहस्य बताते हैं ।

❀ श्लोकार्थ ❀

श्री राधारानी का प्रत्येक अङ्ग, उच्छ्वलित रस सागर की तरगों जैसा प्रतीत होता है और नेत्र तो अनुराग रस रञ्जित, अति ही चञ्चल हैं । नव निकुंजेश्वरी वृन्दावनेश्वरी ! उन नेत्रों से कब मुझे कृतार्थ करेंगी । कब पुण्य दृष्टि कृपा दृष्टि मेरे ऊपर करेंगी ।

रसकुल्या टीका का भावार्थ

वास्तव में पूर्णानुराग रस का अनुभव तो विलक्षण ही है वाणी के माध्यम से उसका वर्णन तो सर्वथा अशक्य है ही तथापि इंगित (इशारा मात्र) भी करना सम्भव नहीं है कारण, शब्दों के

द्वारा मूर्त वस्तु का वर्णन होता है अमूर्त का तो अनुभव ही किया जाता है, मूर्त का आकार प्रकार रूप रङ्ग बताया जाता है पर उसकी मिठास का तो अनुभव के द्वारा ही ज्ञान होता है इसलिये अनिर्वचनीय कहकर वाणी को विश्राम देते हैं ! अनुभव भी तो श्रेष्ठतम सत्कर्मों द्वारा बने हुए भाग्य से ही होता है तो वे सत्कर्म कौन से हैं और उनसे वह सद्भाग्य कैसे प्राप्त हो यह प्रश्न है ।

उत्तर के रूप में टीकाकार अपना अभिप्राय व्यक्त करते हैं कि इस अनिर्वचनीय रस की प्राप्ति अथवा अनुभूति के साधन 'सत्कर्म' हो जायें तो, साधन श्रेष्ठ होंगे । और साध्य निकृष्ट होगा, साधन सापेक्ष रस अंगी नहीं हो सका, और सबसे बड़ा दोप यह भी होगा कि साध्य की अपेक्षा साधक श्रेष्ठ माना जायगा ! किन्तु ऐसा नहीं है- इस रस की प्राप्ति सुचरित परिपाक से होती है । चरित्र निर्माण दूसरे के आधीन है, वृन्दावन की रसिक मण्डली अथवा राधिका रति निकुञ्ज मण्डली कृपा करके जिसका चरित्र सुचरित्र बनावें, रसिक बनाकर अपनावें, वृन्दावन में बसावें, अनिर्वचनीय रस में गोता लग-वावें उसीको रसानुभव होगा-'यमैवेष वृणुते तेन लभ्य:' तो यह रस प्रधान रस स्वतन्त्र रस ही रहा और रसिकजन, कृपा साध्य रहा ! अकारण करुणामय रसिक, जिसे चाहें अपना कर, अपना जैसा बनाकर असम्भव भाग्य बना दे । तो इस रस की प्राप्ति का हेतु वह भाग्य मेरा भी हो ऐसी अभिलाषा है । उज्जृम्भेति

बड़ा आश्चर्य है कि मैं ऐसा दुर्लभ मनोरथ कर रहा हूँ किन्तु यह मनोरथ भी पूर्ण हो सकता है यदि वृन्दावनेश्वरी, निकुंजेश्वरी राधा की कृपा दृष्टि हो जाय निकुंजेश्वरी शब्द से बड़ा ही रहस्यमय भाव व्यक्त किया है कि-जहाँ विश्व ब्रह्माण्डान्तर्गत लोक, और भुवनों में जिस आनन्द का आभास मात्र भी नहीं मिल सका उसी आनन्द का वहाँ सागर तरंगायित रहता है, श्रोत रूप से प्रवाहित

रहता है, तथा चेतन रूप से, वृक्षादिकों द्वारा जिराङ्गण चत्वर, विहार के योग्य स्थलों का निर्माण होता है, वह निकुंज स्थल ही जब सर्व समर्थ है तो उसकी अधिष्ठातृ स्वामिनी 'निकुंजेश्वरी' की तो चर्चा करना भी–वाणी को कृतार्थ करना ही है, वृन्दाटवी के निकुंजों की अधीश्वरी कहना तो, रसोन्माद ही है। वृन्दाटवी को अर्थात् वृन्दावन के निकुंजों की स्वामिनी कहना तो, केवल सहृदय सम्बोध्य वस्तु सिद्ध करना है यह वन पुराणों में तथा वेदों में भी अति समादरणीय और कल्याणप्रद माना गया जब से श्रीराधा ने इसे अपना विहार स्थल बनाया है तब से तो इसकी महत्ता, लोकोत्तर हो गई है और जब से श्रीराधारानी है तब से ही ये उनका विहार स्थल है अर्थात् नित्य विहार स्थल है इसी ने श्रीराधा विहार प्रकट किया है। अटवी शब्द से इसका संबोधन करके एक लोकोत्तर महत्ता यह भी सिद्ध की है कि अटवी में गहन वन में योगी प्रपंचातीत होकर ब्रह्म चिन्तन करते हैं तो उनके कार्य में विक्षेप नहीं होता है और उनके हृदयाकाश में ब्रह्मानन्द का प्रादुर्भाव होने लगता है अर्थात् ब्रह्मानुभव होता है, किन्तु इस वन में तो ब्रह्मानन्द से भी अनन्तानन्त कोटि गुणाधिक रसानन्द, रस धारा राधा विहार सुख की प्रत्यक्ष उपलब्धि होती है जिससे सब कुछ, लौकिकालौकिक वैदिक श्रृङ्खलाऐं विश्रृङ्खलित हो जाती हैं और इससे भी आगे 'जे अवतार कदम्ब भजत हैं धरि दृढ़ व्रत जो हिये, तेऊ उमगि तजत मरजादा वनविहार रस पिये' विस्मृतेतर कार्यत्व सूचना यही है। ब्रह्मानद और ब्रह्मानुभूति तो बहुत पीछे रह जाती है, ब्रह्मानुभूति, हृदयाकाश तक सीमित रहती है और एक योग्य होने से संकुचित भी होती है परन्तु इस निर्मल रसधारा का अवगाहन तो इस अटवी के अणु अणु कण से प्रत्यक्ष होता है। ब्रह्मानुभव तो 'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह' प्रमाणों से मन वाणी का भी अगोचर, अविशय माना गया है परन्तु यह उससे भी असंख्य गुणाधिक रहस्यमय होते हुए भ यहाँ

'स एव यद्दग् विषयः' प्रत्यक्ष है देखने सुनने और समझने योग्य है भक्त्यात्वनन्यया शक्यः ज्ञातुं द्रष्टुँ च तत्वेन'! यह इस अटवी का चमत्कार है। इस अटवी को स्वामिनी श्रीराधा जिनका स्वरूप, 'वृन्दाटवी नव निकुंज गृहाधि देवी' आदि शब्दों में कहा गया है जिन शब्दों में भाव की ओर महत्ता की सीमा नहीं है वे यदि कृपा दृष्टि करें तो सद्भाग्य और उसकी सफलता सब कुछ सम्भव है।

उज्जृम्भमाण, उत्फुल्लमान, रसवारि निधेः, रस सागरस्य, नंदनंदनस्य तरंगै रेव अंगजैः अथवा अंगान्येव तरंगानि हास्य कटाक्षादिनी तैः प्रणयलोलविलोचनायाः प्रणयेन लोल लोचने अथवा प्रणयार्थं लोले चञ्चले सतृष्णि कृते विलोचने प्रणयविलोचने चञ्चले यस्याः तस्याः, वृन्दाटवी नव निकुञ्ज गृहाधिदेव्याः पुण्य दृष्टि विकार विरहिताशुभा दृष्टिः मयि मां प्रतिकदा नु वितर्के भविष्यति।

❊ तात्पर्य ❊

श्री वृषभानु नन्दनी के बताये हुए संकेत कुञ्ज में मिलने के लिये जिस समय आने का संकेत श्री श्यामसुन्दर को किया गया था, ठीक उसी समय पर न आकर श्रीश्यामसुन्दर कुछ विलम्ब से वहाँ आये। श्यामसुन्दर नवीन नटवर वेश धारण किये वहाँ उपस्थित हुए, ब्रज भक्त कह रहे हैं कि देखो यह नंदनंदन रसिकेन्द्रोचित नागर वेश धारण किये हुए हैं और दूसरी बात यह है कि असमोर्द्ध माधुर्य रस के सागर हैं। पुनः इनके प्रत्येक अङ्ग से कोटि-कोटि लावण्य की लहरें उठ रही हैं इनको देखकर श्रीमति राधा भानुदुलारि के नेत्र रूपी मीन उनके अनुरूप माधुरी के तरंगों में तरंगायित हो रहे हैं तथा नेत्र भी अत्यंत चञ्चल हो उठे हैं। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि इनके दर्शनों के आनन्द में प्रेम के प्रवाह में मानो नृत्य कर रहे हों। और श्यामसुन्दर भी अपने चञ्चल नेत्रों द्वारा अपनी प्राण प्रिया श्रीराधा को तरफ अपने नयन अपांगों के कटाक्षों से अतृप्त भाव से

उनकी माधुरी का आस्वादन करने लगे। श्रीराधा वृन्दावन के निकुंजों की अधिष्ठात्री देवी हैं "दिव्यति क्रीडति या सा देवी" श्रीराधा कुंजों में क्रीड़ा परायणा हैं अतः आज मानो देवी रूप को प्रकट कर रही है देवी द्योतमाना परमसुन्दरी किंवा कृपा की देवी नागरी दिवधातु का अर्थ द्युति है। अतएव श्रीराधा अपूर्व माधुरी विशिष्ट असमोर्द्ध अर्थात् इसके समान नहीं और इससे अधिक भी कहीं नहीं है अपूर्व माधुरी युक्त परम सुन्दरी हैं यहाँ यदि ऐसी शंका हो कि लक्ष्मी शिवा आदि भी तो परम सुन्दरियाँ हैं इस शंका को दूर करने ही के लिए दिवधातु का प्रयोग यहाँ किया है दिव धातु के अनेकार्थों में से यहाँ दिव्यति क्रीड़ति अर्थात् खेलने का अर्थ होता है। वृन्दावनेश्वरी श्रीराधा जी निकुंज मंदिरों में गोपियों को साथ लेकर अपने प्राणेश्वर श्री श्यामसुन्दर के साथ सदा खेलती हैं और लक्ष्मी आदिकों का क्रीड़ा करना है नहीं यह वृन्दावन निकुंज निभृत निकुंजों में दिव्य प्रमोद युक्त श्रृङ्गार रस की मधुर क्रीड़ा श्रीराधा जी ही की होती है दूसरों की नहीं अतः राधाजी परम सुन्दरी हैं। श्रीसच्चिदानन्द परब्रह्म श्रीकृष्ण भी इन्हीं श्रीमति राधा-रानी से ही क्रीड़ा करके परम सुख की प्राप्ति करते हैं राधाजी श्रीकृष्ण की परमात्मा और पर देवता हैं यह शास्त्र कहता है।

"देवीकृष्णमयी प्रोक्ता राधिका पर देवता"

(कृष्णयामले)

इसी कृपा रूपी वस्तु की आकांक्षा आचार्यपाद करके यहाँ श्रीराधा जी के जो कुँजविलासिनी पर देवता हैं उनके प्रेम के द्वारा नयन कटाक्ष की जो माधुरी उसको अपने मानस नेत्रों से देखते हुए अत्यंत लालसा युक्त होकर अन्य सम्पूर्ण अभिलाषाओं को त्यागकर केवल श्रीराधा जी की पुण्य दृष्टि निर्विकार विमल दृष्टि की याचना की है। पुण्य दृष्टि अर्थात् प्राकृत विकारो से रहित शुद्ध प्रेम दृष्टि

जिसके पड़ते ही विषयी जनकी विषयासक्ति निर्मूल हो जाती है पाखण्डीजन की पापमति ज्ञानी का अहंकार योगी की योगनिष्ठा यति संन्यासियों का ब्रह्मानुसंधान और अद्वैत भाव विलुप्त होकर भगवच्चरणों में आसक्त हो प्रेमानंद सागर में डूब जाते हैं। अधिक क्या कहैं श्रीराधा जी की दृष्टि का माधुरी के प्रभाव से रसिक शेखर श्यामसुन्दर भी श्रीराधा जी के चरण कमलों में लोट जाते हैं। वह पुण्यदृष्टि मुझ को कब प्राप्त होगी—यह अभिलाषा युक्त प्रार्थना करते हैं।

वृन्दाटवो नवनिकुंज ग्रहाधिदेव्याः ॥

श्रीचम्पकलता जी आदि सखीगण पारिजात लता कुञ्ज में बैठी हुई लीला सम्बन्धी विषय की चर्चा करती हुई आगामी कल के वन-विहार में कन्दुक क्रीड़ा के विषय में परामर्श कर रहीं थीं। बीच में तुङ्गविद्या जी ने श्री रूपमञ्जरी से प्रश्न किया कि श्रीहित सजनी जी ने कहा निकुञ्ज वाटिका में वीणवाद्य पूर्वक एक गान वृन्दावनेश्वरी इस पद को सुनाती हुई प्रेम समुद्र में गोता खाने लगीं और समाधिस्थ हो गईं। इसका रहस्य कृपा कर मुझ को बतावें। श्रीरूप-मंजरी जी ने कहा कि हमारी प्राण प्यारी वृन्दावन की स्वामिनी एकछत्रा महारानी हैं, यह पद बोलने के साथ हितसजनी के हृदय में श्री वृन्दावन का वैभव ध्यान में आ जाने से श्री वृन्दावन का प्रतीत हुआ और उसके दर्शन होते ही आनंद सागर में डूब गई। बहिश्चेतना रहिता होकर अन्तः रस गृह के कपाट खुल गये तथा आनंदपुर में स्थिति हो गई। यह उसका रहस्य है। यह सुनकर तुङ्गविद्या जी ने कहा कि मुझ को उस वैभव पूर्ण वृन्दावन का स्वरूप कृपा कर सुनावें तुङ्गविद्या जी की जिज्ञासा जानकर श्रीरूप-मंजरी अति प्रसन्न हुई तथा श्री प्रिया-प्रीतम को मन से प्रणाम करती हुई श्री वृन्दावन का वैभव वर्णन करना आरम्भ कर दिया।

अस्ति सकल बैकुण्ठसारमपि न वैकुण्ठसारं नवप्रभूतेष्वपि नवप्रभूतेषु चिन्महःसु समुत्पन्नम् । अकृतकमपि कृतकं प्रकृतिसिद्धमपि अप्रकृतिसिद्धम् । अतएव नित्यभूतमपि अनित्यभूतं सुरसार्थं बहुलमपि सुरसार्थं दुर्लभम् । विपल्लवैरपि विपल्लवस्याप्यपदैः । अप्रसवैरपि सुप्रसवैः । लीलायतनैरपि अलीलायतनैः । शारिवीभराकीर्णं मन्दार बहुलमपि अमन्दारं । बकुलैरपि न वकुलैः । तमालैरपि न तमालैरुप शोभितम् ॥ किं बहुना भगवद्वपुरिव उज्जृम्भमाण मन्मथकरज लेखा रक्तचन्द न धवलकुच प्रियालताली भृङ्गरूपं पुरुकरुणञ्च ।

मुनिमण्डलमिव शाण्डिल्य लोमशादिसहितं उपनतवानप्रस्थ-गणञ्च गायत्रीजपाकुलितञ्च । समस्थलमिव अम्लानबाणकर वीरकुला कुलितम् । चर्मिनिर्मितक्रीड़ञ्च पीलुपरिवृतञ्च ।

कुरुपाण्डवायोधनमिव गाङ्गेयारुष्करार्जुनशर परिपूर्णं शिख-ण्डिमण्डितञ्च स्वमिवनिरन्तराशोकातिमुक्तपुरुष प्रायम् । निरन्तराल विराजमान ज्योतिश्चक्रमपि अविकर्तनं अनिशेशं अभौमं विबुधम् अजीवम् अकविगम्यं अमन्दं विकेतुवितमः निस्तारकम् ।

परम पावन निखिल सुखधाम श्रीधाम वृन्दावन की महिमा गीर्वाण वाणी में श्रीरूप मञ्जरी वर्णन कर रही है उसको सुनाती हुई श्री तुङ्गविद्या सखि विनयावनत होकर बोली कि अहो परम श्रद्धेय जीजी श्रीवृन्दावन की महिमा अति अद्भुत श्रवण मङ्गल आपके मुखारविन्द से अमृतमिव निर्झरित हो रहा है । मेरी प्रार्थना है कि इस अमृत प्रवाह का निर्झर (स्रोत) श्री निकुञ्ज की पियूषमयी वाणी (ब्रजभाषा) में प्रवाहित करने की कृपा करें । यद्यपि देव-वाणी (संस्कृत भाषा) समस्त भाषाओं का मूल स्रोत है तथापि हमारी निकुंजेश्वरी प्यारी श्रीराधा हम सखीजन तथा प्रीतम के साथ ब्रजभाषा ही में सम्भाषण (संलाप) करती है यह ब्रजभाषा अति मनोहर सुखश्रव अमृत के सदृश मधुर है ।

यह सुनकर श्रीरूप मञ्जरी मुसकराई और बोली। अच्छो बहिन मैं अब श्रीवृन्दावन कौ स्वरूप वैभव वर्णन अपनी निज वाणी में करूँ आप सुनो इतनो कहकर श्रीरूप मंजरी जी बोलने लगी कि अनेक सखीजन भी वहाँ उपस्थित होकर श्रवण करने लगी।

❀ श्री वृन्दावन का स्वरूप ❀

बहिनो, हमारे प्रिया-प्रीतम के विहार करवे को स्थल वृन्दावन है। चिन्मय दिव्य बैकुण्ठ, साकेत कैलास आदि बड़े-बड़े नित्य-धाम सवन के ऊपर ऊँचो महास्तूप के सरीखो और स्वच्छजल से पूर्ण केदार (जल पूरित खेत) प्रेम पूरित विभाग रस को खेत रूप वृन्दावन अनादि अनन्त काल नित्य जगमगाय रह्यो है। यह हमारो धाम श्री वृन्दावन अनन्त ब्रह्माण्डों के अनन्त बैकुण्ठों का सार है किन्तु कुण्ठ सार नहीं है अर्थात् कभी भी मन्द प्रकाश नहीं किन्तु नित्य अमन्द प्रकाशमय है। वहाँ नित्य सिद्ध परिकर सहित श्रीयुगल सरकार विराजते हैं। स्वच्छ निर्मल सुन्दर मधुर रस परिपूर्ण नित्य विहार रूप प्रेमार्थ जो देवाधिदेवों को भी दुर्लभ है वह प्रेम यहाँ पर रहने वाली सखियों को सुलभ है। यहाँ पर विचित्र पत्र वाले वृक्ष हैं किन्तु जगत् के वृक्षों की भाँति उत्पात वाले वृक्ष नहीं हैं वह समस्त वृक्ष सुन्दर लीलाओं के भण्डार रूप हैं लीलाओं के भण्डार जागतिक वृक्षों के समान नहीं हैं। पारिजात के अनंत वृक्ष हैं कड़वे नीम यहाँ हैं बकुल (मोलश्री) और तमाल नमित पंक्ति बद्ध सुशोभित हैं। हे सखि इसका विस्तार कहाँ तक कहूँ यहाँ नारायण के स्वरूप और कामदेव के हाथों से लिखी मलयचन्दन की रेखाओं के समान सुशोभित रूपवान मधुप गुञ्जार करते हैं।

प्रभाव, गुण वैभवादि पूर्ण मुनि जनों के सदृश यहां के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं, शाण्डिल्य मुनि के समान बेल, लोमश ऋषि के

समान जटा माँसी (बालछड़) तथा वनाप्रस्थ के समान महुवा आदि वृक्ष मानो मौनी तपस्वी मौन धारण कर गायत्री मंत्र का जाप कर रहे हैं। तथा मानो रणभूमि में वीरों के समान खड़े हुए करवीर (कार्णीकार) और पीलु सुशोभित होय रहे हैं श्री श्यामसुन्दर का काम विजय युद्ध होने वाला है। कौरव पाण्डवों के युद्ध के समान गाङ्गेय (भीष्मपितामह) के समान नाग केशर का वृक्ष अर्जुन के समान अर्जुन का वृक्ष तथा भिलावाँ आदि के भीमकाय वृक्ष भी सुशोभित होय रहे हैं। मयूर शिखण्डी के समान हैं। और अशोक के वृक्ष शोक रहित मुक्त पुरुषों की तरह शोभायमान होय रहे हैं।

हमारे यहाँ इस निकुञ्ज धाम में बिना सूर्य और चन्द्र सा प्रकाश रहता है यहाँ देवताओं की और लोकपालों की गति नहीं है। यहां निरन्तर श्रीकृष्ण जैसे निस्तारक इष्ट हैं अर्थात् काल आदि का किञ्चित् मात्र प्रभाव जिन पर नहीं ऐसा इष्ट श्रीकृष्ण ही ईश जहाँ हैं (कालादिभिर्नाशो यत्रतत् अनिशमेवईश: श्रीकृष्णो यत्रेतिभाव:) कवियों की (बृहस्पति आदि कवियों की) जहाँ गति नहीं है। यहाँ पर सुन्दर तारागण से सुशोभित आकाश तेज से प्रकाशित सुन्दर चन्द्रमा गोकुलचन्द्र और पूर्ण भास्कर वृषभानु (वृष राशि के सूर्य के समान) जो पूर्ण तेजोवान हैं सुमङ्गलमय सुबुद्ध, सुजीव, सुकवि (शुक्राचार्य) मन्दतम सुकेतु जो सुन्दर केतुओं वाला है* जो पृथ्वी पर होते हुए भी पृथ्वी पर नहीं हैं। समय वाला होते हुए भी कालातीत और व्यापक होते हुए भी अव्यापक है। ऐसे सम्पूर्ण गुणों का धाम वृन्दावन नाम का वन है।

---

*दिव्य वृन्दावन इस स्थूल जगत् के बृन्दावन के अन्तर्गत है अलग नहीं। सच्चिदानंद नित्य स्वयं प्रकाश स्वरूप है। ध्यान के लिए कविराज कर्णपूर ने उपरोक्त वर्णन इसका किया।

यहाँ वृन्दावन में कहीं नीले मरकत मणि की भूमि है, कहीं स्वर्ण की वृक्ष लताऐं हैं, कहीं स्वर्ण की भूमि और नील मणि की लताएँ हैं। कहीं पर लाल कमल के समान भूमि है, तो स्फटिक मणि के वृक्ष हैं, कहीं स्फटि की वाटिका (बगीची) हैं तो कहीं कमल राग की लताएँ हैं। कहीं नीलमणि के वृक्ष की शाखाएँ स्वर्ण के समान हैं तो कहीं स्वर्ण के वृक्ष और नीलमणि के उनके पत्ते हैं। कहीं स्फटिक के वृक्ष हैं तो उस पर लाल मणिन के पत्र हैं। वे मणि-मय वृक्ष विविध रत्नों की शाखाओं से चित्र बिचित्र पत्र वाले हैं। उनके विविध रत्नमय पुष्प हैं। परन्तु ऐसा कोई वृक्ष नहीं जो मृदु न हो और ऐसा कोई पुष्प नहीं जिसमें सुगन्ध न हो। मणिमय होते हुए भी उसमें सुगन्ध और कोमलता है। हमारे इस वृन्दावन में मणिमय पर्वत हैं। हमारे प्रिया-प्रीतम श्रीराधा कृष्ण के विहार की जो भी स्थली है उनमें सुगन्धित गुलाब केतकी मल्ली आदि पुष्प सुवासित अमृतमय स्वच्छ जल के झरने झर रहे हैं, जो ऐसे प्रतीत होते हैं मानों प्रकाशमान मणियों का चूर्ण विखेर रहे हों। उन झरनों के समीप मणि युक्त विविध रंगों के जल से भरे मनोहर कुँड हैं जिनमें कनक कमल जिन पर चन्द्रमा की ज्योत्स्ना चमचमा रही है तथा उन विकसित कमलों की सुवास से मोहित हुए भ्रमरों के यूथ मण्डराते हुए गुञ्जार कर रहे हैं मानों यह भ्रमर यूथ भ्रमरियों के सहित श्रीराधा प्यारी के यशोगान से मुखरित हो रहे हैं। इन वृक्षों के अलावा (मेंड) मणियों से रचित हैं।

श्री वृन्दावन के वृक्ष ब्रह्मा की तरह स्वयं प्रकट हुए हैं, शिव शंकर के समान इनके जटाएँ हैं तथा सनकादिक के समान ये बालक तथा युवा व आनन्दमय छवि से सदा सुशोभित रहते हैं। इन वृक्षों की शाखाएँ सैनिकों के समान सदा सुशोभित हैं। स्वर्ग के योद्धाओं के समान आनन्द में निमग्न उत्साह पूर्ण सात्विक मनवान होकर

सुशोभित हैं। ये वृक्ष कर्म योगी हैं क्योंकि छहो ऋतुओं में सदा फल देते हैं। ये वृक्ष बिना बीज के उत्पन्न हुए हैं बिना पालन (सिंचन) किये ही बढ़े हैं बिना जल पिलाये ही हरे भरे रहते हैं। और बिना रितु के ही सदा फलते-फूलते रहते हैं। ये वृक्ष चित्रों के समान मनोरम सुकवि के नपे-तुले अक्षरों वाले काव्य सदृश, सदा अंकुरित, पल्लवित, मुकुलित, फलित तथा रस परिपूर्ण पके फलों से भरपूर रहते हैं। इन वृक्षों के प्रतिबिम्ब नीचे वहते हुए सरोवरों के जल में पड़ते हैं तो उन प्रतिबिम्बों को देखकर पक्षिगण उन पर बैठने तथा उनके फल खाने के लिये चोंचमार कर कोलाहल करते और डुबकी लगाते हैं।

कोई वृक्ष यमुना के जल में प्रतिबिम्बित हो रहा है और वायु के झकोरों से वहां लहराता दिखाईदे रहा है, तो कोई वृक्ष नीलमणि केसमान यमुना जल को ही श्रीकृष्ण का अंग मानकर उसको आलिंगन करने के लिए प्रवृत्त हो रहा है। कोई वृक्ष जिनका आलवाल (थाला) लाल रत्नों के सदृश किरणें फैला रहा है, ऐसा प्रतीत होता है, जैसे वह अपनी जड़ से आलवाल द्वारा श्रीकृष्ण का अनुराग-रस ही पुनः प्रकट कर रहा है। ये सब वृक्ष अलौकिक होते हुए भी लौकिक के समान दिखाई देते हैं। जैसे भगवान का अवतार अलौकिक सच्चिदानन्द परब्रह्म होते हुए भी मर्त्यलोक में लौकिक के सदृश लगते हैं।

रमणियों के समान स्वतंत्र लताएँ औरपत्ते-कलिका आदि परिवार वाले वृक्ष आनन्द पूर्वक देवताओं के समान विराजमान हैं। रमणी सदृश वृन्दावन की लताएँ पुष्पवती होते हुए भी रजस्वला नहीं होतीं और मुख वाली होती हुई भी टेढ़ी व चञ्चला नहीं हैं। इन पर सदा भ्रमर गुञ्जार करते हैं, पर ये किसी भ्रमर के लिये नहीं भ्रमतीं। हवा से हिलती हैं किंतु जगत् की हवा से दूर ही रहती

हैं तथा संपूर्ण कामनाओं की पूर्ति करने वाली हैं। मणिमय आल-वाल के ऊपर वृक्षों की डालियों के फल और फूल ऐसे जान पड़ते हैं मानों सुख पूर्वक सो रहे हैं। किसी की जड़ में भूषण के समान नारियल के फल चारों ओर से पड़े हुए रमणीयता बढ़ा रहे हैं तो किसी वृक्ष की शोभा ऐसी प्रतीत होती है मानो सुन्दर कटिवाली कामिनी ही हो और फलों से उसकी डालें ऐसी झुकी जा रही हैं जैसे यौवन के भार से वह युवती। उसने पुष्पों को मानो कण्ठ का आभू-षण बना रखा है। उसके चारों ओर वृक्ष सुन्दरता बढ़ा रहे हैं।

नारङ्गी की लता पर नारङ्गी के फल ऐसे सुन्दर चमकते हुए लटक रहे हैं मानो वनरूपी आकाश में लाल वर्ण वाला मंगल तारा हो। सुन्दर लवंग लता मानो अपनी विचित्र भङ्गी की नृत्य कला से नेत्रों का मनोरंजन कर रही है। अनार के वृक्ष के पुष्पों पर भ्रमर गुञ्जार करते हैं और फलों पर तोते (शुक) चोंच मार रहे हैं। ये अनार ऐसे प्रतीत होते हैं मानो हाथी के बालक हों और तोते जब चोंच द्वारा उन्हें विदीर्ण करते हैं तो उनके दाने ऐसे प्रतीत होते हैं जैसे उन हाथी के मस्तक फोड़ने से गज मुक्ताएँ (मोती) निकल रही हैं।

खजूर के वृक्ष षडूर्मि वाले (रेखा) होते हुए भी षडूर्मि अर्थात् १. शोक, २. मोह, ३. क्षुधा, ४. पिपासा, ५. जरा, ६. मृत्यु इन छ उर्मियों से रहित हैं। कहीं-पर मधुर रस वाली कोमल-कोमल अंगूरों की लताएँ वन की मनोहरता बढ़ा रही हैं, कहीं फलियों वाली लताएँ फलियों से भरी हुई चारों ओर विकसित हो सुन्दरता को बढ़ा रही हैं और कहीं ललित केले के वृक्ष सुशोभित हो रहे हैं। शोभा उपवन में (शोभा नाम के बगीचे में) नारायण के तप से दिव्य वृक्ष वाला जो दिव्य रङ्गमञ्च बना था, उससे भी अधिक छटा हमारे वृन्दावन में है।

छः ऋतुओं की शोभा वर्णन

श्रीरूप मंजरी सखी ने कहा—

हमारी वृन्दावन महाराणी की विहार स्थली श्री वृन्दावन के छः भाग हैं। प्रिया-प्रीतम की क्रीड़ाओं में उपयोगी छहो ऋतुओं के पुष्प फल आदि एक-एक विभाग में सुशोभित हैं। वर्षा ऋतु वहाँ हर्ष है, शरद ऋतु आमोद है, हेमन्त ऋतु संताप है शिशिर ऋतु आनन्द की खान है, वसन्त ऋतु कान्ति है, और ग्रीष्मरितु सुभग है।

वर्षा ऋतु ! उन छहो रितुओं में भगवद् भक्ति योग के समान घनानन्दमयी (मेघों सी बल देने वाली) वर्षा रितु उपस्थित रहती है जो ब्रह्म के साक्षात्कार के समान सजनी को आनन्द देने वाले चिर प्रकाश से युक्त (सदा आनन्द देने वाली बिजली की कान्ति से युक्त) तथा पार्वती की मूर्ति के समान शिव (मयूर को समुत्सुक करने वाली, सदा तर्क के कोलाहल से भरे दात्यूह पक्षी (जल कुक्कुट अथवा जल कौवा नामक पक्षी) के कोलाहल युक्त न्याय ग्रन्थ के समान, बलवान पक्षों को धारण करने वाले (सदा चातक पक्षी के कोलाहल से युक्त) गरुड़ के समान तथा सूर्य के समान दिशाओं (अर्जुन वृक्षों) को प्रकाशित करने वाली है।

लीला के उपयोगी छोटे-छोटे रजकण, नवीन मणिमय पत्तों क्षंकुरों तथा पुष्पों पर पड़ रहे हैं और मणिमय भूमि किरणों के पड़ने से विचित्र रंगों की छटा से शोभित हो रही है। मन्द-मन्द चलने वाली इन्द्र वधुओं (वीर बहूटी जन्तुओं) के झुण्ड ऐसे प्रतीत होते हैं मानो लाल मणियाँ (माणिक्य रत्न के कण) सजीव होकर नवीन हरी-हरी मणिमय घास पर चल रही हों। शीतल पवन बह रहा है और चारों ओर कदम्ब वृक्ष की सुगन्ध छा रही है मालती के पुष्प हँसते हुए विकसित हो रहे हैं, पृथ्वी कदम्ब वृक्षों से सशोभित

है, वन पुलकित हो रहे हैं, और निरन्तर जलकण झर रहे हैं। पृथवी मानो देवाङ्गनाओं के समान प्रेम झलका रही है। इन्द्रधनुष के समान धनुषलता ही जिसके मस्तक का तिलक है, बिजली के सदृश सुशोभित केतकी जिसके केश हैं, चलती हुई बगुलों की पंक्ति जिसकी माला है ऐसी नवीन उन्नत पयोधरों वाली (मेघों वाली) भगवान का मन हरण करने वाली दिशारूपी वधू सुशोभित हो रही है।

हमारे यहां वृन्दावन में चातकों का समूह मानो विरह-वाणी बोलकर मानिनियों को आस्वादन दे रहा है। भ्रमरों की मधुर ध्वनि (भ्रमर गुञ्जार) उनकी मानरूपी भूमि को चूर-चूर कर रही है तथा नाचते हुए मत्त मयूरों का राग प्रियतम का आलिंगन करती हुई प्रिया के प्राणों को खींचने वाला है और मन्त्र पाठ की ध्वनि सदृश मानो मेघ ध्वनि सुनाई पड़ती है।

हे सखि, हमारी प्रिया की क्रीड़ा विहार स्थली इस वृन्दावन में चारों ओर टिट्टिभ (टिट्टि इत्यव्यक्त शब्द करने वाला) टिटिहारी पक्षी (※यह पक्षी अपने दोनों पंख सदा ऊँचे रखकर सोता है) तथा मेंढ़क बोल रहे हैं और आकाश से मेघों की जलधार बरसने की झप-झप की ध्वनि ऐसी प्रतीत होती है मानो हमारी प्यारी श्रीराधा को सुलाने के लिये सखियां हाथ की थपकियाँ दे रही हों। बीच-बीच में गोरी लताएँ हैं, आम के वृक्ष फलों से लदे हुए झुक रहे हैं, जामुन के वृक्ष फलों से भरे हुए श्याम छटा दिखला रहे हैं और किनारे पर स्पष्ट सुगन्ध वाले केतकी नामक उद्यान की शोभा फैल रही है। इस प्रकार विविध रंगों की छटा वन में चित्रित है।

शरदृतु का वर्णन—

हे सखि ! हमारे इस वृन्दावन धाम में भगवच्चरण-कमल की सेवा करने वाली कमलादेवी (लक्ष्मीदेवी) हरि भक्तों के निर्मल

※उत्क्षिप्य टिट्टिभःपादा वास्तेभङ्ग भयादिव (पंच)।

हृदय के समान निर्मल जल और परम उज्ज्वल दिशाएँ हैं तथा बैकुण्ठनाथ भगवान के चरणकमलों के समान प्रफुल्लित कमल एवं चक्र सुदर्शन के समान चक्रवाक पक्षी हैं।

जैसे पांडवों के दूत बनकर गये हुए श्रीकृष्ण भगवान की दुर्योधन आदि ने अवज्ञा कर दी थी ऐसे हो यहाँ पक्षी पंखों से कमलों की अवज्ञा कर रहे हैं। अध्यात्म योग के योगियों के समान यहाँ जल में हंस चल रहे हैं और रामायण में श्रीराम-लक्ष्मण के सम्वाद सदृश उनका कूजन है।

भगवान के यश के समान यहाँ पर कुवलयादि (नीलकमलों का आनन्द अथवा सुख) है, और चमकती हुई दिशाओं के समान पीले (दिशः प्रसेदुः) कमल हैं। यहाँ मत्तमधुकर क्रीड़ा कर रहे हैं। सायंकाल जैसे बादल लाल होकर जल में चित्रित हो जाते हैं ऐसे ही यहाँ लाल कमल खिल रहे हैं।

युद्ध के आरम्भ काल में जैसे चन्द्रहास तलवारें चमकती हैं वैसे ही यहाँ चन्द्रकिरणें (मन्मथ के साथ विजय रण के आरम्भ में) चमचमाती हैं। सत्य के समय जैसे पूर्ण धर्म प्रकट होता है वैसे ही यहाँ पूर्णचन्द्र (वृन्दावनचन्द्र) उदित हुआ है। जैसे सज्जन लोग दुर्जनों के वचन से तप्त किये जाने पर भी शीतल रहते हैं वैसे ही बड़े-बड़े सरोवरों के शरदऋतु में जल शीतल रहते हैं और जैसे कन्याएँ कपास से यज्ञोपवीत बनाने के लिये रुई निकालती हैं वैसे ही आकाश में मन्द-मन्द पवन के झकोरे सफेद-सफेद बादल के टुकड़े निकलते हैं। और यहाँ यमुनाजी के जल में मेघों के श्वेत प्रतिबिम्ब पड़कर ऐसे प्रतीत होते हैं मानो आकाश की श्वेत गंगा ही यमुना जी के गर्भ में वास कर भगवान के अवगाहन का सौभाग्य चाहती हो। तथा हल्लक (लालकमल) कल्हार आदि कमलों की सुगन्ध भ्रमरों को और तरु पवन के द्वारा वन में व्याप्त होकर

हाथियों को मत्त कर रहा है। वहाँ सारस हंसों का कूजन मानो मूर्ति मती शरद देवी की वाणी हो ऐसा लगता है, मधुकर श्रेणी ही मानों उनकी भृकुटि हैं। कमलों का कोष ही मुख है, नील कमल ही नेत्र हैं, और नील, पीत, लाल, पराग ही उनके वस्त्र हैं, कर्दम ऋषि के चलने पर देवहूति जैसे पुत्र कपिलदेव का मुख देख कर ठहर गई थी वैसे ही शरद देवी कमलों का मुख देख कर ठहरी हुई हैं। मानों गुलाब के फूलों को बिछा कर, आकाश के तारों को बिछा कर, मुक्ता जटित वितान लगा कर तथा सुगन्धित हवा का चँवर बना कर अतुल कांति वाली ऋतु देवी शयन कर रही है।

ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की हरी-हरी शाखाएँ जैसे हाथ उठा कर कह रही हो कि—ओ, मेघ तुम बरस कर हरियाली को देख सुख लेने दूर क्यों जा रहे हों ? यहाँ आवो, देखो हम भी तो हरी भरी हैं इसलिए वर्षाऋतु का सुख तुम्हें यहीं मिल जावेगा।

हेमन्त ऋतु का वर्णन—

अत्र बसन्ते भीम इव महासहा मोद मेदुरः। अर्जुन इव मधु-सूदन प्रिय सहचरः। महेश इव अनुगत बाणः कैलाश इव सहावलोध्रः श्रीभागवत इव मधुर शुकोदितः। आयुर्वेद इव प्रवीण हारीतः। साधु सङ्ग इव मदलावः। भगवदुपासक इव क्रम शीतली भवज्जी-वनः। अहरहरुपचीयमान दोषोऽपि निर्दोषः।

पद्मिनी ग्लानि करोऽपि क्षणदा दैर्घ्येण पद्मिनी महोत्सवकरः। स खलु हेमन्त सन्तोषो नाम।

[आनन्द वृन्दावन चम्पू]

हमारे यहाँ भीम के समान महासह वृक्ष (जिसके फूल कभी नहीं मुरझाते वह महासह है) सुशोभित हो रहा है। श्री मधुसूदन कृष्ण के प्रिय सखा के समान आमोद-भरा अर्जुन नाम का वृक्ष शोभा

पा रहा है। भगवान सदाशिव का सेवक बाणासुर सदृश कैलास पर सुशोभित होने वाला लोध्र वृक्ष सुशोभित हो रहा है।

यहाँ पर भी श्री भागवत पुराण के माधुर्य-रस का आस्वादन करने वाले शुक मुनि के समान किंशुक और आयुर्वेद शास्त्र के निपुण ज्ञाता हारीत ऋषि के समान हारीत पक्षी तथा साधु-सङ्ग के समान सदा प्रेमोन्मत्त करने वाले लाव नाम के पक्षी विद्यमान हैं। क्रमश: शीतल होते हुए भगवद्भक्त के समान हेमन्त में यहाँ का जल उत्तरोत्तर क्रमश: शीतल होता जा रहा है।

यहाँ हेमन्त ऋतु के दिन छोटे होते हुए तथा सदोष होने पर भी निर्दोष हैं क्योंकि कामिनियों के लिये महोत्सव स्वरूप रात्रि को बढ़ा देता है। और दिन में सूर्य किरणों के देर तक न रहने से बधु जनों के शीत से व्याकुल हृदय लम्बी रात्रि होने से प्रीतम का आलिङ्गन कर उनकी ठण्डक को नष्ट कर देता है। अत: वधु गण सदा चाहती हैं कि रात्रि बड़ी हो। ये व्रज सुन्दरियाँ जिस प्रकार कुरवक के पुष्पों को अपने मस्तक के केशों में लगा कर और वनफूलों की माला अपने वक्षस्थल पर धारण करके प्रसन्न होती हैं वैसी मणियों के भूषणों से सुखी नहीं होती हैं। वे ब्रज सुन्दरी गण इस हेमन्त में अपने अङ्गों पर कस्तूरी आदि का लेप कर, निकुञ्ज गृहों में सुगन्धित धूप, ताम्बूल, इलायची आदि सुन्दर पदार्थों का सेवन कर सुख लेती हैं। अत: हेमन्त ऋतु भी हमारे वृन्दावन में अपने शीत गुणों का प्रयोग कर नहीं पाता।

श्लोक— क्रमाद्भानो रुष्मा ह्रसति हिमयोगेन महता।
क्रन्ते वक्षोजद्वय परिसरेष्वूष्मविभवा: ॥
क्रमाद्दैर्घ्यं रात्रेर्भवति ह्रसिमा वाम्यरहसो।
वधूनां शीतार्त प्रियतम परिष्वञ्जन विधौ ॥

शिशिर ऋतु—

हे सखि ! हमारे वृन्दावन में बन्धुजीव नाम का पुष्प ऐसा प्रफुल्लित हो रहा है जैसे अपने मित्र के समागम में मित्र प्रसन्न होता है, कुन्द पुष्प ऐसी अतिशय छबि दे रहा है मानो विश्वकर्मा (देव-मिस्त्री) ही हो और नवद्रोण नामक पुष्प भी ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे साक्षात् बैकुण्ठनाथ श्रीविष्णु ही हैं।

यत्र सुहृत् समागम इव समुल्लसित बन्धुजीवः। विश्वकर्म्मेव कुन्दापित प्रभाकरः। भगवद्वैकुण्ठनाथ इव सर्वदा नवदमनकः। महा वर्षागम इव समुल्लसित मरुवकामोदः।

जैसे लङ्का का युद्ध होने पर मुनि लोग धीरे-धीरे बढ़ने लगे थे ऐसे ही यहाँ आनन्दित होकर भारद्वाज (एक जाति का पक्षी का नाम भारद्वाज है।) पक्षी बढ़ने लगे हैं। जैसे अपनी प्यारी पत्नी के वियोग से खिन्न हुए चित्त वाला पुरुष उत्तर—हिमालय की ओर तपस्या के लिये प्रयाण कर जाता है वैसे ही समस्त जन सेवित चरण श्रीसूर्यदेव उत्तरायण की ओर प्रयाण करने लगे हैं।

यहाँ नदी तालाबों में जलबाष्प (कुहरा) पड़ने से जल नहीं दीखता और अग्नि की पहिचान धूएँ से होती है ऐसे ही नदियों में जल की पहिचान अनुमान से ही की जाती है।

प्रातःकाल तरुण हरिणी गण चकित नेत्रों से प्रभात होने की प्रतीक्षा करती हैं कि कब सूर्य किरणों का सेवन करे।

तृणों व पत्तों पर हिमकण विमल मुक्ताओं के जाल समान शोभित हो रहे हैं। प्रातःकाल सूर्य अपनी कोमल किरण रूपी अंगुलियों से उनको लज्जित जान कर प्यार करते हुए देर तक विलमाए रखते हैं। अत्यन्त शीत में घना हिमपात होने से वृक्षों के नीचे अपार जाड़े के कारण कृष्णसार (कस्तूरिया) मृग समूह बद्ध होकर सन्ध्या

काल तक भी अति सुख पूर्वक समय व्यतीत करते हैं।

देखो सखी, अहा—शिशिर की रात्रि में हमारी लाड़िली निकुंजेश्वरी प्राणनाथ श्री श्यामाप्यारी के साथ उनके प्राणपति श्यामसुन्दर प्रियतम शयन कर रहे हैं। ऐसे समय मान अपने आप दूर हो गया है। परस्पर गोष्ठी कथाओं प्रिय संलापों के द्वारा भी रात्रि समाप्त नहीं होती। गाढ आलिङ्गन परिरम्भण में विघ्न करने वाली मालाएँ तथा कुंकुम आदि उरोजों का आलेपन भी दूर कर दिये गये हैं। केवल स्पर्श की गरमी ही इनको प्रिय है, ऐसी अति प्रेम-प्रदायिनी शिशिर ऋतु की निशा है।

श्री राधा किशोरी के सम्मुख सूर्य का प्रकाश आता है, आँखें अच्छी प्रकार से खिलने भी नहीं पातीं कि सूर्य चला जाता है। आश्चर्य की बात है कि श्री राधाप्यारी दिन में सूर्य का सेवन पीठ से करती हैं। वे केशों तथा हृदय पर नवीन कुन्द की माला धारण करती हैं। वे मणियों के भूषण धारण नहीं करतीं क्योंकि वे अपने प्यारे श्यामसुन्दर को ही परम भूषण मानती हैं।

श्लोक— गाढालिंगनरंगमेवशयनं मानोऽप्यमानं गतो।
दीर्घैव प्रियसंकथा न रजनी क्षीणाति निद्राग्रहः॥
आलेपः परिरम्भण व्यवहितः कर्तेति दूरे प्रियः।
स्पर्शोष्मा प्रिययोः समत्र शिशिरं कालोऽप्यति प्रेमदः॥

(आनन्द वृन्दावन चम्पू)

बसन्त ऋतु—

यहाँ पर मनोहर प्यारे श्यामसुन्दर का संयोग श्री राधा प्यारी के सङ्ग है उसके समान नवीन कलियों के समूह से आच्छादित सरस रसाल वृक्ष है, भगवद्भक्ति तथा तत्व ज्ञान के अभ्यास से शोक मुक्त के समान प्रफुल्लित लाल अशोक वृक्ष है। शास्त्रार्थ में निपुण कोविदों के समान कोविदार (कांचनार या कचनार) के वृक्ष प्रफुल्लित हैं।

प्रिया-प्रीतम के अनंग विजयी महास्मर युद्ध में प्रवेश करते हुए मत्तकरिणी गज के समान पुन्नाग पुष्प के वृक्ष समूह हैं और मधु-रस के आमोद प्रमोद से मत्त मन्दार वृक्ष (पारिजातवृक्ष) है।

यहाँ पर बसंत ऋतु में सप्त स्वरों का आलाप अहर्निश स्पष्ट श्रवण गोचर होता रहता है तथा मतवाले हाथी के कपोलों से बहते मद के समान विकसित करील (केर) के वृक्ष सुशोभित हैं। सदा मन्द सुगन्ध वाले पुष्पों को शीघ्रता से बुलाने वाला वसंत नामक ऋतुराज है।

श्री लाड़लड़ैती नवकिशोर नवीन किशोरी द्वारा सदा सेवित और सखी सहचरि द्वारा सेवित इस वृन्दावन कानन का पवन मन हर लेता है। यह श्री वृन्दावन राधाकृष्ण के अनेक रूपों का अपनी शोभा द्वारा सेवन करता है। पुष्पित शृङ्गार के अनेक अमित भावों द्वारा निरन्तर विहार इस विपिन में विचित्र पुष्प हारों वाला वसंत छाया है जहां दिशा रूपी रमणी निर्मल होते हुए भी पुष्परज से आच्छादित है। मधुकरों से पूर्ण नीरज छाये हुए हैं जो पुष्पों के पराग से भरे होने पर भी निर्मल हैं। पुष्पों के मकरन्द को न पीकर मधुकर मत्तता के कारण कामवश हो ब्रजाङ्गनाओं के आनन की सुगन्ध पर मुग्ध हो रहे हैं।

यहां वसंत में प्रफुल्लित किंशुक (पलाश) के पुष्पों को शुक की चोंच के समान देखकर भ्रमर तर्क करते हैं कि यह कहीं शुक की चोंच तो नहीं है। देख सखी हमारे प्रिया-प्रीतम निम्नोक्त लीला को देख देखकर कैसे प्रमुदित होय रहे हैं कि, आम्र की डाली पर बैठी हुई कोकिला कलित कण्ठ से तान अलाप रही है। दूसरी कोकिला उसके स्वर में स्वर मिलाकर गाना ही चाहती है कि भ्रमर पिक का शब्द सुनकर वसंत आया ऐसा जान वह भ्रमर आम्र की कली पर बैठ गया। वह कोकिला उन्मत हो कली पर चोंच मार

फल समझ भ्रमर को निगल गई, पुनः यह फल नहीं भ्रमर है, ऐसा जानकर गाने लगी और उसकी आवाज के साथ भ्रमर ऐसा मुँह से बाहिर निकला मानो मूर्तिमान राग निकला हो। यह देखकर प्रिया-प्रीतम ताली दे दे कर और हँस-हँस कर आनन्द सागर में डूबे रहे। देखो देखो यह मनोहर झाँकी या समय की देखकर अपने नेत्र और हृदय को सिरावोरी ऐसी बातें सखियाँ कर रही हैं।

संस्कृत गद्य—किंशुक चुञ्चवः किंशुक चुञ्चवः किमपि वानान्त इत्यसं पलाशं पलाश विपिन मनुतर्कयंति चञ्चरीकाः।

श्लोक—माकन्दानां कलितकलिकास्वादनैः कोकिलोऽयं।
चञ्चच्चञ्चुर्यदयमनदत् कण्ठमूलधुनानः ॥
ग्रासीभूतः सहकलिकया यत्रलब्धावकाशो।
मूर्तो नादं कुहुरिति बहिर्याति यत्र द्विरेफः ॥१००॥

जिनका मद कल-कल कर चू रहा है तथा जिनके कण्ठ में कोकिल रव सदृश घण्टे ध्वनि कर रहे हैं ऐसे कामोन्मत्त (प्रेमोन्मत्त) गजेन्द्र वृन्दावन में शब्द करते हुए विचर रहे हैं।

यहाँ श्लेष है, प्रेमी भक्त प्रेमोन्मत्त होकर राधे-राधे पुकारते हुए देह-दशा भूलकर वृन्दावन में विचर रहे हैं।

श्लोक—मदकलकल कण्ठकण्ठ घण्टाध्वनि निकरानुमितस्वतन्त्रचारैः।
प्रतिसरति स यत्र मत्तवामा कलकलदैः स्मरगन्ध सिन्धुरेन्द्रः ॥१०१॥

(आनन्द वृन्दावने)

और यहां पुन्नाग पुष्पों के भूषण बनाकर माधवी की माला धारण किये, मौलश्री का गुच्छा लिये ललाट पर सिंदूर किंशुक लगाये, चम्पा के पुष्पों की कुच कंचुकी बनाये और कटि पर सुनहले वञ्जुल लगाकर वस्त्र धारण किये मूर्ति मति वृन्दाटवी श्री वासंतीदेवी ऐसी विराजमान है मानो वसंत रूपा राधा ही विराजमान हो जिसकी मुसकान (मंदहास्य) प्रफुल्लित पुष्प ही है, मकरन्द ही पसीना है,

और अंकुर ही हर्ष से उल्लसित रोम है ऐसी भाग्यवती वनलता क्या सुन्दर नहीं है यह संलाप श्रीराधा प्यारी श्यामसुन्दर से करती हुई अमृत पूर्ण वचनामृत अपने कर्ण कलशों में परस्पर भर रहे हैं। यह रहो गोष्ठी जो साक्षात् पियूष लहरी ही है सखीजन कान लगाकर सुन रहीं हैं।

ग्रीष्मऋतु—

गर्मी के दिनों में यहाँ काश्मीर देश के समान निरंतर उत्पन्न होने वाली सुगंध युक्त पीतवर्ण की केशर प्रफुल्लमल्लिका से सुशोभित शरत् काल के समान सम्पन्न गुलाब, स्वर्ग में प्रफुल्लित इन्द्र के समान इन्द्रवृक्ष और लक्ष्मी के करों समान शतदल (कमल) शोभा देते हुए धूमवाट पक्षी स्वतन्त्र भ्रमण करते हैं ऐसा तुङ्गविद्याजी ने कहा।

जैसे साधु सङ्ग में मज्जन करने से भक्तों को सुख मिलता है वैसे ही ग्रीष्म में हम लोग प्रिया-प्रीतम के साथ यमुना जी में अवगाहन करके परम सुख को प्राप्त करती हैं।

हे सखी! यहाँ ग्रीष्म काल ने शीतकाल से युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया और शीतकाल ग्रीष्म से पीड़ित हो भागकर व्रज सुन्दरियों के स्तन दुर्ग का आश्रय लेकर वहां रहने लगा। कपूर के महीन-महीन रेणु जैसे सूक्ष्म अति सूक्ष्म जल बिन्दुओं को झरने वाले जल-यान और मोतियों के मण्डप वाले सरोवरों के वीच ग्रीष्मऋतु में अपनी प्यारी श्रीराधिका जी के सङ्ग श्री श्यामसुन्दर सुख से शयन करते हैं।

मस्तक पर जिनके केश मनोहरता से इधर-उधर छिटके हुए हैं, बड़ी-बड़ी मोतियों की मालाओं से विभूषित जिनका पीताम्बर स्वर्ण के जल की लहरियों की तरह झलक रहा है और मल्लिका की कलियां तथा चन्दन का लेप जिनके अङ्गों में शीतलता दे रहा है ऐसे श्रीकृष्णचन्द्र जिनका भूषण केवल श्रीप्यारीजी ही हैं, वन में खेल रहे हैं।

जिनके कानों के भूषण शिरीष के फूल और शिर का भूषण गुलाब के फूल हैं, मल्लिका की माला व कुटज ही जिनके अङ्गद (बाजूबन्द) हैं। जो आप ही अपने भूषण धारण किये हैं और जिस की सखियाँ बन की क्यारियाँ हैं। ऐसी सुशोभित ग्रीष्म ऋतु रूपी देवी सायं काल के समय प्रिया प्रीतम श्री राधाकृष्ण के चरणों की सेवा कर रहा है।

इस प्रकार छः ऋतु श्री वृन्दावन की सेवा करती हैं। नवीन वृन्दावन कानन ही मूलभूत (अङ्गी) अङ्ग (षड् ऋतुओं से सुशोभित है) यह अङ्ग अङ्गीभाव द्वारा समझना चाहिये। अपने सीमन्त (मस्तक) में नवीन कदम्ब-भूषण धारण कर तलवों (पाँव के तलवों) में नील कमल, कपोलों पर नवीन-नवीन चिकना लोध पुष्प का पराग, गले में बन्धूक पुष्प की मालायें, कानों में वंजुल (अशोक) के पल्लव और केशों में मल्लिका की लताएँ धारण करके सुन्दर वृन्दावन रूपी वधू प्रतिदिन निरन्तर ही श्री श्यामसुन्दर की सेवा (उपासना) करती है।

संस्कृत पद्येषु— **कर्पूर त्रसरेणु बन्धुभिरेषां निस्यन्दिभिर्बिन्दुभिः।**
श्चञ्चञ्चाम चारु मारुत धुतैर्मुक्त वितानैरपि॥
आकीर्णे जलयन्त्र वेश्मनि सरोवाप्यादि मध्यस्थिते।
कृष्णे यत्र मुदा निदाघदिवसे शेते समं कान्तया॥११०॥

भाल प्रान्तनिबद्ध कुन्तलभरो मुक्तस्रजा स्थूलया-
वासः काञ्चन वारि हारि पवनस्पन्दानुमेयं दधत्।
मल्ली कोरक मालया द्रुततर श्रीखण्डपङ्केन च
द्वित्रेण प्रियमण्डनेन च कृत्याकल्पो हरिः क्रीड़ति॥१११॥

कर्णालंकरणं शिरीषकुसुमैरुत्तंसनं पाटलै-
र्माला मल्लिभिरंगदादि कुटजैः सम्पादयन्त्यात्मनः।

आलीभिर्वनराजिभिः सद्दग्भूषाभिरीशाङ्घ्रयः
सेव्यन्ते दिवसावसान समये यस्मिन्निदाघ श्रिया ॥११२॥

गद्ये—एवं द्वन्द्वशो द्वन्द्वाश्च ऋतुभिर्भेदिता अपरेऽपि त्रयो विभागा इति नव काननमेव वृन्दावनम् । मूलभूतन्तु षड्भिरेव ऋतु-भिरुपसेवितमित्यङ्गाङ्गि भावेन दश विभागमिति ।

यत्र षड्ऋतुके विभागे—सीमन्ते नवनीपकं करतले नीलारविन्दं नव-
स्निग्धं लोध्ररजैः कपोलफलके बन्धूकमालां गले ।
कर्णे वंजुलपल्लवं स्तबकिनं मल्लीस्रजं कुन्तले
बिभ्रत्यो व्रजसुभ्रुवः प्रतिदिनं कृष्णं सदोपासते ॥११४॥

यमुना— यस्मिन्मंजुलकुञ्जमण्डपकुलं नाना मणीन्द्रालयस्पर्द्धा वर्द्धित
सौभगं पिककुलैर्भृंगैश्च निष्कूजितम् ।
यस्मिन्नोषधयो ज्वलन्तिरजनौ दीपायिता सौरभं
कस्तूरी हरिणांगनाविदधते लूमैश्चमर्यो मृजाम् ॥११५॥
(आनन्द वृन्दावन चम्पू)

यमुनाजी का वर्णन

हमारे इस वृन्दावन धाम में मंजुल कुञ्जों के मण्डप-समूह मनो-रम मणियों के मन्दिर की समानता वाले हैं, जिनमें कोकिलाएँ कूज रही हैं। मृग नाच रहे हैं। औषधि लताएँ रात्रि में दीपक के समान प्रकाशित हो सुन्दर सौरभ छिड़क रही हैं और अपने पूँछ रूपी चँवरों से लताओं को बुहार रही हैं। ऐसे श्री वृन्दावन के मध्य में इन्द्रनील मणि के हारों की तरह अथवा इन्दीवर (नील कमल) की माला की तरह अथवा कज्जल की रेखा की तरह अथवा नीली छड़ी की तरह यमुना सरिता को लेकर वृन्दादेवी सुशोभित हो रही हैं। अर्थात् यमुना जो मानो वृन्दा देवी के हाथ में धारण की हुई नीली छड़ी हैं।

संस्कृते गद्यं —एवंभूतस्य वृन्दावनस्य मध्ये इन्द्रनील मणि हार यष्टिरिव इन्दीवरमालेव कज्जल परिखेव असित शाटीव वृन्दाटवी देव्या: काचन यमुना नाम नदी ।

गद्य हिन्दी— यमुना जी गम्भीर तरङ्ग वाली, सुन्दर कमलों वाली, नवीन शोभा वाली, और श्वेत रङ्गके हंसों वाली हैं, जिनमें मत्स्य किलोल कर रहे हैं। वे मज्जन से सुख देने के साथ-साथ प्रणत जनों को भी सुखानन्द प्रदायिनी हैं।

श्री यमुना जी के तट की विविध लताएँ ही मानो उनकी कंचुकी में चित्रित हैं। उनका विशाल वक्ष:स्थल शैवाल-लता से आच्छादित है। हंस पंक्ति का कूजन ही मानो उनकी कटि-किङ्कणी की ध्वनि है। कलित कमलों का पराग पटल ही मानो वस्त्र हैं, भ्रमरी की श्रेणी ही मानो वेणी है, नील कमल ही मानो नेत्र हैं, प्रफुल्लित कमल ही मुख है, और अरुण कमल ही मानो अधर हैं ऐसी मूर्तिमती सुन्दरता देवी के सदृश श्रीयमुना जी तरल तरङ्ग रूपी हाथों से कमल के फूलों द्वारा श्री प्रिया-प्रीतम का निरन्तर आराधन कर रही हैं।

श्री यमुना जी के जल में पुष्प फल वाले तट के वृक्षों का प्रतिबिम्ब ऐसा लगता है मानो वहाँ एक दूसरा वन हो, ऐसा समझ कर प्रतिबिम्बित वृक्षों पर के पक्षी, भ्रमर, फल, पुष्प, आदि को देख मछलियां उन उन फलों और पक्षियों को पकड़ने के लिये जल-प्रवाह में मुख मार कर क्षण मात्र के लिये ठहर जाती हैं। रात्रि में शान्त यमुना जल में तारागणों का प्रतिबिम्ब मछलियों को ऐसा प्रतीत होता है मानो खीलों (चावल की लाजा) के दाने हों जिन्हें देखकर वे (मछलियाँ) खाने को दौड़ती हैं।

संस्कृते—या खलु सतरङ्गापि न तरङ्गाधायिका। सकलमपि नश्यत्कमला। ससारसापि विस्तार सारस्यामज्जनसुखदापि नममज्जन

सुखदा । विविध लतिकाकार चित्र विचित्रित कंचुलिकयैव चिन्मणि शैवाल लतिका वितत्या परिवृत वक्ष:स्थल विलासिरथाङ्ग पयोधरा कलित कल्हारादि पराग पटल चित्रपटा । भ्रमद् भ्रमर घटाबद्धवेणि-रिन्दीवर नयना विकसदरविन्द मुखी । प्रफुल्ल हल्लक लसदधरोष्ठी सारस सारस नञ्चित पुलिन नितम्बा कलहंस हंसका मूर्तेव रमणीयता देवी तरल तरङ्ग हस्तेनैव जलज कुसुमैः श्रीकृष्णांराधमनिमेव कुर्वाणा जरी जृम्भ्यते ।

यस्याश्चोभयोरेव कूलयोः कुसुम भरभज्यमान विटपाविटपि-पटल प्रतिबिम्बेन सलिलान्तरेऽपि कुसुमितं काननान्तरमिव व्यञ्जयन्त्यां सह प्रतिबिम्बितं विहगकुलमपि वैसारिणा यत्र जिघत्सवस्तुण्डेन खण्ड यन्तः क्षणवतिष्ठन्ते । रजनावपि बिम्बित नक्षत्र ग्रह निकरमपि सर्वतः केनापिविकीर्ण लाज जालमिव मन्यमानाः सफरा अपि प्रत्येकमत्तु-मुत्कण्ठन्ते ।

हिन्दी गद्य—कपूर के चूर्ण के समान चन्द्रमा की चांदनी किनारों के जल में पड़कर सुशोभित हो रही हैं मानो उन वृन्दादेवी के अङ्गों में चन्दन लगा हो अथवा उनकी वेणी में विराजमान मालती की माला के खण्ड हों ।

उज्जृम्भमाणरस वारिनिधेस्तरंगै-
रंगैरिवप्रणयलोल विलोचनायाः ।
तस्याः कदानुभविता मयिपुण्य दृष्टि-
वृंन्दाटवी नवनिकुञ्ज गृहाधिदेव्याः ॥११॥

तस्याः वृन्दाटवीनव निकुञ्जगृहाधिदेव्याः पुण्यदृष्टिर्मयि कदानु निश्चितं भविता भविष्यति । कथंभूतायाः उज्जृम्भमाण रसवारि-निधेस्तरंगैरिव अंगैः सह प्रणयलोल विलोचनायाः ।

कृपां करोत्वित्र कृपास्वरूपमादिशति। उज्जृम्भेति। नुवितर्के तस्याः पुण्य दृष्टेर्मयि कदा भविता। पुण्यदृष्टिर्नाम विषय विकार रहिता यथादीने तस्याः कस्याः वृन्दाटवी नवनिकुञ्ज गृहाधि देव्याः। वृन्दारण्ये यन्नवनिकुञ्जमेवगृहं तस्याधिदेवीसैव तदनुग्रहं विना कस्यापिप्रवेशोदुर्घट इतिभावः। पुनः कथंभूतायास्तस्याः। तरंगैरिवांगैः। उज्जृम्भमाणरस वारिनिधेः अंगान्येव तरंगानि तैरुज्जृम्भमाणः प्रसरद्रूपो यो रसः तस्य वारिनिधेः समुद्ररूपायाः पुनस्तत् साहजिकं द्योतयन् विशिनष्टि। पुनः कथंभूतायास्तया:। प्रणयलोल विलोचनायाः। प्रणयार्थं लोले चञ्चले विशेषेण लोचने यस्याः ॥११॥

रस वारिनिधि के अंगसों उछरत सरसत रंग।
करिकैं प्रीत चपल बड़े कारे श्वेत सुरंग॥
पुण्यदृष्टि कब होयगी ताकी मोपे आई।
वृन्दाविपिन निकुञ्ज की गृहदेवी सुखदाई ॥१॥

※ सोरठा ※

रस सागर अंग-अंग, नवल छबीली बालके।
सोभा ललित तरंग, छिन-छिन प्रति अति ही सरस॥
नेह भरे चित चोर, चपल नैन मन मोहन।
कब दृग करुणा कोर, हेरें वन कुञ्जेश्वरी ॥?१॥

हिन्दी में सरल अर्थ—

प्रियाजी की पुण्य दृष्टि की अभिलाष-जिनके नयन प्रेम-रस से चञ्चल हो रहे हैं और जिनके अङ्ग उत्फुल्लमान रससागर की तरंगों के सदृश हैं, उन श्री वृन्दाटवी नव-नव निकुञ्ज भवन की अधिष्ठात्री देवी की निर्मल विकार रहित दृष्टि मुझ पर कब होगी ॥११॥

वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दं—
प्रेमामृतैक मकरन्द रसौघ पूर्णम् ।
हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रं—
निर्वापयत्परम शीतलमाश्रयामि ॥१२॥

पदच्छेद- वृन्दावनेश्वरि तव एव पदारविन्दं, प्रेमामृतैक मकरन्द रसौघपूर्णम् हृदि अर्पितं, मधुपतेः स्मरतापं, उग्रं, निर्वा-पयत् परमशीतलं, आश्रयामि ।

अन्वयार्थ—हे वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दं अहं आश्रयामि, कथंभूतं, प्रेमामृतैक मकरन्दरसौघपूर्णं मधुपतिना, हृद्यर्पितं सततं मधुपतेः स्मरतापं निर्वापयत् अतः परम शीतलम् ॥१२॥

इदानीं स्वस्य अनन्यतां सूचयन् प्रार्थयति । वृन्दावनेति, हे वृन्दावनेश्वरि, अहं तवैव पदारविन्दमाश्रयामि, एव कारेण नान्यस्ये-त्यर्थः कथंभूतं पदारविन्दं । प्रेमामृतैक मकरंद रसौघपूर्णम् । प्रेमा-मृतस्य एकोयो मकरंदः तस्य यो रसः तदौघेनव्याप्तमित्यर्थः । पुनः कथंभूतं पदारविंदं । हृद्यर्पितं सन् मधुपतेः उग्रं स्मरतापं निर्वापि-यत् । कथमेवं तत्राह । पुनः कीदृशं पदारविंदम् । परमशीतलम् । सहजतापं बहिःस्थं निवारयति यत्तच्छीलम् । उग्रं स्मरतापं श्रीकृष्णस्य निवारयत्यस्मात् । परमशीलमेकमेव वस्तुरसभेदेन द्वयोस्तोषकृज्जन्य जनकादिवत् ।

(कृपा० सं० टीका)

※ दोहा ※

श्रीवृन्दावन ईश्वरी तुम्हरे पद अरविन्द ।
प्रेम अमृत सारसों भरे ओघ मकरन्द ॥१॥

उग्र तपन कंदर्पसों मधुपति निज उर धार।
हरत पात शीतल करत हौं अब शरण तिहार ॥२॥

❀ सवैया ❀

वृन्दावनरानी तव पद-पङ्कज प्रेमसुधा मकरन्द भरे।
मनमोहन के हिय माँहि बसे वरमनमथ ताप हरे सिगरे ॥
सोईशीतल चरन सरोज सदा आश्रित ह्वै अंतस माँहि धरे।
रंगभीने सुन्दर रूप पगे मृदु नैनन सों छिनहूँ न टरे ॥१२॥

(गो० श्री किशोरी)

सरल हिन्दी भाषानुवाद—

हे वृन्दावनेश्वरी ! आपके चरणारविन्द एकमात्र प्रेमामृत पुष्प मकरन्द पुञ्ज से परिपूर्ण हैं, जिनका मधुपति श्रीकृष्ण अपने हृदय में धारण करते ही उनका तीक्ष्ण काम (प्रेम) ताप दूर हो जाता है। मैं (ग्रंथकार आचार्य) आप श्री के उन्हीं परम शीतल चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करता हूँ (सखी रूप से तो करती हूँ) मेरे लिये तो इन चरणारविन्दों के अतिरिक्त कोई गति नहीं है।

हे श्री वृन्दावनेश्वरी राधे प्रेमामृतैक मकरन्द रसौघपूर्ण प्रेम रूप अमृतस्य एकः रसोभूतो यो मकरन्दः स एव रसः तत्प्रवाहेन पूर्णं यत् तं हृद्यर्पितं वक्षसि स्थापितं मधुपतेः रसिकभृङ्गस्य श्रीकृष्णस्य उग्रं प्रखरं स्मरतापं कन्दर्प ज्वालां निर्वापयत् तस्मात् परमशीतलं तवैव पदारविन्दमहमाश्रयामि भजामि। इत्यर्थः।

❀ तात्पर्य ❀

जिस कृपा दृष्टि के लिए पिछले श्लोक से प्रार्थना की गई उस कृपा दृष्टि को प्राप्तकर अपने को कृतकृत्य महोदार श्रीहिताचार्य उत्साह पूर्वक उन्हीं श्री चरणों का वर्णन करते हैं। और उन्हीं श्री

चरणों का प्रत्यक्ष ही आश्रय ग्रहण करने की प्रार्थना भी कर रहे हैं। उज्ज्वल प्रेम रत्न की खान सदा और निरंतर ही वाम प्रभावती होती है।

पद (पयार)

गोपीगण मध्ये श्रेष्ठ श्रीराधा ठाकुराणी।
निर्मल उज्ज्वल रत्न प्रेमरत्न खानि वयसि मध्यमा॥
सेहो स्वाभावैते के समा गाढ प्रेम स्वभावे।
तेहो निरंतर वामा वाम्य स्वभावे मान उठे निरंतर।
तार मध्य उठे कृष्णेर आनन्द सागर॥

कुंज में आगमन के लिये निर्दिष्ट समय में किञ्चित् विलम्ब करके श्यामसुन्दर संकेत कुंज में आये। श्री वृषभाननन्दिनी को प्रियतम के पधारने से अतीव आनन्द और हर्ष उत्पन्न होने पर भी हृदय में विलम्ब से आने के कारण रोष और मान (वाम्यभाव) का उदय हो गया, विदग्धराज (चतुर शिरोमणि) श्रीश्याम-सुन्दर ने विनोदिनी श्रीराधा ठकुराणी का मान दूर करने (छुड़ा देने) के लिए विविध भाँति अनेक भंगिमा युक्त मधुर-मधुर वाक्यों द्वारा अनुनय विनय प्रदर्शित किया किन्तु श्रीराधा जी का मान मनाने में श्यामसुन्दर को सफलता प्राप्त न हुई। और उनमें रस का संचार करने में पूर्ण अशक्य हुए। श्यामसुन्दर के हृदय में कन्दर्प की तीव्रतम ज्वाला धधक उठो तब, नागरेन्द्र श्री कृष्ण अपने मनमें अत्यन्त कातर बनकर चिंतित हो गये। विचार करने लगे कि अहा मेरी प्यारी सौन्दर्य में, गुणों में, प्रेम में सर्वोत्तम है और त्रिभुवन में सर्वोत्कृष्ट है। देव-मानव कोई भी इसके बराबर हो ही नहीं सकता है, परम उदार कल्पद्रुम से भी बढ़कर दयार्द्र चेता है। फिर ये निष्ठुर कैसे होगी। अच्छा जो भी हो एक बार इनके श्रीचरणों का स्पर्श करके देखूं कि इनका मान दूर होता है कि नहीं।

इन्हीं के चरण स्पर्श की चिन्ता के कारण ही श्यामसुन्दर के हृदय में रस की तरंगें खेलने लग गईं। श्रीकृष्ण कहने लगे कि हे करुणा सागरी प्यारी जी—

॥ पद ॥

हियार मझारे उठे रसरे हिलोली।
परसिते करि साध पायेर अंगुली॥

इस प्रकार प्रिया चरणारविंद स्पर्श की वाञ्छा करने पर भी प्यारीजी का जब मान दूर न हुआ तब रसिक शिरोमणि फिर अधीर होकर के इस प्रकार विनय के साथ बोले।

श्लोक

स्मर गरल खण्डनं ममशिरसि मण्डनं।
देहि पदपल्लव मुदारं।
ज्वलति मम दारुणो मदन कदनानलो,
हरतु तदुपहित विकारम्॥

मुखारविंद में दो करांगुलि रखकर तृण छू कर बोले—

मेरो तो भूषनु धनु जीवनि तुमि हो प्यारी,
संसारी रत्नाकर रत्ननि की मालिये।
होवो अनुकूल चित्त चाहत प्रसन्नु देख्यो,
राधा सब बाधा हरु निजुजनु को पालिये॥

(गीत गोविन्द)

अर्थ—हे मानिनी आपके सब अभिलाषाओं को पूरण करने वाली जो चरणपल्लव, एवं कन्दर्प विषनाशक हैं और निदारुण अर्थात् कठिन मदनानल मुझ को जला रहा है अतएव आप पदपद्म मेरे मस्तक पर एक बार रखें उसके धारण करने ही से मेरा दुःख (विकार) दूर हो जायगा ऐसा बोलकर रसिकराज जैसे ही श्रीराधा जी के चरण-कमल मस्तक पर धारण करने को उद्यत हुए, तब श्री

मती राधाजी ने सम्भ्रम सहित उनको आकर्षण कर लिये चरण-कमल श्रीश्यामसुन्दर के वक्षस्थल पर शोभायमान होने लगे ।

नील सरोवर रूपी श्यामसुन्दर के वक्षस्थल में प्रियाजी के चरण-कमल लाल कमल के सदृश खिल गये तब वही परम शीतल चरण-कमल के स्पर्श मात्र से नागरेन्द्र श्यामसुन्दर रसराज का स्मरताप शान्त होगया ।

इस प्रकार काकुवाणी में अनुनय विनयपूर्वक प्रार्थना करके चरणारविन्दों को अपने मस्तक पर रखने को उद्यत हुए । उसी समय श्रीप्यारीजी अतीव सम्भ्रम के साथ प्यारे को अपने हाथों से पकड़कर प्यारीजी ने अपनी ओर खींचकर परिरंभन चुम्बन देकर अधरामृत का पान प्यारे को कराया और प्यारे ने अपने श्रीवक्षस्थल पर प्यारी के चरणारविन्द जो मेंहदी के रंग से अनुरंजित हो रहे हैं, धारण कर अपनी मदन कदनानल के तीव्र दाह को शान्त करते हुए परमानन्द सागर में अवगाहन किया । जल-कमल सदा ही ताप की शांति करने में साधन रूप हैं, किन्तु काम के शर से संतप्त जो जन हैं, उसके ताप को तो बढ़ाने वाला है, काम-शर विद्ध श्यामसुन्दर की वियोगाग्नि के दाह को शांत करने का गुण एकमात्र श्रीराधा चरण-कमलों ही में अद्भुत है जो—

हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रं,
निर्वापयत् परम शीतलमाश्रयामि ।

यह सोलह आने सत्य है । श्रीराधा चरण-कमल ही काम-शर संतप्त श्रीश्यामसुन्मर को शीतल करते हैं ।

इस शीतलता का कारण यह है कि श्रीराधा चरण-कमल प्रेमामृत रस के प्रवाह से पूर्ण हैं, प्रेम रूपी अरविन्द के मकरन्द की एकमात्र निधि हैं, इस प्रेम रसमय प्रवाह से परिपूर्ण श्रीराधा चरण-कमल हैं । प्रेम जब अमृतत्व को प्राप्त हो जाता है तब उसको स्नेह कहते हैं ।

यथा—

आरुह्य परमां काष्ठां प्रेमाचिद्दीप दीपनं।
हृदयं द्रवयन्नेषः स्नेह इत्यभिधीयते ॥

यह स्नेही मान का प्राण है। स्नेह दो तरह का है—

१. धृत स्नेह २. मधु स्नेह

इस श्लोक में प्रेमामृतैक मकरंद पद में एक मकरंद वाक्य से द्वितीय मधु स्नेह का निर्देश हुआ है।

मदीयत्वातिशयभाक् प्रिये स्नेहो भवेन्मधु।
(उज्वल नीलमणौ)

अपने प्रीतम में अत्यन्त मदीयत्व (ममता या ममत्व) जब हो जाता है उसी को मधु स्नेह कहते हैं। मधु स्नेह का माधुर्य स्वयं प्रकट होता है। प्रेमी जनों में अनेक प्रकार के रस प्रकट होते हैं जिनकी गणना मदन-लीला में है। प्रेम के दो स्वरूप हैं—एक मदन, दूसरे का नाम प्रेम। मदन-लीला वह जो उत्पन्न (प्रकट) होती है और मिट जाती है। नृत्य, गान आदि लीला मादनाख्य कहलाती है। मादन प्रेम की गाढ़ अवस्था बढ़ती-बढ़ती प्रेम में परिणत होती है, वह सहज होती है जैसे प्रेम करते-करते विवश हो जाना देहानुसन्धान नहीं रहकर प्रेम में डूब जाना। इसीलिये रसौघ शब्द यहाँ प्रयुक्त हुआ है।

मधु स्नेह को स्पष्ट रूप से रसिक महानुभावों ने अपने लीलानुभवों में बताया है जैसे परम रसिक महात्मा नेह-मञ्जरी में स्पष्ट दिखाया है। नेह-मञ्जरी आदि में रसमयी प्रेम की लीलायें देखने में तो संसारी दम्पतियों की जैसी काम-क्रीड़ा सी मालूम होती है, किन्तु वह काम-क्रीड़ा नहीं, वे तो शुद्ध निर्मल प्रेम की पावन-लीला है जिनको समझने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है अर्थात् ये लीलायें काम-सुख से परे भगवत रसमयी लीलायें हैं। इन विशुद्ध उज्वल ब्रह्म रस रूपा लीलाओं में क्रिया तो अङ्गों की वही है जैसे अधरामृत पान परिरम्भण आदि हैं किन्तु वहां काम नहीं है, प्रेम है। रसराज प्रेम तो

भगवान् का स्वरूप है विशुद्ध प्रेम। लीला नेह मंजरी प्रिया-प्रीतम की नेह (प्रेम) मंजरी को पढ़कर अपने अंतःकरण के काम विकारों को दूर करिये।

* चौपाई *

वृन्दाबन सोभा की सींवा। बिहरत दोऊ मेलि भुज ग्रीवा ॥१॥
राजत तरुन किशोर तमाला। लपटी कंचन बेलि रसाला ॥२॥
अरुन पीतसित फूलनि छाये। मनो बसंत निज धाम बनाये ॥३॥
बरन बरन के फूलनि फूली। जहां तहां लता पेमरस झूली ॥४॥
तीन भाँति के कमल सुहाये। जलथल विकसि रहे मनभाये ॥५॥
बहुत भाँति के पँछी बोलैं। मोर मराल भरे रस डोलैं ॥६॥
त्रिविध पवन संतत जहां रहही। जैसी रुचि तैसी ही बहही ॥७॥
हेम बरन अद्भुत धर माई। हीरनि खचित अधिक झलकाई ॥८॥
रज कपूर की तहां सुहाई। सौरभ मय संतत सुखदाई ॥९॥
तरनि सुता चहुँदिशि फिरिआई। मनो नीलमणि माल बनाई ॥१०॥
श्रीवृन्दावन की छबि है जैसी। कापै कही जात है तैसी ॥११॥

* दोहा *

फूल जहां तहां देखिये, श्री वृन्दावन माँहि।
द्रुम बेली खग सहचरी, बिना फूल कोऊ नाहि ॥१२॥

* चौपाई *

सुन्दर सहज छबीली जोरी। सहज प्रेम के रंग में बोरी ॥१३॥
खेलत फिरत निकुञ्जनि खोरी। एक वैस पिय कुँवरि किशोरी ॥१४॥
तैसीयै संग सहचरी भोरी। बंधी बंक चितवनि की डोरी ॥१५॥
बिन प्राननि डोलत संग लागी। प्रेम रूप के रंग अनुरागी ॥१६॥
महा प्रेम की रासि रंगीले। चित्त हरन दोऊ छैल छबीले ॥१७॥
जहाँ जहाँ चरन धरत सुखदाई। झर झर रूप परत तहां माई ॥१८॥
जो तेहि ठां ह्वै देखै आई। तन की ताहि भूलि सुधि जाई ॥१९॥

नवकिशोर बरनैं क्यौं जाँही। प्रेम रूप की सींवा नाँही ॥२०॥
तिनको रूप कहन कौ पारै। जो देखे सो पहिलै हारै।२१॥
ऐसे दोऊ आप में राते। अहर्निसि रहत एक रस माते ॥२२॥
अंग अंग बिवस और सुधिनाही। प्रेम रसासव पान कराही ॥२३॥
अद्भुत रस पीवत हैं दोऊ। तिनमें त्रिपित होत नहि कोऊ॥२४॥

❀ दोहा ❀

मत्त परस्पर रहत ध्रुव, एक प्रेम रंगरात।
अति सुरंग लोइनि रहे, दिन अनुराग चुचात ॥२५॥

❀ चौपाई ❀

हाव भाव गुन सींव रंगीली। मुख पर पानिप झलक छबीली ॥२६॥
बैठे कुँवरि सोई छबि देखैं। लोभी नैंन न परत निमेषैं ॥२७॥
रहे चकित ह्वै रसिकबिहारी। रूप छटा नहि जात संभारी ॥२८॥
सहजही प्रेम ढार ढरि जाँही। तेहिं रस जागत घाम न छाँही ॥२९॥
छिन छिन प्रति रुचि बाढ़ै भारी। रही भूलि सो प्रेम निहारी ॥३०॥
कबहूँ लै मृदु कुसुम सुरंगनि। गुहि भूषन बानत सब अंगनि ॥३१॥
वारि वारि पीवत पिय पानी। चितै कुँवरि कछु इक मुसिकानी ॥२३॥
छबि सींवाँ भुज लतनि पियारी। छवि तमालपिय भरे अकवारी ॥३३
महा मधुर रस जुगल बिहारा। जहाँ लगि प्रेम सबनि कौ सारा ॥३४॥
रहत लीन ह्वै दीन रंगीलौ। नख सिख सुन्दर रसिक रसीलौ ॥३५॥
तिनके प्रेम प्रेम बस कीनी। सखी सौं सखी कहत रंग भीनी ॥३६॥

❀ दोहा ❀

जद्दपि मन चंचल हुतौ, मोह्यौ अद्भुत रूप।
बिसरि गई सब चतुरता, परत प्रेम के कूप ॥३७॥

❀ चौपाई ❀

प्रिया बदन सुन्दर अति राजै। सहज रूप कौ चन्द्र बिराजै ॥३८॥
मुसिकनि मंददसन दुति न्यारी। तापर दामिनि कोटिकवारी ॥३९॥

झलक कपोलन की चिकनाई । अँखिया रपटिगिरत तहाँमाई ॥४०॥
अरुण असित सितनैंन सलौंने । छ्वै-छ्वै जात हैं कानन कोने ॥४१॥
सहज चपल इत उतहि निहारैं । बरषत मनो अनुराग की धारैं ॥४२॥

॥ दोहा ॥

रंग भरे अरु रस भरे, सरस छबीले नैन ।
सींचत पिय हिय कमल कौ, नेह नीर मृदु सैंन ॥४३॥

॥ चौपाई ॥

अति अनूप बेंदी जगमगै । चितैचितै पियपाइनि लगै ॥४४॥
नासा बेसरि मोती झलकै । मनो रूपकी आभा छलकै ॥४५॥
अद्भुत रूप मेह सौ बरसै । तऊकुँवर चातिक ज्यों तरसै ॥४६॥
छबि डोलै चरननि सौं लागी । उपमा सबै देखि यह भागी ॥४७॥
अद्भुत सहज रूपकी माला । ऐसी कुँवरिकिशोरी बाला ॥४८॥
पहिर कुँवर छिन छिनहि संभारै । ऐसो लोभ न नेक उतारै ॥४९॥
कुँवर प्रेम कौ सागर राजै । प्रिया प्रेम तहँ भँवर बिराजै ॥५०॥
ज्यौंसबजलफिरिफिरितहांपरही । ऐसे लाल प्रिया दिस ढरही ॥५१॥

॥ सोरठा ॥

प्राँननि हूँ के प्रान, पियकी सर्वस लाड़िली ।
तिनके नहि गति आँनि, देखि देखि जीवत सखी ॥५२॥

॥ चौपाई ॥

लालहि पिया लगत अति प्यारी । तापर प्रान करत बलिहारी ॥५३॥
जहँ जहँ चरन धरत सुकुँवारी । सोठां चूंबत लालबिहारी ॥५४॥
प्रेम अटककी अटपटी रीति । जानै सो जाके उर बीती ॥५५॥
कहिबे को नहि प्रेम के बैना । मन समुझै के दोऊ नैंना ॥५६॥
जेहिजेहि सुमनसुरंगकी ओरै । चितवन नेक नैंनकी कोरै ॥५७॥
धाइ कुँवर तेहि फूलहि लावै । मन सेवा कै प्रियहिरिझावै ॥५८॥

प्रीति रीति को जानै माई। बिनपियकुंवर रसिकसुखदाई ॥५९॥
भये दीन यौं तजी बड़ाई। पुनि ताकी बातें न सुहाई ॥६०॥
मानत है धनि भाग बड़ाई। ऐसी कुँवरि किशोरी पाई ॥६१॥
अब मोकौं कछु और न चहियै। नैननि में अंजन ह्वै रहियै ॥६२॥
ऐसे नैंन लगै सखि प्यारे। कैसे रहें आप ते न्यारे ॥६३॥
ऐसी न होइ तो यह उर धरही। मोही तन वे चितयो करही ॥६४॥
धन्य सोई छिन पल सखि मेरे। कुँवरिनैंन भरि मोतन हेरे ॥६५॥

॥ दोहा ॥

कोटि काम सुख होत हैं, हँसि चितवति पिय ओर।
भूल जात तनकी दसा, परसे प्रेम झकोर ॥६६॥

॥ चौपाई ॥

कुँवर प्रेम जब मन में आयौ। बचन किशोरीकहनन पायौ ॥६६॥
भरि हीयौ अति ही अकुलानी। पियकिशोरके उर लपटानी ॥६८॥
फिरि गयौ प्रेम दुहुँनि पर माई। अपनीअपनी सुधिविसराई ॥६९॥
पियपिय प्रिया कहति सुकुँवारी। रहिगये ऐसे भरिअँकवारी ॥७०॥
प्रेम नीर उर अञ्चल भीने। चितवन नैंनचकोरहि कीनें ॥७१॥

॥ दोहा ॥

सहज रंगीली लाड़िली, सहज रंगीलौ लाल।
सहज प्रेमकी वेलि मनौ, लपटी प्रेम तमाल ॥७२॥

॥ चौपाई ॥

देखि सखी तहँ सबै भुलानी। एक रहीमनो चित्रकीबानी ॥७३॥
एकनि के नैंननि जल ढरही। मनो प्रेम के झरना झरही ॥७४॥
एक गिरी धर अति मुरझाँनी। रहिगई एक लता लपटानी ॥७५॥
भई अचेत पुनि चेत निहारै। तबसबहिनिमिलिआइसँभारै ॥७६॥
देखे दोऊ उर में उरझाने। तब सबहिन कै नैंन सिराने ॥७७॥

सोरठा—जुगल रसिक सिर मौर, सब सखियनि के प्राँन हैं।
नाहिन है गति और, तिनही के सुख सौं रंगी ॥७८॥

❀ चौपाई ❀

महा प्रेम गति सब तें न्यारी। पिय जानै के प्राँन पियारी ॥७९॥
अरुझे मन सुरझत नहि केहूँ। जेहि अंग ढरत होत सुख तेहूँ ॥८०॥
एकै रुचि दुहुँ मैं सखि बाढ़ी। परि गई प्रेम ग्रंथ अति गाढ़ी ॥८१॥
देखति-देखति कल नहि माई। तिनकौ प्रेम कह्यौ नहि जाई ॥८२॥
सहज सुभाइ अनमनी देखै। निमिषन कोटि कलप सम लेखै ॥८३॥
हँसिचितवत जब प्रीतममाँही। सोई कलप निमष ह्वै जाँही ॥८४॥
खेलन हँसन लाल को भावै। नेह की देवी नितही मनावै ॥८५॥
कौतुक प्रेम छिनहि-छिनहोई। यह रस समझै विरला कोई ॥८६॥
ज्यों-ज्यों रूपहि देखत माई। प्रेम तृषा की ताप न जाई ॥८७॥

* दोहा *

प्रेम तृषाकी ताप ध्रुव, कैसे हूँ कही न जाइ।
रूप नीर छिरकत रहें, तऊ न नैंन अघाँइ ॥८८॥

* चौपाई *

बिच-बिच उठत हैं प्रेम तरंगा। खेलत हंसत मिलत अंग अंगा ॥८९॥
नवल राधिका बल्लभ जोरी। दूलहु नित्य दुलहिनी गोरी ॥९०॥
सोभित नित्य सहाने बागे। नये नेह के रस अनुरागे ॥९१॥
खेलत खेलत तहाँ मन भाये। यह कौतुक कबहूँ न अघाये ॥९२॥
नेह मंजरी सहजहि भई। हरी एक रस छिन-छिन नई ॥९३॥
सींचत चाह चोंप के जल सों। लगि रहे दृग कमलनिके दलसों ॥९४॥

❀ सोरठा ❀

श्रीराधाबल्लभलाल, रसिक रंगीले विविकुँवर।
परे प्रेम के ख्याल, रुचत न तिनकौ और कछू ॥९५॥

नव निकुंज रंग-रंग चित्रसारी। राजतनवल कुँवर सुकुँवारी ॥९६॥
रस बिहार की चोंपर खेलै। दोऊ प्रवीन अंसनि भुज मेलै ॥९७॥
सखियन तलप बिसात बनाई। कहि न जाइ शोभा कछु माई ॥९८॥

यासे नैंन कटाछनि ढारै । हाव भाव रंग रंगकी सारै ।।९९।।
जौ अंगलालहि परस्यौ भावै । समुझि किशोरी ताहि दुरावै ।।१००।।
घात अनेक मन में उपजावै । हँसै कुँवरि जब नहि बनि आवै।।१०१।।
हारिमानि पग परत बिहारी । रसिक सिरोमनि की बलिहारी ।।१०२।।
नैंननि सैंन कछुक मुसिकानी । मैंन खेल रस रैंन न जानी ।।१०३।।
उरज कपोल छलक छबिछाई । चितवत लाल विवसह्वै जाई ।।१०४।।
तबहिकुँवरि भरिलिये अंकवारी । करुना करिदियौ अधरसुधारी।।१०५।।

❀ दोहा ❀

नागरि लोक कलानि में, बिलसत सुरत बिहार ।
रोचक रव रसना तहाँ, अरु नूपुर झनकार ।।१०६।।

❀ चौपाई ❀

नवल निकुंज रंगीले दोऊ । तेहिठाँ सखि नाहिनै कोऊ ।।१०७।।
रसिकलाल ऐसे रंग भीने । तन मन प्रान प्रियाकरदीने ।।१०८।।
कबहुँ रूप सखी को धरही । रुचिलैसब बातनि कौकरही ।।१०९।।
नख सिख लों सिंगार बनावै । याही सेवा में सुख पावै ।।११०।।
अद्‌भुत बैनी गूथि बनाई । मनो अलिनु की सैनी आई ।।१११।।

❀ दोहा ❀

बिच बिच थूल सुरंग दै, गूथी कवरि बनाइ ।
मिलि अनुराग सिगार दोऊ, गहीसरन मनोआइ ।।११२।।

❀ चौपाई ❀

नैंननि अंजन रेखा दीनी । तबहि कुंवरि करआरसीलीनी ।।११३
रीझ अंक लालन भरि लीनौ । अतिहित सौंअधरामृत दीनौ ।।११४।।
समुझि सनेह नैंन भरि आये । मनौकंज आनंद जल छाये ।।११५।।
विवस होय तब उर लपटाने । वीते कलप न नेक अघाँने ।।११६।।
रहत यहै भ्रम पिय मन माँही । प्रानपियामोहिमिलीकिनांही ।।११७।।

देखत देखत हँसतही, गये कलप बहु बीति ।
पल समान जाने नहीं, विलसत दिन यहरीति ॥११८॥

॥ चौपाई ॥

कौन प्रेम तेहिठाँ को कहियै । दुहुँकोद चितवत सखिरहियै ॥११९॥
नित्त प्रेम एक रस धारा । अति अगाधतेहिनाहिनपारा ॥१२०॥
महामधुर रस प्रेमकौ प्रेमा । पीवत ताहि भूलिगये नेमा ॥१२१॥
तैसी सखी रहै दिन राती । हितध्रुवजुगलनेहमदमाती ॥१२२॥

॥ दोहा ॥

रसनिधि रसिक किशोरविवि, सहचरि परमप्रवीन ।
महा प्रेम रस मोद में, रहत निरन्तर लीन ॥१२३॥

॥ चौपाई ॥

प्रेमा बात कछु कही न जाई । उलटी चालतहां सब माई ॥१२४॥
प्रेम बात सुनि बौरा होई । तहा सयान रहै नहि कोई ॥१२५॥
तन मन प्रान तिही छिनहारै । भली बुरी कछुवै न विचारै ॥१२६
ऐसो प्रेम उपजिहै जबही । हितध्रुवबात बनैगी तबही॥१२७॥
ताको जतन न दीसत कोई । कुँवरिकृपातें कहा न होई ॥१२८॥
वृन्दाबन रस सबतें न्यारौ । प्रीतमतहां अपुनपौ हारौ ॥१२९॥
श्री हरिबंश चरन उर धरई । तव या रसमें मन अनुसरई॥१३०॥
मो मति कवन कहै यह वानी । हरिवंशचरनबलकछुकबखानी ॥१३१
जुगल प्रेम मनही में राखै । अनमिलिसोकबहूँनहिभाषै ॥१३२॥

॥ दोहा ॥

पिय प्यारी कौ प्रेम रस, सकहि तौ मनमें राखि ।
या रसके भेदी बिना, काहू सौं जिन भाषि ॥१३३ ।

॥ चौपाई ॥

प्रेम बात आनंद मय माई । ताहिसुनत हिय नैंन सिराई॥१३४॥
जहालगि सुख कहियत जग माँही । प्रेमसमान और कछु नाही ॥१३५॥
यह रस जाके उर नहि आयौ । तेहिजगजनमलैवृथागमायौ ॥१३६॥

सब रस में देखै अवगाही । सबको सार प्रेम रस आही ॥१३७॥
प्रेम छटा जेहि उर पर परई । सो सुख स्वाद सबै पर हरई ॥१३८॥

॥ दोहा ॥

जेहि दुख समनहि और सुख, सुख की गति कहै कौंन ।
वारि डारि ध्रुव प्रेम पर, राज चतुर्दश भौंन ॥१३९॥

॥ चौपाई ॥

जहां लगि उज्वल निर्मलताई । सरस सनिग्ध सहज मृदुलाई ॥१४०॥
मादिक मधुर माधुरी अंगा । दुर्ल्लभता के उठत तरंगा ॥१४१॥
नौतन नित्य छिनहि छिनमाही । इकरस रहत घटत रुचिनाही ॥१४२॥
अतिहि अनूपम सहज स्वछंदा । पूरन कला प्रेम बर चंदा ॥१४३॥
सब गुनते ताकी गति न्यारी । जाके बस भये लालबिहारी ॥१४४॥

❊ दोहा ❊

कहि न सकत रसना कछू, प्रेम सार आनन्द ।
को जानै ध्रुव प्रेम रस, विनु वृन्दावन चन्द ॥१४५॥

❊ चौपाई ❊

प्रेम की छटा बहुत विधि आही । समुझिलई जिन जैसी चाही ॥१४६॥
अद्भुत सरस प्रेम निज सोई । चित्तचलन की जेहि गतिखोई ॥१४७॥
रसिक रसिकनी गुन अनुरागे । एक प्रेम दम्पति मन पागे ॥१४८॥
इकछत सार प्रेम रस धारा । जुगलकिशोर निकुञ्ज बिहारा ॥१४९॥
यह बिहार जाके उर आवै । ताहि न बात दूसरी भावै ॥१५०॥
औरो भजन आहि बहुतेरे । ते सब प्रेम भजन के चेरे ॥१५१॥

❊ दोहा ❊

नारदादि सनकादिक सब, उद्धव अरु ब्रह्मादि ।
गोपिनको सुख देखि किय, भजन आपनौ बादि ॥१५२॥

❊ चौपाई ❊

तिन गोपिनु ते दुर्ल्लभ माई । नित्य विहार सहज सुखदाई ॥१५३॥

शिव श्रीपति जद्दपि ललचाही । मन प्रवेस तिनहूँ को नाही ॥१५४॥
ऐसे रसिक किशोर बिहारी । उज्वल प्रेम बिहार अहारी ॥१५५॥
अति आसक्त परस्पर प्यारे । एक सुभाव दुहुँनि मन हारे ॥१५६॥
रस मै बढ़ी नेह की बेली । तेहि अवलंवे नवल नवेली ॥१५७॥

* दोहा *

हित ध्रुव दुर्ल्लभ सवनि तें, नित्य बिहार सरूप ।
ललितादिक निजसहचरी, सो सुख लहति अनूप ॥१५८॥

* चौपाई *

दुर्ल्लभ कौ दुर्ल्लभ अति माई । बृन्दाविपिन सहज सुखदाई ॥१५९॥
वेलि फूलफल ललित तमाला । प्रेम सुधा सींचत सब काला ॥१६०॥
मृगी विहंगी सखी अपारा । सबकै यहि ठाँ यहै अहारा ॥१६१॥
नित्य किशोर एक रस भीनें । तन मन प्राँन नेह बस कीने ॥१६२॥
इहिबिधि बिलसत प्रेमहि सजनी । जानत नहि कित बासर रजनी॥१६३॥
नेह मंजरी हित ध्रुव गावै । दंपति प्रेम माधुरी पावै ॥१६४॥

* दोहा *

प्रेम धाम बृन्दाविपिन, मध्य मधुर बरजोर ।
सरिता रस सिंगार की, जगमगात चहूँ ओर ॥१६५॥

॥ सोरठा ॥

प्रेम मई दोऊ लाल, प्रेम मई सहचरि जहाँ ।
सेवत हैं सब काल, प्रेम मई वृन्दा बिपिन ॥१६६॥

* दोहा *

वैभव सब ईश्वर्यता, ठाढ़ी सेवत दूरि ।
परसन पावत कबहूँ नहि, श्री वृन्दाबन धूरि ॥१६७॥
व्रह्म जोति कौ तेज जहां, योगेश्वर धरैं ध्याँन ।
ताही को आवरन तहाँ, नहि पावै कोऊ जान ॥१६८॥

नेह मंजरी मजु रस, मंजुल कुञ्ज बिलास।
जेहि रस के गावत सुनत, रसिकन होत हुलास ॥१६९॥
रूप रंगको बेलि मृदु, छबि के लाल तमाल।
नेह मंजरी दुहुँनि में, हरी रहत सब काल ॥१७०॥

अलौकिक प्रेम के स्वरूप को पदों में हित ध्रुव अलि ने गाया। इस अद्भुत प्रेम तत्व के गान को सुनकर समस्त परिकर प्रिया-प्रीतम के परस्पर प्रेम विहार में डूब गया श्रृङ्गार का समय जानकर श्रीहित सजनी जी प्रिया-प्रीतम का श्रृङ्गार करने के लिये श्रृङ्गारकक्ष में पधारीं। श्रृङ्गार भवन में मणिमय सिंहासन पर लाल ललना को विराजमान कर दोनों का श्रृङ्गार करने लगीं। श्रृङ्गार भवन के सामने श्री यमुना जी विराज रही हैं। विविध प्रकार के मनोहर पुष्पों की लताएँ श्री यमुना कूल पर बिकसित हो रही हैं, और अनेक लताएँ फूलों के भार से झुकी यमुनाजल में झूल रही हैं तथा अद्भुत प्रकार से कंचन मणि जटित भूमि झलमला रही हैं। जल तथा थल में सहज ही नील पीत लाल और सितकमल के पुष्प विकसित हैं। जल में तो सहज ही कमल खिल रहे हैं और वृन्दावन की ऐसी अद्भुत बात है कि जल में विकसित कमलों पर सूर्य की किरणें पड़ रही हैं उनका (कमलों का) प्रतिबिम्ब यमुनाकूल की मणि जटित भूमि पर पड़ने से उस थल (भूमि) पर कमल दीखते हैं यह थल कमल सुशोभित हो रहे हैं। वृन्दावन में पारिजात और सुभतमाल के वृक्षों पर हेमलता लिपट रही है। इस अद्भुत शोभा को देखते हुए प्रिया-प्रीतम मणिजटित सिंहासन पर विराज रहे हैं और हित सजनी दोनों का श्रृंगार कर रही हैं। ध्रुवअलि बीणा बजाती हुई श्रृङ्गार के पद गा रही है।*

---

*हित पदों के वृजभाषानुवादकर्त्ता पूज्यवर गोस्वामी श्रीबलदेवलालजी महाराज (छोटी सरकार, बृन्दावन) हैं।

॥ दोहा ॥

मूल०– अति सुरँग बहुरंगदल, कोमल कमल गुलाल ।
रचो रंगीली सखिन मिलि, सेज सुरँग रसाल ॥

॥ सोरठा ॥

करत मिथुन मृदुहास, मन मन अति अनुरागसों ।
अधर दशन छबि रास, रहे तमोल रंग भोज सरिस ॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

ता मंजुल निकुँज के मध्य में रंगीली सखीननें एक सुरँग सेज (तलप) की रचना करी है । कहा कै वा सेज के पाये विविध प्रकार की मणिनसों खचित (जड़ेभए) हैं अरु स्फटिक की पाटी तथा सेरे हैं अरु विविध रँग की रेशम डोरीनसों बिचित्र प्रकार के चित्रन करि रची है । ताके ऊपर सुभग स्वेत जरीतारनकौ विछावन बिछौ है तापै सहचरीननें अपुनी अपुनी रुचिसों चुनिकें विविध रँग के कोमल कमल-दल (पंखुरी) लैकें रचना करी है अरुतोषक तकिया गिलभादिकन करि रसाल बनी है ।

ऐसी रसाल सुरँग सेज पै विराजे दोऊजन (लाल प्रिया) अति अनुरागसों भरे मन्दहास करें हैं । तिनके अधर अरु दशन तमोल रंगसों रचे हैं सो मानों छबि के पुंज (रासि) हैं ।

॥ दोहा ॥

मूल०–विपिन देस चहुँ दिसि बहै, सरिता श्याम सुदेस ।
प्रेमराज राजत तहां, इकछत जुगल नरेश ॥

वा विपिन देस की चारों दिशान में श्याम रंग की सरिता बहै **है** अरु तहाँ जुगलनरेश (श्याम-श्यामा) के प्रेम कौ एकछत्र राज है ।

॥ दोहा ॥

मूल०— दुलहिन रानी सहजही, दूलह नृपति किशोर।
रूपछत्र शिरपै फिरै, आसन जोबन जोर ॥
कुञ्जधाम सखियन सभा, प्रजा हंस मृगमोर।
बसत निरंतर चैन सों, कीन्हें नैंन चकोर ॥

(टीका) राधा वा प्रेम राज की रानी सहज दुलहिनी सरूप हैं अरु किशोरवर नृपति दूलह सरूप हैं दोऊ जन कुँजधाम में सखियन की सभा के मध्य जोबन के जोर रूप आसन पै विराजे हैं अरु तिनके सिर रूप कौ छत्र फिरचौ करै है। वा कुञ्जधाम के हंस मृग मोर आदिक तिनकी प्रजा हैं सो अपने नैंननकूँ इनके मुखचन्द्र कौ चकोर करिकै सुख (चैंन) सों बास करैं हैं।

॥ दोहा ॥

मूल०— फुलवारी आनन्द की, फूली छबि अँग अंग।
षटऋतु मालिन सुख फलनि, देत दिनहिं बहु रंग ॥

(टीका)

वा कुञ्जधाम के अँग अँग में छविसों भरी आनन्द की फुलवारी फूली रहै है अरु छैऔ ऋतु मालिन बनीं जुगल नरेश की रुचि के अनुकूल ह्वै तैसे ही सुख फलनकूँ अर्पन करत रहैं हैं।

* दोहा *

मूल०—मैंन रंग शतरंज तहँ, खेलत दोउ सुकुमार।
हाव भाव चितवनि चलनि, छिन छिन चाह अपार ॥
मन नृप मंत्री चोंप सों, रचि कीनी रुख चाल।
उरज गयंद तुरंग दृग, पाइक अंगुरी लाल ॥
तिल कपोल पै अलक छबि, मुसकनि कही न जात।
जब चितई पिय लालतन, भए नैंन सहमात ॥

रति नागरि दै अधर रस, हेत विसात सँवारि।
आलिंगन चुम्बन मनों, खेलत फेरि सँभारि॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

मंदहाससों रुचि उपजत दोऊ सुकुमार तन सुन्दर तलप पै हेत (प्रेम) की विसात बिछाय मैंन रंग की शतरंज खेलवे लगे अरु हाव भाव कटाक्षनसों जुत चितवनि की चलनसों छिन-छिन में चाह बढ़ायबे लगे। इनकी या मैंन रंग (काम केलि) की शतरंज के मन तौ राजा हैं (बादशाह) अरु चोंप मंत्री हैं तथा रुचि ऊँट हैं अरु उरज (कुच) गयंद हैं तथा दृग चपल तुरंग (घोड़ा) हैं अरु लालकी अँगुरियन के पोरय्यादे (पैदल) हैं।

अहो रसिकजन शतरंज के खेल-खेल में इक कौतिक भयौ बिहारिनजू के कपोल पै जो तिल है सो इक अलक लटकिकै वापै झूलबे लगी तासों प्यारीजू के अधरनपै मुसकनि रमि रही सो छबि मोसों कही नहीं परै है। जब श्यामाजू लालकी ओर तिर्छी चितवन सों देखें हैं तौ लालकूँ मात होय है। कहाकै लाल रस में विबस ह्वै जाय हैं। कहाकै अचेतन हौन लगै हैं। तब रति नागरी जू प्यारेकूँ अधर रसदै हेत (प्रेम) की विसातकूँ सवाँरें हैं। तब फिर परस्पर आलिंगन चुम्बन हौन लगैं हैं सोई मानों फेरि दोऊजन संभरिकै खेलन लगैं हैं।

मूल— **दोहा**

नब किशोर सुकमारतन, बिलसत प्रेम विलास।
अलबेली चितबनि हँसनि, नौतन नेह हुलास॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

श्री ध्रुवदास जी कहैं हैं अहो रसिकजन (सखी) ये दोऊ नव किशोर हैं अरु सुकमार तन हैं और दोऊ नौतन नेह (नवीन प्रेम)

के हुलाससों भरे हैं। तासों इनकी चितबनहू अलवेली है अरु हसनिहूँ अलवेली है।

मूल०— सवैया

नेह निकुञ्ज में रूप की मूरति, खेलत प्रेम बिलास बिहारी।
चौंपकी चालनि नैंन विशालनि, चाहि रहे ध्रुव प्रीतमप्यारो॥
रंगे रस सार दोऊ सुकमार, महा रिझबार रहे मनहारी।
हेरत ठाँढ़ीं सखो सुखसींव, दिए भुजग्रीव निमेष विसारी॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

ध्रुवदासजी कहैं हैं अहो रसिकजन वा नेह निकुञ्ज में प्रीतम प्यारी रूप की मूरति बने ऐसे अद्‌भुत प्रेम बिलास के खेलकूँ खेल्यौ करैं हैं। उनके नैंन विशाल चोंप की चालन में फसे वा प्रेम के बिलास के रसकूँ पीयौ करै हैं। ये दोऊ महा रिझवार हैं अरु महासुकुमार हैं तासों वा रस के सार में रंगे रहैं हैं विहारी बिहारिन के या रस स्वादी स्वरूपकूँ सहचरी एक दूसरी की ग्रीवा में भुजाडारें पलकनि के निमेष भूलें कुञ्ज रंध्रनसों लगी निरख्यौ करैं हैं।

मूल०— दोहा

सहज सरस सुन्दर बदन, चन्द्रबिम्ब मनों आहि।
रूप किरन हित रसिक पिय, चख चकोर रहे चाहि॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

प्यारी जू कौ सहज रूप संयुक्त जो सुन्दर मुखारविन्द स्वरूप-चन्द्र है सो प्रीतम के नैंन ताके मिस चाहसों भरे चकोर बने रहैं हैं। काहेसों ? तहाँ कहैं हैं कै या प्रिया बदनचन्द्रसों रूप की किरन प्रस्फुटित होय हैं सो प्रीतम के नैन चकोरनकूँ तिन्हें निरखबेसों चैन मिलै है। और यह जो गगन चन्द्र है सो तौ प्रियामुख चन्द्र कौ प्रति-बिम्ब मात्र है।

मूल०— दोहा

सग बगे केश फुलेल में, छुटे अधिक छविदेत।
कछु चितवन पुनि मृदुहंसनि, प्रीतम मन हरलेत ॥
बेंदी श्याम सुहावनो, शोभित गौर ललार।
प्रगट सुधाकर परमयौ, मनों प्रगट अनुराग ॥
पल उतंग उज्ज्वल अरुण, अति सलज्ज रस ऐन।
करनाइत लौने चपल, कजरारे कल नैंन ॥
भोंहन चित्र फगुआ फब्यौ, अरुन भए छवि कौन।
बैठ्यौ है अनुराग मनों, निज श्रृङ्गार के भौन ॥
नासापुट डोलत जलज, पल पल स्वाँसा संग।
यह छवि निरखत नबल पिय; होत नैंन गतिपंग ॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

प्यारीजू के खुले केश (बार) फुलेंलसों सने अधिक शोभा देत हैं। अरु प्यारी जू की कछु तिर्छी चितवनि तथा मृदु मुसिकान प्रीतम के मनकू हरण करिबे बारी है । प्यारी जू के गोरे भाल पै सुहावनी बेंदी सोभायमान है सो मानों सुधाकर पै आय अनुराग प्रगट भयो है। प्यारी जू के नेत्र करनाइत (कानकी लौरताई नुकीले) हैं अरु कजरारे तथा चपल हैं और अति ही सलौने हैं। तिनकी कोर अरुनहैं एते पै हूँ रस के बस ह्वै सलज्ज हैं। भोंहनिके बीच जो केसर की आड़ है सो मानों फगुआ फब्यौ है। कहाकै मानों प्रीतम के हिय कौ अनुराग अपने श्रृङ्गार के भवन में बैठ्यौ है।

ध्रुवदासजी कहैं हैं अहो रसिकजन (सखी) प्यारी जू की नासापुट (बेसर) कौ मोती स्वाँस सम र के संग मिलि डोलै है सो ताहि निरखि नबल पियके नेत्रन की गति पंगु (स्तब्ध-शांत-गतिहीन) ह्वै रही है।

मूल **दोहा**

राजत बाम कपोल तिल, अलप अलक तिहि पाहि।
डारौ मनु श्रृङ्गार फँद, खंजन नैंननि चाहि।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

प्यारीजू के बाम कपोल पै एक सुन्दर तिल राजै है अरु ताके चारों तरफ कुण्डल भारकै एक झीनी अलक विराजै है सो मानों प्यारे के नेत्रन रूपी खंजननकूँ पकरिबे कों श्रृङ्गारनें रूपके दाने पै फँदा डारि राख्यौ है।

मूल **दोहा**

दसनि दमकि छबि कहा कहौं, मुसकनि वर्षत फूल।
अद्‌भुत अंगन माधुरी, देखत भूली भूल।।
फव्यौ चिबुक परि सहजही, विन्दुका अति ही अनूप।
पिय श्यामलकौ मन मनों, परयो रूप के कूप।।

ब्रजभाषानुबाद (टीका)

इनके दशनन की दमकन जुत छबि मोपै कही नहीं परै है अरु इनकी मुसिकानसों फूल वरषै हैं। इनके अंगन की जो माधुरी है सो अद्‌भुत है। कैसै कै ताहि देखिकै भूलनि हूँ भूली परै है। श्रीध्रुव-दास जी कहैं हैं अहो रसिकजन (सखी) प्यारीजू की चिबुक (ठोड़ी) पै जो विन्दु विराजै है सो मानों साँवल पियकौ मन रूप के कूप में परचो है।

मूल **सवैया**

बैठे हैं सेज भरे रस रंग, रंगीलो कछू मुरिकै मुसिकाई।
और को और भई पियकी गति,कैसैहूँ कै न कही ध्रुव जाई।।
चाहत चाहत रूप प्रियाकौ, परे सुख में जिंहि ठाँ गहराई।
गुराईकौ भार भयौ गरुवौ, मन बूढ़ि गयौ छवि अंकमें माई।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

श्रीध्रुवदास जी कहैं हैं अहो रसिकजन (सखी) या हितरूप शृङ्गार की लीला निराली अरु अद्भुत है मंजुल नवनिकुञ्ज में नव-किशोर जुगलवर रस के रँगसों भरे सेजपै विराजै हैं। ताही समय रंगीली प्रिया प्यारे की ओर निरखिकै कछु मुरिकै मुसिकाई सोईतौ प्रीतम की गति कछुसों कछु हौंन लगी सोगति मोपै कही नहीं परै है। प्रिया रूपकूँ निरखत निरखत नवलपिय कौ मन महासुख (रतिसुख) की गहराई में जाय परचौ तासों प्यारीजू की गुराई कौ भार (शोभा) औरहूँ बढ़िगयौ तासों अरी सखी (रसिकजन) प्यारे कौ मन वा छविके अँबुधि (समुद्र) में डूबन लग्यौ। कहाकै लाल विथकित ह्वै गये।

मूल० दोहा

करुना करि लिए लाइ उर, देखे लाल अधीर।
लिये काढ़ि छवि भँबरतें, छाइ दशन वर चीर।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

जब लाल की ऐसी अधीर गति देखी तबतौ करुना मूर्ती श्री किशोरीजूनें करुनाकरिकै लालकूँ उरसों लगाय लीने। अरु अधर रस दानदै छविके भँवरमेंसों निकास लीने। कहाकै चैतन्यकरि लीने।

मूल० दोहा

छबि मुरझानो देखि छबि, मृदुताई मृदु अंग।
चतुराई जहँ चित्रित भई, चपलाई गति पंगु।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

इनकी या करुना पूरित मूर्ती की छविकूँ देखिकै छबि (शोभा) हूँ मुरझाय गई। अरु इनके अंगन की मृदुताईसों मृदुताहू लजाय गई।

प्यारेकूँ छवि भँवरसों काढ़िबे में इननें जो चतुराई करी है ताहि देखिकै चतुराईहू चित चिचलिखित सी ह्वै रही। अरु जा चपलतासों पियकूँ उरसों लगायौ है बा चपलताकूँ देखिकै चपलाई की गतिहूँ पंगु ह्वै रही।

मूल० **दोहा**

कोटिक छबि मुख कमल पर, रंजित पानन राग।
छिन-छिन प्रीतम नैंन अलि, पीबत पीक पराग॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

प्यारौ चैतन्य ह्वै देखै है कै पाननके राग (रंग) सों रंजित प्यारीजू के मुख कमल के आगै कोटानि कोटि कमलन की छबि हूँ मंद ह्वै रही है। तब प्यारे के नैंन अलि (भौंरा) बन मुखकमलसों लगी पीक रूपी परागकौ पान प्रति छिन करिबे लगे।

मूल० **दोहा**

नबल नबेली उर बनी, मृदुल चमेली माल।
सारी सोंधेसों सनो, अंगिया फूल गुलाल॥
अलबेली चितबनि अली, रस बेली मुसिक्यानि।
छिन-छिन प्रति बाढ़त नई, फैली पिय उर आनि॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

नबल नबेलीजू के उर (वक्षस्थल) पै मृदुल चमेली की माला शोभा पावै है। इनकी सारीसोंधेसों सनी है अरु अँगिया फूल गुलाबी बनी है। श्री ध्रुवदास जी कहैं हैं हे अलि (रसिकजन) इनकी चितवनि अलबेली है अरु मुसिक्यान रस की बेली है सो प्रति छिन बढ़िकै नई रीतीसों पियके (लालाके) उर पै फैलती जाय है।

मूल० दोहा

मेंहदी रंग भीने बने, मृदुकर चरण सुरंग।
नखमनि दुति अति झलमलै, पानिप झलक अनंग।।
बर्षत अद्भुत रूप जल, एकहिं रस निश भोर।
तृषित पपीहा तऊ पिय, चितबत मुख की ओर।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

प्यारीजू के मृदुल कर अरु चरण मेंहदी के रंगसों सुरंग बने हैं ऐतेपैहू नखमनिन की दुति अति झलमलावै है सो मानों आपुके श्री अंगपै अनंग की पानिप (प्रभा) झलकै है। या प्रकार सों वा कुञ्ज भवन में रूप की वर्षा दिन रात होय है तऊ नबल पिय तृषित पपीहा ह्वै नवेलीजू के मुख की ओर निरख्यौ करें हैं।

मूल० कबित्त

रोम-रोम रूप काँति. पानिप जगमगाति।
मोहनी कौं देखे आवै मोहन कौं मोहनी।।
हित ध्रुव माधुरी मदन मद मोद मई।
अति सुकुमारतन सहज ही सोहनी।।
दसन दमक के देखे दामिनी लजाई जात।
नख पटतर कोऊ कोहै पति रोहनी।।
अतिही छबीलो गोरी, बरनि सकत कोरी।
जाके संग फिरें छकि छबिन की छोहनी।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

श्रीध्रुवदास जी कहैं हैं अहो रसिकजन (सखी) प्यारीजू के रोम-रोमसों रूप की काँतिजुतमदन रंग की पानिप (प्रभा) जगमगायौ करै है। ऐसी मोहनीकूँ देखिकै मोहन (मदनमोहन-त्रिभुवनमोहन) कूँ भी मुर्छा आवै है अरु प्यारीजू के अंगन की

जो माधुरी है सो लाल के मदन मदकूँ चूर्ण करि मोद उपजावनिहारी है। अरु आपके तनकी जो सुकुमारताहै सो सहज है अरु इनके दसनन की दमकनसों दामिनी हूं लजावै है। अरु इनके नखन की पटतरतौ कहौ कौनसों दऊँ जब रोहिनी पति (चन्द्रमा) हू इन नखन के आगै फीकौ परै है। ऐसी अति छविली गोरीकौ बरनन कहौ कौन कर सकै है। काहेसों ? इनके सँग छबिन की छोहनी छकी फिरैं हैं।

मूल० **दोहा**

रोम रोम प्रति अमित छबि, ज्यों दधि लहर उठाँति।
चखक अलप बहु प्यास पिय, तृषा मिटति किहिं भाँति॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

ऐसें प्यारीजू के रोम रोमसों अमित छबि कौ उदधि (सिंधु) लहरन करि उठै है। प्रीतमकूँ सो छवि जल पान करिबे की बहुत ही उत्कंठा रहै है पै चखन (नेत्र) द्वैही हैं तासों कहो इनकी तृषा कौन भाँतिसों मिटै।

मूल— **दोहा**

गाढ़ीकै कसि कंचुकी, दरकि रही कुंचकोर।
निरखत दृष्टि बचाय पिय, नागर नवलकिशोर॥
मोहे मोहन मैंन रस, अति सलज्ज मुसिकानि।
लालच के लालच बढ़्यौ, देख लाल ललचानि॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

नवल प्यारीजू के बक्षस्थलपै कंचुकी गाढ़ी (दृढ़ बंधनिकरि) रीतसों कसी है। सो तासों वामें आपुके पीन कुचन की कोर उभरि रही है। नवल नागर किशोर पिय प्यारीजू की दृष्टि बचाय तिन्हें निरखवे लगे तौ मोहन मैंन (प्रेम) रससों मोहित ह्वै निमिष हूँ

भुलि रहे। तासों किशोरीजू के अधरनपै लज्जासों सनी मुसिकानि रमि रही। लाल की या ललचनकूँ देखि लालचके हूँ लालच बढ़ि गयौ।

मूल- दोहा

बेसर अरुझी अलकसों, शोभा बढ़ी सुभार।
पियनि बरिन ब्याजके, दई अधिक उरझाइ ॥

सोरठा

सुन्दर रूप निधान, परम चतुर नागरि प्रिया।
लयौ झटकि पियपानि, जान चतुराई लाल की ॥

ब्रजभाषानुबाद (टीका)

ताही समय प्रिया की बेसरसों एक अलक आइ अरुझ रही सो वा अरुझन में लालकौ मनहूँ अरुझ रह्यौ। नबलकिशोरी पिय के हिय की जान गईसों संकेतसों लालसों सुरझायवे की कही तबतौ लाल ताघरीकूँ धन्य मानत प्रियाकी बेसरसों अलक सुरझाबे लगे पै चतुराईसों सुरझयबे के ब्याज (बहानेसों) और अधिक उरझायदीनी तबतौ नागरि प्रियानें लाल की चतुराई जान लई सो तिर्छे नेत्रनसों चितबत झटकिकै लालकौ पानि (हाथ) गहि लीनौ।

मूल- दोहा

जो अंग चाहत रसिक पिय, इन नैंननसों छ्वाइ।
सोठाँ राखत पहिलहो, सुन्दरि बसन दुराइ ॥
काँपत कर थरकत हियौ, बन तन मन की बात ॥
कुशल जुगल कलकोक में, समुझि समझि मुसिकात ॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

रसिकलाल प्रिया के जिन-जिन अंगनकूँ अपुने नेत्रन के करन सों छ्वैनौ चाहें हैं उन उन अङ्गनकूँ सुन्दरी नबबाला पहिलें ही

बसानसों ढाँपिकै राखे हैं। जदपि प्यारीजूनें लालकौ हाथ गहिराख्यौ है पै लाल के नेह रसके वस ह्वै हियौ थरकित (स्पंदित) है सो ताके हेतुसों आपुके करन में हू कंप ह्वै रह्यौ है। अरु रसिक पिय कौ हियौ प्रियके प्रणय कोप के उरसों थरकित ह्वै रह्यौ है सोताके हेतुसों आपुकौ कर कंपित है। अथवा दोउन के हृदय में प्रेमकौ उदधि उमड़ि रयौ है तासों दोउनके हृदय थरकित और अङ्ग कंपित हैं पै मन की बात कही नहीं परै है। ये दोऊ जुगलबर कोक की कलान में कुशल हैं तासों एक दूसरे के मन की समुझि समुझि मुसिकात हैं।

मूल० **सबैया**

कोक कलान बिलास में नागर
नाहिं दोऊ कोऊ घट घातनि।
नई नई भाँति नई ध्रुव चोंप
बढ़ी मन माँहिं चितै दृग पातनि॥
चाहत लाल छुयौ उर हार
लई सखि लाइ रंगीली जुबातनि।
आनि धरे करतौ कुचयों
जनु कुन्दन कुँभ ढके जल जातनि॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

कोऊ विलास (प्रेमबिलास) की कलान में ये नागर नागरीजू कोऊ काहूसों घाटिघातनाय। नई-नई प्रकारसों घात करि एक दूसरे कू छकायौ करें हैं ज्यों-ज्यों इन दोउन के दृग परस्परि मिलै हैं त्यों-त्यों मनन की चोंप बढ़ती रहै है। लालकी लालसा भई कै प्यारी के उर हारकू छीऊं तब हे सखी लालनें प्रियाकू रंगीली बातनि में लगाय लई अरु हाराबलि सुरझायवे के मिस (बहाने) अपुनों कर

प्यारीजू के उरजन पै आनि धरयौ। तहाँ ध्रुबदासजी कहै हैं अहो रसिकजन ता समय एसी शोभा बढ़ी मानों कुंदन (कंचन) के कलश कमल दल सों ढ़के हैं।

मन मन अंतर सहज ही, बढ़ी रंग रस केलि।
उर नैंनन फैली अधिक, चाह मदन सुख बेलि॥

ब्रजभाषानुबाद (टीका)

ताहि छिन दो उनके अंतरंग मनन में सहज रूप सों मदन रंग की रस केली बढ़िवे लगी अरु चाह सुख की बेली प्रगट रूप सों नैंनन में अधिक तासों फैल रही।

मूल दोहा

दोऊ प्रबीन नागरि नवल, अपनी अपनी भाँति।
फबित न जब कछु चतुरई, तब पिय हा हा खाति॥
कहत बचन अति दीनह्वै, निरखि प्रिया मुख ओर।
चरन अलंकृत करन कों, आँचत नवलकिशोर॥
आतुरता अति दीनता, चाह चोंप अधिकाइ।
निरखि समुझि मन नागरी, चितै लछु मुसिकाइ॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

ये दोऊ नागरि नबल कोक की कलान में अपनी अपनी रीतसों चतुर हैं। जब चतुराई की घातन में प्रिया के आगे लाल की नहीं चलै है तब लाल हा-हा खान लगै हैं। कहा कै अति दीनता प्रकाश करन लगै हैं।

या प्रकार सों प्यारीजू की ओर निरखते भए लाल अति दीन बचन कहन लगे हे प्यारीजू हौं तो तिहारे ही आधीन हौं सो कृपा करकै अपने चरनन कूँ अलंकृत करिबे की आज्ञा दै मेरौ मनोरथपूर्ण करौ तब लाड़िलीजू लाल की चाह (मनोभिलाषा) चोंप की अधि-

काई अरु दीनता तथा आतुरता कूँ देखि अरु नबल पिय की रसघात कूँ समुझि पिय की ओर चितै मंद मंद मुसिकाईं।

मूल०— दोहा

मंजु कंज पद बिमल लै, गहे मृदुल पिय पानि।
करत चित्र अति गहर सों, जाबक कौ रंग बानि॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

नबल नागर पियनें तब प्यारीजू की मुसिकनि कौ बलपाय अपने मृदुल करन सों प्यारीजू के मंजूल अरु बिमल पद कंजनकूँ गहि लीने अरु जाबक कौ रंग लै अति गहर सों चित्रित करिबे लगे।

मूल०— दोहा

नखनि माँहि प्रतिबिम्ब छवि, रही अधिक झलकाइ।
चंद कंज मिलि एक ठाँ, जनु पाइन परे आइ॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

श्रीध्रुवदासजी कहै हैं अहो रसिकजन (सखी) हों ता समय की छबि आपुसों कहा कहूँ जब जाबक देतमें लालके मुख कमल कौ प्रति-बिम्ब लाड़लीजू के नख चंद में परचौ सो मानों चंद्र अरु कमल निल प्यारीजू के पायन परै हैं ऐसी शोभा भासित भई।

मूल दोहा

जेहि रस मन ढरै नागरी, ढरत लाल तिहिं रंग।
छिन छिन प्रति चितबत रहत, मोंहनि भाइ तरंग॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

हे सखि जाछिन में नागरीजू कौ मन जैसे रस की ओर ढरै है तब प्रियतम प्यारौहू वैसे ही रस रंग में ढ़रैं हैं कहूँ चूक न परि जाय

तासों लाल प्रतिछिन प्यारीजू की भौंहन कौ भाव तरंगन कूं देख्यौ करें हैं।

मूल– दोहा

अति ही छबीली सोहनी, प्रीतम उर यह आनि।
सुँदर मुख पर दीठ उर, दीयौ दिठौना बानि॥
अटपटी बात है प्रेम की, बरनत बैन बनैंन।
धरत चरन प्यारी जहाँ, लाल धरत तहाँ नैंन॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

प्यारीजू अति ही छबीली हैं अरु शोभा की निधी हैं तासों प्रीतम के उर में एसी आई कै कहूँ प्यारीजू कौं मेरी नजर न लग जाय तासों प्यारे नें प्यारी के सुन्दर मुख पै दिठौना दै दियौ। ध्रुवदासजी कहैं हैं प्रेम की बात बड़ी ही अटपटी है जहाँ-जहाँ प्यारीजू चरन धरें हैं वहाँ-वहाँ लाल अपने नेत्रन के पांवड़ बिछावें हैं।

मूल– दोहा

यद्यपि प्यारे पीय कों, रहत प्रेम आवेश।
कुँवरि प्रेम गंभीर तहँ, नाहिनु बचन प्रवेश॥
प्रिया प्रेम सागर अमल, लहरनि लेत समाय।
उमड़ै जो मरिजाद तजि, कापै रोकौ जाय॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

जदपि प्यारे प्रीतम कों प्रतिछिन प्रेम कौ आवेश रहै है पै कुंवरिजू कौ प्रेम अति ही गंभीर है तासों बचनन के द्वारा कह्यौ नहीं जाय सकै है। कहा कै प्रिया के हृदय में प्रेम अमल कौ सागर है सो जो अपनी मरिजाद तजिकै उमड़ै तौ कहौ ऐसौ कौन है जो रोक सकै तासों प्यारीजू निज स्वभाव की गंभीरता में ताकी लहरन कूँ समाय लेय है।

मूल— दोहा

छबि छिपाइ भूषन बसन, राखत प्रेम दुराइ ।
समझ कुँवर की गति कुँवरि, जतननि करत विहाइ ।।

व्रजभाषानुवाद (टीका)

प्रिया कुंवरिलाल कुंवर की गति कूँ जानें हैं तासों जतन पूर्वक अपने अंगन की छबि कूं भूषन अरु बसनन सों छिपाइ कै राखें हैं अरु निज प्रेमकूं हृदय में दुराइ कै राखें हैं ।

मूल— कवित्त

परी है कठिन नवलकिशोरीजू कौं,
छिनहीं छिन नई छबि कहाँ लों छिपावहीं ।
जोई अंग प्रीतम की दृष्टि सों परस होत,
नीरज से नैंना नीर भरि भरि लावहीं ।।
हित ध्रुव अधिक विवस भए जात पिय,
ताही हेत सुकमारी जतन बनावहीं ।।
और अंग राखे पट भूषणनि में दुराइ,
लोचन चपल चल कहे में न आवहीं ।।

व्रजभाषानुवाद (टीका)

श्रीध्रुवदासजी कहें हैं अहो रसिक जन (सखी) कबहूँ कबहूँ प्यारीजू कों अपने अंगन की छबिकूँ छिपाइबे में अति ही कठिनाई परै है । काहे सों कै नवलकिशोरीजू के अंगन सों छिन-छिन में नई छबि उदय होय है । अरु ता नवीन छबि कूँ देखिकै प्यारौ प्रीतम अधिक विवस (विथकित) हौंन लगै है । प्यारीजू के जिन-जिन अंगन सों प्यारे की दृष्टी स्पर्श होय है ताही छिन प्रीतम की दशा विथकित ह्वै जाय है । कहा ? कै लाल के कमल से नेत्रन में प्रेम नीर भरि आवै है । ता करन सों ही सुकमारीजू बहु जतन करि भूषन अरु

बसनन सों निजु अंगनि की छबिकूँ ढाँपि कै राखै हैं। पै प्यारीजू के लोचन कहे में नहीं आवै हैं। कहा ? कै प्रीतम की प्रेम दशा सों चपल होय तिनहीं के नेत्रन सों जाय भेंटे हैं।

मूल— दोहा

तहाँ मान कैसै बनै. अद्भुत जहाँ यह प्रेम।
भीजे दोउ आसक्त रस. कहाँ समाइ तहाँ नेम॥

व्रजभाषानुवाद (टीका)

ध्रुवदासजी पूछै हैं कहौ जहाँ ऐसौ अद्भुत प्रेम है अरुदोऊ जन रस में ऐसे आसक्त हैं तहाँ बीच में नेम कैसै कै समाय सकै है। कहा? कै स्थूलमान कैसै बनि सकै है।

मूल— दोहा

जब चितवत अनुराग जुत, कुंवरि नैंन चख कोर।
तेहि छिन बारत प्रान पिय, ढरत शीस पग ओर॥

व्रजभाषानुवाद (टीका)

जब कुंवरिजू अनुराग सों भरि तिर्छे नेत्रन सों लाल की ओर चितवत हैं ताही छिन प्यारौ प्रीतम अपने प्रानन कूँ प्यारीजू पै न्यौछावर करदेय है। कहा ? कै अति आधीनता मानि निजु शीस प्रिया के चरनन में झुकान लगै है।

मूल— दोहा

भये मगन पिय छवि निरखि गए बिसरि चख चीर।
रूप सरोवर में मनों रहे कंज भरि नीर॥
प्रेम सुरंग रंग रचि रहे शोभा कही न जाय।
मनों लालच पिय हीयतें नैनन प्रगटौ आय॥

व्रजभाषानुवाद (टीका)

छबीली सोहनी जू के सुन्दर मुखारविन्दपै दिठौना लगिबे सों जो छबि बिकसित भई सो लाल वा छबिकू निरखि अपनपौ भूल ऐसे

मगन भए कै पलकनि के निमिषहू भूलि बैठे। कहा ? कै पलकन कौ गिरबो हूँ भूलि गए। हे सखि ता समय की शोभा कहा कहूँ मानों रूप के सरोबर में कमल नीर भरें हैं ऐसो रूपक दीख परचौ। ऐसे प्रेमरंग के सुरंग रंग में रचे लाल की शोभा कहा कहूँ मानों पियके हियकौ लालच उनके नैंनन में प्रगट भयौ है।

मूल— दोहा

पिय मुख अंबुज की दशा, सुन सखि कही न जात।
फूलत अधरन रस पियें, बिनु पीयें अकुलात॥

व्रजभाषानुवाद (टीका)

श्रीध्रुवदासीजू कहत है अरि सखि सुन प्यारे के मुख अंबुज की दशा मोपै कही नहीं परै है। कहा कै जब ताई प्यारे के कमल नैंन प्यारीजू के अधरन कौ रस पीवें हैं तब ताई आपकौ मुख कमल खिल्यौ रहै है अरु निमेष कौ अंतर परिवे मात्र सों कुम्हलाय जाय है।

मूल— दोहा

अति प्रवीन रस नागरी, लिए कुँवर भरि अंक।
मनों सुधा रस प्रेम बल, कंजहि देत मयंक॥
जबहिं लाल लटकत विवस, ललना लेत सँभारि।
राखत हिय सों लाय हिय, लज्जा नेम बिसारि॥

व्रजभाषानुवाद (टीका)

जब लाल प्यारी के रूपसागर में गोताखान लगे। कहा ? कै नैंन के चीरहू बिसरि बैठे तब प्रबीन नागरीजू नें कुंवर पियकूँ अंक में भरि लियौ ता समै की शोभा कहा कहूँ मानों मयंक (चन्द्रमा) कंज (कमल) कूँ प्रेमबल सों सुधा पिवावै है ऐसो भासित भयौ। जब-जब लाल रस सों विवस ह्वै सुध बुध भूलन लगै हैं तब-तब ललना लज्जा नेम कूँ बिसारि कै हित सों हिय लाय सभाँरि रखें हैं।

मूल०— **दोहा**

छबि निधि रस निधि नेह निधि, गुननिधि परम उदार ।
रंगे परस्पर एक रंग, अद्भुत जुगल विहार ।।
जोवन मद नव नेह मद, रूप मदन मद मोद ।
रसमद रतिमद चाहमद, उनमद करत विनोद ।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

ये दोऊ छबि निधी हैं रस निधी हैं अरु नेह कीहू निधी हैं अरु परम उदार हैं तथा गुनन कीहू निधि हैं तासों एक रंग सों रंगे अद्भुत बिहार करत रहत हैं । जोबन के मद में भरे नब नेह के मदसों सने अपने रूप मद सों मदन (कामदेव) कूँ मोद उपजाबत रहत हैं । रस मद सों बिबस ह्वै रतिमद की चाह सों भरे उनमद (उनमत्त) ह्वै नाना प्रकार के विनोद करत रहत हैं ।

मूल० **सवैया**

मधुरतें मधुर अनूपतें अनूप अति,
रसनि कौ रस सब सुखन कौ साररी ।
बिलास कौ बिलास निज प्रेम की है राजदशा,
राजै इक छत यह बिमल बिहाररी ।।
छिन छिन तृषित चकित रूप माधुरी में,
भूले से ही रहैं कछु आबै न बिचाररी ।।
भ्रम हूँ कौ बिरह कहत जहाँ उर आबै,
ऐसे हैं रंगीले ध्रुव तन सुकमाररी ।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

श्रीध्रुबदासजी कहैं हैं अहो रसिकजन (सखी) यह अद्भुत जुगलबिहार मधुर सों मधुर है अरु अनूपतें हूँ अनूप है । काहे सां ?

कै या विमल विहार में प्रेम की दशा कौ एक छत्रराज है। एक दूसरे की रूप माधुरी सों चकित बने ये दोऊ त्रिषित चकोर ह्वै भूले से ही रहे आवें हैं। कहा ? कै इनके या रस बिलसवेतें इतर कबहूं और कोऊ प्रकार कौ बिचार ही नहीं आवै है। इन दोउन के तन अति सुकुमार हैं सो इन रंगीले जुगल वर के निकुञ्ज रस बिलास में विरह (वियोग) कौ भ्रम हूँ डर उपजावै है।

मूल दोहा

दिन दूलह दिन दुलहनी, परम रसिक सुकुमार।
प्रेम समागम रहत दिन, नबल निकुँज विहार॥

ब्रजभाषानुबाद (टीका)

परम रसिक सुकुमार ये दोऊ नवल निकुञ्ज में नित्य दूलह-दुलहनी (वर-बधू) रूप सों विराजें हैं तासों इनकौ प्रेम समागम नित्य होतौ रहै है।

मूल— सोरठा

कोक कलान प्रवीन, नब किशोर दम्पति सदाँ।
सुरत सिंधु सुख लीन, अति बिचित्र नागरि कुँवरि॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

ये नव किशोर दम्पति (बर-बधू) कोक (प्रेम) की कलान में अति ही प्रबीन हैं सो सुरत सिंधु के विचित्र सुख में लीन (सने) ह्वै रहैं हैं। कहा ? कै ये देऊ नवदंपति (वर-बधू) हैं तासों नित्य समागम के सुख में सने रहैं हैं।

मूल— दोहा

रति नागर दोउ रंग भरे, सुरत तरंगन माँहि।
चाह चोंप मन मन समुझि, चितै चखनि मुसिकाँहि॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

ये दोऊ नागर नागरी सुरत सिंधु की तरंगनि में विहार करकैं रति के रंग सो भरे रहैं हैं। अरु इन दोउन के चख (नेत्र) एक दूसरे के मन की चाह चोंप कूं समुझि मुसिकायौ करें हैं।

मूल　　　　दोहा

बर विहार कछु श्रमित भई, प्रिया परम सुकुमारि।
रुचिर पीत अंचल लिये, मृदुकर करत बयारि॥
गौर बदन पर फबि रही, बिथुरी अलक रसाल।
शिथिल बसन भूषन सबै, घूमत नैंन बिसाल॥
अति सुदेश आलस भरे, अरुन छवीले नैंन।
प्रेम की रैनी में रंगे, मनों कंज रति मैंन॥
अरुणाई बिच श्यामता, छबि नहीं परत बखान।
मनों मधुप अनुराग के, रंग में बोरे आन॥
रति बिनोद जामिनी जगे, सिथिल अटपटे बैंन।
अँग अँग अरसाने सबै, सरसाने सखि नैंन॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

जब ऐसौ अद्भुत बिहार करते-करते परम सुकमारी प्रिया कछु श्रमित ह्वै गई अरु तिन अंगन में श्रमकन (स्वेद) झलकि आये तब तौ नेही लालजू अपने कोमल करन में सुंदर पीताम्बर कौ छोरलै वियार (पवन) करिवे लगे। देखौ तौ प्रिया के बदनारविन्दपै विथुरी अलक कैसी रसालता सों फबि रही है। अरु सबै भूषन तथा वस्त्र हूँ ढीले ह्वै गये हैं। इनके अँग आलस सों भरे शोभें हैं पै विशाल चञ्चल नैंन रसमाते घूम रहे हैं। देखौ तौ इन दोउन के छबीले नैंन अरुण ह्वै अति शोभित हैं सो मानों रति अरु मैंन के कंज प्रेम की रात्री के रंग सों रंगे हैं।

ध्रुवदासजी कहैं हैं इन नेत्रन की छबि मोपै कही नहीं परै है। कहा ? कै अरुन नेत्रन के बीच जो श्यामता है सो मानों मधुपन कूँ अनुराग के रंग में बोरे हैं। रति के विनोद सों भरे ये दोऊ सबरी रात जगे हैं तासों इनके बसन अरु भूषन तौ सिथिल भएई हैं पै बचनहूँ अटपटे निकसैं हैं। इनकी या अरसानी (आलस भरी) अवस्था कूं देखिकै सखीन के नैंन सरसाय रहे हैं। कहा ! कै इनके आलस भरे अंग अरु भूषन वसनन कौ रंग रस सखीन के नैंनन में छाय रह्यौ है तासों वह हर्षित ह्वै रहे हैं।

मूल० कवित्त

सब निश रंग भीने मनके मनोज कीने,
भोर एक चुनरी सुरंग ओढ़ै ठाड़े हैं।
अरुझैहैं नख सिख घटत न चोंप कैहूं,
अँग अँग प्रति अति आलिंगन गाढ़े हैं॥
सोंधे भीजे सोहैं बार, छूटि टूट रहे हार,
देखवे कों रूप नैंना सतगुने बाढ़े हैं।
हित ध्रुव रस मय के फबि रहे रस माते.
सुरत सुरंग रंग में मनों झकोर काढ़े हैं॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

श्रीध्रुबदासजी कहैं हैं अहो रसिकजन (सखीगन) या प्रकार सों इन दोउन में सिगरी (सबरी) रात रस रंग सों भरि मनके भाये मनोरथ करे हैं अरु अब भोर ही (मंगल समय कुँज भवन में एक ही सुरंग चूनरी ओढ़ै ठाढ़े हैं। जदपि ये दोऊ एक दूसरे सों नखसों सिखलों अरुझि रहे हैं। कहा कै लिपट रहे हैं पै क्यों हूँ रस विलसबे की चोंप घटै नहीं है। इनके छूटे बार सुगंधन सों सने हैं अरु रति रण कलह सों इनकी हाराबली टूट रही है सो या अद्भुत रूप कूँ निरखिबे कों सखीन के नैना सतगुने बाढे हैं। कहा ? कै इनके या

अद्भुत रूपकूँ निरखिबे कों सखीन के नैंन निमिषहू भूलि बैठे हैं। ये दोऊ रसमसे अरु रसमाते अति ही शोभित ह्वै रहे हैं सो मानों सुरत रंग के रस में झकोरकै निकासे हैं। कहा कै तत्सुखी सखीननें मंगल समय राग रागनी गाय सुरत रंगसों निकासे हैं। चेतन किये हैं।

मूल० दोहा

रँग मगे दम्पति रसमसे, हित ध्रुव अद्भुत केलि।
छबि तमालसों लपटि रही, मानों छबि की बेलि।।
सीस सीस तरें बाहु दै, जुरे मिथुन मुख चाहि।
निशदिन जीवन सखिनके, यहै परम सुख आहि।।
उभै सरोवर रूपके, हंस सखिन के नैंन।
अद्भुत मुक्ता चुगत दिन, चितबनि मुसिकनि सैंन।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

सुरत रंग में मगन भए अरु रसमसे इन दंपतिजू की निकुञ्ज केली अद्भुत है। ये दोऊ एक दूसरेसों निरन्तर ऐसैलिपटे रहैं हैं जैसै छबि के तमालसों छबिकी बेली लिपटी रहै है। गरवाहीं दियें अरु मुखसों मुख जोरें मत्त ह्वै रस पान करत रहत हैं सो सुख ही सखीनकौ जीवन है। कहा कै इन मिथुन को जा रस की चाह है सोई रस इन सखीन कौ परम जीवन है तासों इनके मुख की चकोर बनी रहैं हैं। ये दोऊ रूप के सरोबर हैं। अरु सखीन के नैंन या सरोवर के हंस हैं सो नित्य नित्य निरन्तर इनकी चितबनि, मुसिकान अरु सैनन रूपी मोती चुग्यौ करैं हैं।

मूल० दोहा

सहज रंग सुख सिंधु कौ, नाहिन है सखिपार।
श्रीहरिवंश प्रताप बल, कह्यौ बुद्धि अनुसार।।

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

श्रीध्रुवदासजी कहैं हैं अहो रसिकजन ! ऐसे सहज सुख के रंग कौ यह वृन्दाविपिन सिंधू है सो याकौ पारावार नहीं है। कहा कै वृन्दावन कौ यह सहज सुख ब्रह्मा तथा योगिंद्रनकूँ भी दुर्लभ है तासों श्री हरिवंशचन्द्र जू के प्रताप बल सों ही अपनी बुद्धी के अनुसार कह्यौ है।

मल० **सोरठा**

होंहि सकल जो गात, रोम-रोम रसना सहित ।
कह्यौ तऊ नहिं जात, पिय प्यारी कौ प्रेम रस ॥

ब्रजभाषानुवाद (टीका)

जो सबरे अंग के रोमन के रसना (जिह्वा) होंय तउ यह पियप्यारी कौ प्रेम विलास कह्यौ नहीं जाय सकै है।

वृन्दावनेश्वरि तवैव पदारविन्दम्
प्रेमामृतैक मकरन्द रसौघ पूर्णम् ।
हृद्यर्पितं मधुपतेः स्मरतापमुग्रं
निर्वापयत्परम शीतलमाश्रयामि ॥ १२ ॥

रसकुल्या टीका

भावनया साक्षात्कृतां जातामेव तादृश दृष्टिंविभाव्य तत्प्रसादं निर्भर नमन्ननुभूत तादात्विक लीला विनोदकं कथयंस्तच्चरणं समाश्रयते वृन्दावनेश्वरीति ! हे वृन्दावनेश्वरि अहं तव पदारविन्दं समाश्रयामि इत्यन्वयः

हिन्दी भाषा

भावना के द्वारा हुई, और अपने ऊपर उनकी कृपा दृष्टि हो रही है ऐसा समझ कर, उनकी कृपा के भार से पूर्ण रूपेण झुक कर

(नमन करके) ही उनकी लीला विनोद का अनुभव करते हुए, चरणों का आश्रय लेते हैं और कहते हैं—हे वृन्दावनेश्वरी मैं तुम्हारे चरण कमलों का आश्रय (सहारा) लेता हूँ ! यह अन्वय है (सम्पूर्ण श्लोक के भावों के साथ इसी अभिप्राय का सम्बन्ध है)

रस कुल्या टीका

सकल धामातिशायी प्रभाव परम माधुर्य विलास विलसत्प्रेम रसाधार सच्चिदानन्दमय विधीशादि प्रार्थनीय तरुवरादिवैभव श्रीमुख प्रशंसित रहोधाम श्री वृन्दावनं तस्मे-श्वरी तद्धाम संवलित विश्रम्भैश्वर्यं यस्याः राधा वृन्दावने-श्वरी वृन्दावन विलासिनीति तत्सम्बोधनमैश्वर्योक्त्या सकल परिजन शरणाश्रित मनोरथ दुःसाध्य साधन पटीयसीत्व सर्वदा कति न शरणागत ततीः पालयतीति परम सेव्यत्वं च। अहं त्वदीयत्व वल दूरापहृत साध्य साधन महद् वृन्दो. विरहतप्तस्तवैव प्रेमामृत द्रुत चित्ताया एवेत्यल्प योग व्यव-च्छेदः ! पदारविंदं सकल सौकुमार्य शीतल सौरभ्यादिगुण विशिष्टमाश्रयामि नान्याधारो ममेत्यर्थः।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

श्री वृन्दावन का प्रभाव और माहात्म्य, समस्त धामों के एकत्र प्रभाव और माहात्म्य से भी अनन्त कोटि गुणित अधिक है अर्थात् समस्त धामों की महत्ता मिल करके वृन्दावन की महिमा के कण के भी तुल्य नहीं हो सकती है। यहां तो परम माधुर्य के विलास से शोभायमान प्रेम रस के आधार स्वरूप सच्चिदानन्द विग्रह प्रभु लता गुल्म तरु वरादि के रूप में विराजमान हैं, जहाँ गुल्म लता औषधि के रूप में जन्म धारण करने के लिये ब्रह्मादिक देवगण भी लालायित हैं तथा इस वृन्दावन की प्रशंसा तो प्रभु ने श्री मुख से बार बार की

की है, इसके अतिरिक्त यह तो दिव्य प्रेम लीला को प्रकाशित करने वाला, प्रेरित करने वाला, दिव्य उद्दीपन विभाग रूप हैं यह वृन्दावन वृन्दा का श्री राधा का वन है इसकी ईश्वरी श्री राधा रानी हैं और वृन्दावनेश्वरी नाम से ही विख्यात हैं। श्री राधा के साथ वृन्दावन का सम्बन्ध स्पष्ट करने को और विश्वास दिलाने को, वृन्दावनेश्वरी वृन्दावन विलासनी आदि सम्बोधन दिये हैं जिनसे वृन्दावन का परमैश्वर्य ध्वनित होता है। इस ऐश्वर्य से समस्त शरणागतों के मनोरथ पूर्ण होते रहे हैं, दुस्साध्य साधन भी जहाँ साध्य बनता है (फलं वा साधनं मन्त्र-सर्व साधन राहित्यं) आदि वाक्य यहां शरणागत पतित पावन सक्रिय बने हैं। यहां तो विश्वास रहता है कि मैं तुम्हारी शरण हूँ इस त्वदीयत्व बल से समस्त साध्य साधन समूह निष्प्रभ हो जाते हैं। यहाँ तो जिनके विरह ताप से तप्त होकर प्रेमामृत प्रभाव से पिघले हुए चित्त में उनके अतिरिक्त वस्त्वन्तर की सत्ता ही नहीं रह जाती है द्वैत में अद्वैत हो जाता है (तद्भाव भावानुशया कृताऽकृतिः) लपुटी का वाध कर देती है तो साध्य साधन की बात ही क्या ? उन वृन्दावनेश्वरी के पादारविन्द, समस्त सौकुमार्य, शीतलता, और सुगन्धादि गुणों का निधान है उन्हीं का आश्रय लेना है उन्हीं पादारविन्दों का सेवन करता हूँ जैसे आकाश सेवन वायु सेवन होता है और मेरा कुछ आधार है न आश्रय है न साधन साध्य है !

रसकुल्या संस्कृत टीका

तत्र किं जातोयोमकरंद इत्यत्राह। प्रेमामृतेत्यादि। नित्यानंतानन्द माधुर्याप्यायन मंगलामृत गुणविशिष्टः प्रेमैवेको मुख्यो मकरन्दः पुष्परसो विलक्षण सौगन्धस्वादु द्रवस्तस्यौघैः पूर्णं प्रसिद्धारविन्दाद्वैलक्षण्यमयंभावः सेवकानाम्परम प्रेमदायि यदाश्रयं विनानैतादृश प्रेम प्राप्तिरिति प्रेमरूपो प्रियास्तद्वत्तासिध्येत्सेवनं करोतीति किम्भण्यते पूर्णा-

नुराग रसमूर्तेः पादपद्मे प्रेमैव मकरन्दः स्यादिति योग्यमेव। यद्वा—कार्य द्वारा कारण ज्ञानं लक्ष्यते। यद्दर्शनादेव हृदय नयन द्रवमाणता साश्रु कंप पुलकान्युद्भवन्ति इति कार्यकृत-यावक चित्र सेवा संवाहन मंजीरादि सन्निवेश समये स्पर्शज सात्विकतापिदर्शिता सखी जनस्य वा। प्रियस्याभिलाष वशलो वन-विहार निकुंजादि विलास जल क्रीड़ाद्यर्थं प्रार्थ-नया यत्र तत्र पदारविन्देन गच्छत्येति परम प्रेमवश्यतापि प्रेमरूपं कार्यञ्चसर्वाङ्गीण संभृतोत्तर बहिः पतन प्रवहण कार्य दर्शनात् प्रेमाश्रये प्योधत्वं नित्यदाप्येवमेवेत्यखंडत्वा दाद्यन्तनिर्वाहात् पूर्णत्वमिति जाननात्साध्यसाधनदशादि-षुनिःसीम मङ्गलास्वाद दायिसर्वातिशय त्वं स्वस्य विषयत्व मन्येषां आश्रयत्वमिति।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

श्रीवृन्दावनेश्वरी के चरण-कमलों में जो मकरन्द (पुष्प रस) है उसका आश्रय नहीं है, कारण यहाँ मकरन्द नाम की कोई पुष्प से भिन्न विजातीय वस्तु नहीं है न पुष्प सार स्वरूप कोई उत्कृष्ट वस्तु मकरन्द नाम की है अपितु पादारविन्द प्रेमामृत ही मकरन्द है।

नित्य, अनंत, आनंद की माधुरी में सरावोर करने वाला, मंगलमय अमृत गुण वाला (अमंगलमय देवामृत जैसा नहीं) प्रेम ही मकरन्द पुष्प रस है जिसमें विलक्षण प्रेमोन्माद ही सुगन्ध और स्वाद प्रदान करने वाला तरल तत्व निहित है उस तत्व का भण्डार भरा है अतः यह प्रेम रूप मकरन्द सर्वथा अनिर्वचनीय ही है। जब कि प्रसिद्ध जड़ अरविन्द ही लोक में उपमान के रूप में माना गया है तो उपमेय न्यून अवश्य माना जायगा परन्तु यहाँ उपमान को व्यर्थ सिद्ध करने के लिये चरण ही कमल हैं और कोई कमल है ही नहीं ऐसा

कहने के लिये प्रसिद्ध अरविन्द से विलक्षणता सिद्ध की है कि भाव यह है कि ये पादारविंद सेवन करने वालों को ही प्रेम की प्राप्ति होती है, इनका आश्रय लिये बिना उस प्रेम की प्राप्ति नहीं है जिसे श्रेष्ठतम प्रियतम प्रेम मूर्ति श्रीकृष्ण कहते हैं। इससे अधिक और कुछ कहना अशक्य है कि पूर्णानुराग रस सागर सार मूर्ति श्रीराधा के पाद पद्म का सेवन करने वाला ही प्रेम मकरन्द (श्रीकृष्ण) प्राप्त करता है अथवा-कार्य के द्वारा कारण का ज्ञान होता है कि जिन पद कमलों का दर्शन करने से ही हृदय और नेत्रों में द्रवता उत्पन्न होती है द्रवित हृदय ही आँसू के रूप में नेत्रों से बहता है। कंप, पुलक (रोमांच) आदि सात्विक भाव प्रकट होते हैं, जब सखीजन महावर लगाती हैं, मेंहदी जावक आदि से पत्रावली रचना करती हैं, चरण दबाती हैं मंजीर (चरणों के आभूषण नूपुर आदि) धारण कराती हैं तब स्पर्श होने मात्र से ही सात्विक भावों का उद्गम होता है। लालजी अथवा प्रियाजी की इच्छा से बनविहार, निकुञ्ज विलास, जल क्रीड़ा की प्रार्थना करने वाली सखीजनों की भी अभिलाषा पूर्ण करने को जहाँ तहाँ चरण कमलों से ही जाते समय चरणों का वह अलौकिक विलास देखने वाली सखियों की प्रेम परवशता और प्रेमोद्गम कार्य का सर्वांगीण चमत्कार दीखता है कि प्रेम परवशता के कारण बार-बार गिरना पड़ना, और आकर्षित होना, और प्रेमाश्रय का प्रेमाधार का उन्माद रूप आगार नित्य और एकरस अनन्त और पूर्ण प्रकट है वही साध्य साधन रूप से मंगलमय आस्वाद्य है और सर्व श्रेष्ठ है अपने लिये फल स्वरूप है और आश्रितों के लिये आश्रय रूप है। ये पादारविन्द मकरन्द का स्वरूप है।

रसकुल्या संस्कृत टीका

अथकान्तापेक्षया रसदायित्वेन तापोपशमन शीतलधर्मत्वेन च विशिनष्टि मधुपतेः हृद्यर्पितंसत् उग्रंस्मरतापं निर्वा-

पयत् परमशीतलञ्चेति मधुरभोक्तृत्वेन चरणमधुनोवासर्वां-गीणस्य परम ममताश्रयत्वख्यातस्य ।

यद्वा वसंतपतेः कामरूपस्य प्रियाभिलाषजनकस्तत् पूरणात् पतिस्तस्यहृदि पूर्वत एव हरणधर्मवति ततोऽपि साक्षार्दपितं प्रियेण बहुप्रसादजननोपाय प्रार्थनादिभिः कथञ्चिदनुरोधनेनकरेण न हृद्यर्पितं ।

रसकुल्या हिन्दी अनुवाद

इसके अतिरिक्त कान्ता को रस प्रदान करने की अपेक्षा अपने को भी रस प्रदान करने की विलक्षणता यह है कि, विरह ताप का उपशमन और शीतलता आदिक का लाभ स्वयं भी मधुपति प्राप्त करते हैं। मधुपति अपने हृदय पर या हृदय में धारण करके काम के उग्रताप का उपशमन अनुभव करते हैं। परम शीतल, परम मधुर चरणारविन्द मकरन्द का सर्वाङ्गीण उपभोग करके परम आह्लाद प्राप्त करते हैं तब अधिकाधिक लाभ और लाभ के कारण अपना ही धन सर्वस्व (गोविन्द जीवन धनं शिरशा वहामि) मानकर ममत्व स्थापित करते हैं अथवा—मधुपते, मधु माने वसन्त के पति कामदेव रूप बनकर प्रियाके हृदय में अभिलाषा जाग्रत करने वाले और अभि-लाषा की पूर्ति करने वाले होने से पति भी बनते हैं (वृन्दावन के रति काम साक्षात् लाल प्रिया ही हैं और यहाँ का वसन्त भी दिव्य एवं अप्राकृत ही है) उनके हृदय में रहने वाले स्थैर्य (विवेक, धैर्य, लज्जा) आदि का अपहरण करके रस को समर्पित करने के कारण प्रिय बनते हैं (प्रीणातीति प्रियः, पृधातोः रिमनच प्रत्ययः) अनेक प्रसाधनों को उत्पन्न करने वाले साधन, प्रार्थना, काकु भाषणों के द्वारा किसी प्रकार आग्रह पूर्वक हृदय पर ना करने पर भी धारण करते हैं और स्मर ताप का उपशमन लाभ प्राप्त करते हैं।

रसकुल्या संस्कृत टीका

यद्वा–प्रसाद दयार्द्र द्रव चित्तया सर्वस्वं त्वदीयमेवेति सम्प्रदान वर्दषितं सत् उग्रंस्मरतापं 'लीलापांग तरंगितैरुद्‌भवन्नैकैकश: कंदर्पा इति तत् कटाक्ष बहुल जनितोत्कटत्वं स्मृति जनित विविध दु:सहावस्थोत्पादक कन्दर्पस्य तापं क्षुत् तृषानाशोपाय जनक वह्निवत् संतापं परम सुकुमारतयाऽभिलाष भरस्य दु:सहताध्वनिता निर्वापयदुपशमयत्। वर्तमानेनोपशमनानंदस्य स्यायिता। अतएव परम शीतलं शीतलोपचारश्चन्दन कमल चन्द्रादयस्तदप्राप्तौ अत्यंत आर्तकापादका अतएव तत्तापोपशमनात् परमशीतलस्येति तद्विलासदर्शनात् परिजनस्यानन्द जननत्वं ध्वनितम्।

प्रियाअभिलाष तापदर्शन तन्मयता पन्नस्यविगलित वेद्यांतरस्य सहचरी मनसोपि तदुपशमने तच्छीतलं अपि बुध्यते। साधक त्वापेक्षया वक्तुर्विरहतापापशांत्या पादनासंशनमपिध्वनितं। अत्र भ्रमर परागौ अनुक्तौ अपिज्ञेयौ तद्रसलंपटत्वान्मधुपतेरित्युक्ते भ्रमरत्वं प्रियस्योक्तमेवदास्येन तदास्वादत्वात्। सख्योऽपिभ्रमरा इति "सद्योवशीकरणचूर्णेति" ब्रह्मेश्वरादि सुदुरूहेति परमाद्भुत वैभवेति पूर्वोक्तं। सर्व प्रसरगन्धवाह बहनेन प्रख्यात श्रीमद्यशस्य तया परागत्वंज्ञेयम्। इति निजसाधकशिक्षार्थं तद्‌गामिफलत्वेन परस्मैपदं कमलाश्रयेणात्मस्वार्थेनापि भ्रमरत्वमननान्मुखरितावलीढादितच्छोभा स्वतएवभविष्यति चरणार्थमितिवा ॥१२॥

रसकुल्या हिन्दी अनुवाद

अथवा—प्रसाद (अनुनय विनय द्वारा प्रसन्न होकर) द्वारा, दया से भीगे हुए तरल चित्त वाली का सुख सर्वस्व, रति सर्वस्व, प्रेम सर्वस्व जो आत्म समर्पण के साथ प्रियतम का धन बन चुका था, वह तुम्हारा ही है कहकर सर्मापित करके, उसी की उत्कण्ठा का कार्य रूप स्मर उग्रताप शान्त किया (आश्वासन द्वारा धैर्य प्रदान किया) 'लीलापांङ्ग-तरंङ्गितैरुदभवन्नेकैकश: कोटिश: कन्दर्पा:' कि-जिन श्री प्रियाजी के सहज कटाक्ष विक्षेप से (आक्षेपक दृष्टि से) लीला ललित कटाक्ष से करोड़ों कंदर्पों का उद्भव हो जाता है, स्मर शब्द से यहाँ स्मृति जनित अनेकानेक दु:सहावस्था उत्पन्न करने वाले कन्दर्प ताप का लक्ष है। जैसे भूख प्यास को नष्ट करने वाला ज्वर ताप प्रसिद्ध है वैसे ही प्रेम पिपासा और भोगेच्छा का उपशम करने में स्मर ज्वर संताप प्रसिद्ध है वह स्मरताप स्मरज्वर पर सुकुमार नन्दराय कुमार की अभिलाषाओं पर निराशा बनकर तुषार पात करे तो वह कभी सहन न हो सके यह ध्वनि अति गूढ़ है तो उस निराशाजनित स्मर ज्वर की महौषधि चरणारविन्द स्पर्श ही है, उपशमन कारण रसायन ही है। हृदय पर पहुँचते ही उपशमन के साथ परमानन्द की अखण्डता भी अनुभव हो जाती है। इसीसे परम शीतल—माने शीतोपचार चन्दन लेपन, उशीरण प्रक्षेप, कमल स्थापन चन्द्र दर्शनादि के बिना ही अत्यन्त आर्तता का अपहरण करने की शक्ति वाला चरणारविन्द दर्शन है। इसी कारण स्मर के उग्रताप का उपशमन करने की सामर्थ रखने से परम विशेषण युक्त शीतल (लालजी के स्मरताप में और किसी साधन से शान्ति लाभ न होने से चरणारविन्द स्पर्श ही महौषधि है) उस स्मर ताप के उपशामक चरणारविन्द का दर्शन और उसका विलास परिजन को आनन्द भी प्रदान करता है यह और भी चमत्कार ध्वनित है।

प्रियतम की अभिलाषा पूर्ति में निराशा की झलक मात्र से जो महाताप प्रतीत होता है उससे सहानुभूति के कारण तन्मय होकर उसी प्रकार के महाताप के अनुभव का कुछ आभास मात्र प्राप्त कर 'विगलित वेद्यान्तर' पिघले हुए अथवा—गलित हृदयान्तर सखी-जनों के मानसिक ताप का भी उपशमन करने की सामर्थ्य वाला विलास दर्शन भी समझना है।

साधकों की अपेक्षा वक्ता के भी विरह तापाभास का उपशमन ध्वनित होता है (लालजी के स्मर ताप का उपशमन और सखीजनों के स्मर ताप का उपशमन तथा वक्ता के भी स्मर ताप का उपशमन होता है) यहाँ भ्रमर, पराग नहीं कहा है तो भी समझना है कि उस रस के लोभी रस लम्पट होने के कारण मधुपति शब्द से लालजी का भ्रमर होना माना गया है, और दास्य भाव के कारण साधकजनों का भी भ्रमर होना माना गया है वे भी आस्वादन करते ही हैं अर्थात् सखीजन भी भ्रमरी हैं भ्रमर स्थानीय है 'सद्यो वशीकरण चूर्ण' से पराग कण ही है 'ब्रह्मेश्वरादि सुदुरूह पदारविन्द' में चूर्ण सजातीय मकरन्द ही है (वहाँ विजातीय धूली तो जल में रहने के कारण सम्भव ही नहीं है) जिसका परमाद्भुत वैभव कुछ-कुछ कहने की चेष्टा की गई है। चारों ओर फैलाने वाला गन्ध वाह वायु, मकरन्द विकिरण करने की कृपा प्राप्त करने वाला वक्ता ही है (अनपहृत सौगन्ध्यनिलैः) कि निरन्तर यश वर्णन करने वाला वक्ता, नित्य नव नवायमान यश को निरन्तर विकिरण करते करते वायु की तरह तद्धर्माकान्त बन गया है तो, पादारविन्द यश मकरन्द और उसका वर्णन करने वाला वक्ता वायु है। यह साधकों को संकेत रूप से शिक्षा है उससे जो भी फल प्राप्त होगा वह परस्मै पद से स्पष्ट ही है। कमलों का आश्रय लेने वाला स्वार्थी मकरन्द लुब्धक भ्रमर, मनन और गुण गान के द्वारा मुखरित, शोभानुभव करने वाला होगा और चरणारविन्द का आश्रय प्राप्त कर कृतार्थ होगा।

राधाकरावचित पल्लववल्लरीके ।
राधापदाङ्क विलसन्मधुरस्थलीके ।।
राधा यशोमुखरमत्तखगावली के ।
राधाविहार विपिने रमतां मनो मे ।।

पदच्छेदः—राधाकरावचित पल्लववल्लरीके— राधापदांकविलसत्-मधुर स्थलीके । राधायशोमुखरमत्तखगावलीके । राधा विहारविपिने । रमतां । मनः । मे ।

अन्वय—श्रीराधा विहारविपिने मनो मे रमतां कथंभूते । राधा करावचित पल्लव वल्लरीके । पुनः राधापदांकविलसन्मधुर स्थलीके । पुनः राधा यशोमुखरमत्तखगावलीके ।

भाव—श्रीराधा कर कमलसों रचत तहाँ दल वेलि ।
राधापद अंकित मधुर शुभ स्थलीसु केलि ।।
राधा यशसों खग अवलि मत्त करत तहाँ सोर ।
राधा विपिन विहार में रमौ सदा मन मोर ।।११।।

बरव—जा वनकी द्रुम बेली पल्लव पात ।
रचि रचि प्रिया संवारी कोमल गात ।।
देखत जहँ तहँ अवनीहिय हुलसाय ।
प्रिय पद तल कर अंकित रहि चमकाय ।।
पतरी पतरी डारन चिरियन पांत ।
राधाजस मिल गावत अतिरस मांत ।।
सो वन नवल-किशोरी विहरन ठांउ ।
सदा बसे मन मेरे बलि बलि जांउ ।।
(गो० श्री० रूप०)

हिन्दी भाषा में सरलार्थ—

हे मेरे मन ! श्रीराधा-कर कमलों से छुई हुई पल्लव-वल्लरी से मण्डित, श्रीराधा पद चिह्नों से सुशोभित, मनोहर स्थल-युक्त तथा

श्रीराधायशगान से मुखरित मत्त खग पंक्तियों से सेवित श्रीराधा कुञ्जकेलि कानन श्री वृन्दावन में रमण कर ॥१३॥

श्रीकृपालाल कृत संस्कृत टीका—

किञ्चित् स्वमनसि चाञ्चल्यमालक्ष्य तदुपायरूप श्रीवृन्दावन गुणवर्णनेन मनः समाधयन् संबोधयति। राधा करेति। भो मे मनः राधा विहार विपिने रमताम्। कथंभूते राधा विहारविपिने। राधा करावचित पल्लव वल्लरीके। राधा कराभ्यां अवचिताः सर्वतः स्पृष्टाः पल्लवयुताः वल्लर्यो मंजर्यो यस्मिन्। तस्मिन्। स्वार्थेकन्॥ पुनः कथम्भूते राधाविपिने। राधा पदांकविलसन्मधुरस्थलीके। राधाचरण चिह्नैः विलसती शोभमाना मधुरास्थली यस्मिन्। पुनः कथम्भूते राधाविहार विपिने। राधा यशोमुखरमत्तखगावलीके राधा यशसैव शब्दायमानानां मत्त पक्षिणां पंक्तिर्यस्मिन्। अनेन वृन्दावनपक्षिणां राधानामातिरिक्तोच्चारणायोगः। पक्षिणामितिश्लेषः॥ तदभावे तदभावः ॥१३॥

राधा करावचित पल्लव वल्लरीके।
राधापदाङ्क विलसन्मधुरस्थलीके॥
राधायशोमुखरमत्तखगावलीके।
राधा विहारविपिने रमतां मनो मे ॥१३॥

रसकुल्या संस्कृत टीका

वृन्दावनेश्वरीत्युक्तेऽस्य हृदि तद्वन स्वरूपस्फूर्त्या तादृश तच्चरणारविंद विलासाधारस्थलं तदेकप्रवणं वर्णयति। राधाकरावचितेति।

मे मनो राधाविहार विपिने रमतामिति। मे तत्र सखीरूपेण स्थितस्यापि तत्तरुपल्लववल्लीस्थली खगावल्यादीनां

युगपत् पूर्णास्वाद मननार्थमत्युत्कण्ठस्य यथाविधत् स्वकर्णा-
युत मेषमेवरमिति। यथा च निदिध्यासोरात्म मायांहृदय
निरभिद्यतेतिवत्स्वकरण बिलसितस्यापि निदिध्यासंविना
न तादृश तदास्वाद इति मननान्मन इति अवबोधपूर्णाव-
काश सर्वव्यवहितादि स्फूर्तिप्रवणत्वदत्ताधिकारं राधेति।
आराध्या राधनीयाप्रिया प्रियसकलासिद्धिरूपा दास्येऽपिजन
परमानुराग सहजे न सख्यव्यवहारांगीकरणशीलेति साक्षा-
न्नाम बहुलोक्ति सख्य बलात् हि तस्याः विविधविहारस्य
विपिने कुञ्जनिकुञ्ज निभृतकुञ्जाक्रीड़ाद्याक्रीड़ास्थले रमतां
निरंतरगमनसामर्थ्यात् सर्वविलासाभिज्ञानानन्द दृष्टं क्रीड़तां
तत् क्रीड़ास्थले चैतत् क्रीड़नमसंभाव्य मित्याशंकायां तस्याः
क्रीड़ासमयेस्वतन्मयतापन्नतया दास्येन क्रीड़ानुभवं करोतु।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

वृन्दावनेश्वरी कहने मात्र से वृन्दावन का स्फुरण हुआ (ध्यान हुआ)तब पूर्वोक्त चरणारविंदों के अनुरूप विहारस्थल श्रीवृन्दा-वन का वर्णन करते हैं। जो वृन्दावन श्रीराधापदारविन्दों से सम्बद्ध है। 'राधा करार्वाचत श्लोक से' मेरा मन राधाविहार विपिन में रमण करे। अर्थात् वृन्दावन में सखी रूप से (सखी भाव से) रहने वाले मेरे मन को मैं सखीभावापन्न आत्मा (जीवात्मा) परामर्श देती हूँ कि उन वृक्ष, लता, विहारस्थली और पक्षी समूह आदि के उस अनिर्वचनीय परमानन्द के आस्वादन का मनन (चर्वण) करने के लिये अतिशय उत्कण्ठित होने के लिये जैसे अत्युत्कण्ठित पृथु महाराज ने प्रार्थना की थी कि मेरे दश हजार कर्ण हो जायँ जिनसे कथा श्रवणा-नन्द अयुत गुणाधिक प्राप्त हो, तथा अपनी लीला के आस्वादन करने की अत्युत्कंठा (इच्छा) से स्वरूप बनाया। इसी तरह इस दिव्या-

नन्द के लिये दिव्य इन्द्रिय (करण) मन, बुद्धि आदिक तथा बाह्य नेत्र आदिकों की आवश्यकता है।

इन दिव्य इन्द्रियों की प्राप्ति दिव्य लीलाओं के निदिध्यासन बिना सम्भव नहीं है और उस दिव्यानन्द के आस्वादन की भी प्राप्ति दिव्य इन्द्रियों बिना सम्भव नहीं है तो 'मननान्मन: उच्यते' इस कहावत से जिस तत्व का निदिध्यासन (निरन्तर चिंतन) मन करेगा तो मन तदाकार हो जावेगा। प्रकृति प्राकृत तत्वों का चिंतन करने वाला मन प्राकृत होगा। और दिव्य लीलाओं का चिंतन करने वाला मन दिव्य होकर दिव्य रस का आस्वादन कर सकेगा—तो मन को दिव्य तत्वों के अनुसंधान के लिये पूर्णतया छूट मिले और पोषक तत्वों के स्फुरणार्थ तन्मयता प्राप्त करने का सर्वाधिकार दिया जाय तब वह सार्थक हो अर्थात् राधाविहार विपिन में रमे।

आराध्या अर्थात् राधनीया प्रिया श्रीराधा (राधसाध ससिद्धौ) धातु है जिससे "अनयाराधितोनूनं" शुक मुनिने रासलीला में कहा है। प्रिय की समस्त कामना सिद्धकरी मूर्ति मति सिद्धि:। दास्य उपासना के प्रसंग में निजजनों पर (सखीजनों पर) परमानुराग तो स्वभाव ही के कारण है तभी तो सख्य व्यवहार स्वीकृत हुआ है।

बार-बार राधा-राधा नामोच्चारण भी तो सख्य भाव ही से सम्भव है, कारण सख्य भाव के बिना (समान भाव के बिना) उनके अनेकानेक विहार विपिनों में कुञ्ज, निकुञ्ज, निभृत निकुञ्ज आदि में जो क्रीड़ास्थल हैं उन स्थानों में (रहस्यमय स्थानों की रहस्यमय लीला स्थानों में) रमण करने का निरन्तर बिना रोक-टोक संकोच के गमनागमन का अधिकार भी कैसे प्राप्त हो सके सख्य भाव में अधिकार परमानुराग के कारण प्राप्त होने से समस्त विलास और उनका ज्ञान तथा तदुत्यपरमानन्द का दर्शन और उसमें मन का विहार सम्भव जानकर कहते हैं 'क्रीड़तां' मन क्रीड़ा करे। उस

समय उस क्रीड़ा स्थान में यदि वह क्रीड़ा देखने को न मिले तो ऐसी आशंका में पहिले जो देखी है उस समय तत् क्रीड़ा में तन्मयता हुई थी उस तन्मयता का चिंतन करने (ध्यान करने) पर उस क्रीड़ा (लीला) का समास्वादन अवश्य हो जाता है उस समय क्रीड़ा के अभाव में भी। उसके लिये दास्य भाव सहायक होगा तो हे मेरे मन क्रीड़ानुभव कर तुझ को निराश होने की आवश्यकता नहीं है।

रसकुल्या टीका

अन्यदा पुष्पावचयादि सेवायां तत् करावचय स्पर्श प्रत्यभिज्ञानेन शुक सारिका हंसादि खगमुख तन्नाम श्रवणेन च तत् क्रीडैवस्फुरतु मुकुरमिव संकुचितं क्रीड़दिव दृश्यमानं स्यात्। यदानंदातिशयनिविष्टस्तदेवा शास्ते तमाम् इति भावः! सर्वत्र सैवस्फुरतीत्याशयेनविशिनष्टि 'राधा करेति राधायाः कराभ्या मव चिताः पल्लवाः यासांतादृश्यो वल्लर्यो यस्मिस्तत् स्वविलास रहःस्थले निज कृतावचयेन नैश्वर्य क्षतिः शंकनीया! यद्वा वल्लर्यण्व वल्लरीकाः पश्चाद् बहु व्रीहिरेवमेवमग्रेऽपिस्थल्येन स्थलीका आवल्येनावलीकेति कप्रत्ययचमत्कारार्थं वल्लरीषु वल्लरीषु निजकरामृत सेचनादि वत् योषितासु पूर्ण वात्सल्यतो बाल्यत एव। तारुण्यमागता स्वपि मृदुल वल्लीषु पुनर्नवांकुरवृद्धयर्थकंतत् कर स्पर्शमप्येक्षमाणां सुपल्लवोपलक्षेन पुष्पाण्यपिज्ञेयानि। प्रसरदग्रभागगत कुसुमस्तबक मृदुतर स्निग्ध पल्लव गुच्छान्यभिद्योद्दीप नान्यतमोपहाराण्येव ददतीषु स्वकरेणैवा-नुकंपयातदवचयेन ममताधिक्यंबोध्यं अतएवानुकम्पने कः प्रत्ययः यथैव श्रीप्रबोधानन्देनोक्तं द्वितीय वृन्दावन महिमा-मृते द्वितीय शतके (श्लोक सं० १०)

राधाकृष्णौ परम कुतुकाद्यल्लता पादपानाम् ।
चित्वा पुष्पादिकमुरुविधं श्लाघमानौ जुषाते ॥
स्नानाद्यं यत् सरसि कुरुतः खेलतो यत् खगाद्यैः ।
वृन्दारण्यं परम परमं तन्नसेवेत को वा ॥१०॥

तथा—

आबाल्यं जल सेचनेन वरणेनाबाल निर्माणतः ।
स्वैन श्रीकर पल्लवेन मृदुणा श्रीराधिका माधवौ ॥
यान् संवर्द्ध्य विवाह्यनव्य कुसुमा द्यालोकेच सन्नर्मभिः ।
मोदैतेसुलता तरुणिह तान् वृन्दावनीयान्नुमः ॥११॥

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

और भी कभी फूल तोड़ने विनने आदि सेवा के समय प्रिया-प्रीतम के पुष्प चयन कालिक तरुलता स्पर्शज अनुमान से (प्रिया-प्रीतमके स्पर्श किये बिना रोमांच का होना प्रफुल्लता होनी असंभव है) शुक सारिका हंस आदिक पक्षियों के मुख से उनका नाम श्रवण करने से (यहाँ के पक्षीयादिक चैतन्य और लता पुष्पादि सब ही चिन्मय तथा दिव्य हैं) 'प्रायोबताम्ब विहगा मुनयोवनेऽस्मिन् श्रीमद्भागवत में' ।

वह दिव्य क्रीड़ा मनमें स्फुरित हो, जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब स्पष्ट दीखता है वैसे ही पत्रों पुष्पों में क्रीडा करते हुए दीखें ! उस क्रीडानंद में मन तन्मय होकर सन्निविष्ट हो जाय यही अभिलाषा है ! सर्वत्र उन्हीं श्रीराधा का स्फुरण हो इसी आशा से कहते हैं कि श्रीराधाके करों से अब चित-संस्पृष्ट, सम्बर्धित, अनुग्रहीत पत्ते जिनमें ऐसी लताएँ जिसमें, उस विहार स्थली में मेरा मन रम जाय ! वह विहार स्थली अपना (श्रीराधा ही का) ही विलास स्थल है और गुप्त विहार स्थान है अतः उसमें अपने (श्रीराधा) द्वारा किये हुए अवचयन से कोई ऐश्वर्य में क्षति नहीं है कि सखियों द्वारा या दासियों

द्वारा यह कार्य होना चाहिये था, स्वयं क्यों किया दासियां नहीं थीं। अपने स्थान में जहाँ सबका प्रवेश वर्जित है अपने द्वारा परिष्करण में अपनी दक्षता और स्थल की विशेषता लक्षित है।

अथवा वल्लरी के आदि शब्दों का प्रयोग और उत्कर्ष दिखता है कि वे सभी वल्लरियां (लताएँ) जिसमें अथवा जिसकी है ऐसा अर्थ करने से बहुव्रीहिसमास होता है (यस्य येन बहुब्रीहि) आगे भी स्थली ही स्थली का, आवली ही आवलीका आदि प्रयोगों में प्रत्यय का चमत्कार दिखाया है कि यहाँ अल्पार्थ मेंकन नहीं है अपितु ममत्व प्रदर्शनार्थ, अपनत्व प्रकट करने के लिये कन् प्रत्यय जोड़ा है वल्लरियों में निज करामृतसेचन करने के समान ममता है जैसे स्त्रियों में पूर्ण वात्सल्यता के कारण बाल्यावस्था से ही स्नेह सेचन करने वाली माता की तरह तारुण्य के आने पर भी वात्सल्य दृष्टि से स्नेह सेचन करे ममता रखे, वैसे ही मृदुल सूक्ष्म लताओं में पुनः नवीन कोंपल बढ़ें इस अभिप्राय से प्रियाजी स्पर्श सुख प्रदान करती रहती हैं और लताएँ भी स्पर्श को ही प्राण पोषक मानकर स्पर्श चाहती है, पल्लवों के उपलक्षण से पुष्पादिक का भी ग्रहण करना है (पल्लव मात्र कहने से पुष्प फलादिक सभी का पोषण अपेक्षित है)।

अग्र भाग में खिले हुए फूलों के गुच्छों को तथा अति कोमल पल्लवों के गुच्छों को तोड़ कर उद्दीपन और पोषण देती हुई तोड़ती हैं (ओ वृश्च्छेदन धर्मियों का छेदन भी पोषण ही है) छेदन भी अपने ही करों द्वारा करती है कि इससे इनका पोषण होगा, यह ममताधिक्य हितमयी का समझने योग्य है। इसी कारण अनुकम्पा के अर्थ में क प्रत्यय है। इसी भाव को श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती ने अपने वृन्दावन महिमामृत ग्रन्थ के द्वितीय शतक के ९ वें १० वें श्लोक में व्यक्त किया है। "राधा कृष्णौ परमकुतुकाद्यल्लता पादपानां"

श्रीराधा कृष्ण बड़े कौतुक से, निज वृन्दावन के लता पादपों (वृक्षों) के पत्र पुष्पों को तोड़ कर अनेकानेक प्रकार से सराहना करते हैं। जिस वृन्दावन के सरोवरों में स्नान करते हैं और जहां के खगादिकों के साथ खेलते हैं उस परमागति परम श्रेष्ठ वृन्दावन का सेवन कौन न करेगा। तथा अंकुरावस्था से ही जल देते हैं सम्हालते हैं आलवाल (थमला) बनाते हैं और अपने ही कोमल हस्त कमलों से श्रीराधा माधव, बढ़ाते हैं और नवीन पुष्पों को देखकर रहस्यमय शब्दों के द्वारा, मिलाकर, वर्णन करते हैं उन वृन्दावन के वृक्षों पर चढ़ी हुई लताओं को बार बार नमस्कार है।

रसकुल्या संस्कृत टीका

तत्करावचयज्ञानं तात्त्विक सखीदृष्ट्या हि, यद्वा तच्छीलज्ञ तयातत्स्पर्शज रोमांञ्चाश्रुपुलक कम्पादि विकारो नवपुष्पपल्लवाद्युद्गमेन सहृदय तया ज्ञातेति। अथवा कदाचिद्वल्लरी शब्देन सख्योक्तं—'क्वचित्कनकवल्लरी वृततमाललीलाधन मित्युक्तम्' यथा च वल्लवीषु कनक वल्लरीत्यादि चतुराशीतिपदावल्याद्युक्त रीतिकं बहुकृत्वो मानादौ—'कनक वल्लरीवल्लीवी बनमालि तमाल मलंकुरुते' पश्य पश्यत्वदीय वनलतापि कथं स्वतरुकान्तालिंगिता मनोहरतीत्यादि वाग्यस्मरणमनुभूय क्रीडती विहरय नर्म-सखीरिव भर्त्सनाऽभि नयेन क्षतः पल्लवानव चिनोति, अर्थात् निव्रिडामत्कोयैव सखी मुख काव्य कल्पनार्थं वल्लरी शब्द वाच्याजातास्थेति कुत्सते कः प्रत्ययोऽत्रः।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

उनके करों से चमन हुआ है यह ज्ञान उनकी सखी होने की दृष्टि से ही है; अथवा—उनका स्वभाव जानने की योग्यता से ही

सम्भव है, उनके स्पर्श से उत्पन्न रोमोद्गम (रोमांच) अश्रु, पुलक, कम्पादि विकार नवीन पुष्प पल्लवादिकों के उद्गम के साथ होने का ज्ञान सहृदय सम्वेधत्व के कारण ही जाना गया है। अथवा कभी-कभी वल्लरी शब्द के प्रयोग से, वल्लरी का अर्थ सखी ही मानना—कहीं ऐसा भी उदाहरण मिलता है कि—कभी कनक लता से आवेष्टित तमाललीला युक्त होते हैं (कनक लता श्रीराधिका नील तमाल श्याम अति सुन्दर) तथा और भी उदाहरण मिलते हैं जिनमें वल्लवी (घोष बालाएँ) वल्लरी शब्द से संबोधित की गई हैं, श्रीचतुराशी पदावली में जिस प्रकार मान लीला के प्रसंगों में अनेक बार वर्णित है वह भी ध्यान देने योग्य उदाहरण है—'कनक लता के समान वल्लवी, तमाल जैसे श्याम वनमालि शोभा बढ़ाती हैं—देखो देखो तुम्हारी बनलता भी अपने वृक्ष पति का आलिंगन करती हुई कैसी सुन्दर लग रही है—इत्यादिक वाक्यों का स्मरण अनुभव पथ पर प्राप्त करके, लज्जित होकर हँसती हुई नर्म सखी की तरह (भर्त्सना) डाटती जैसी होकर (डाटने का अभिनय एक्टिंग) नखों के द्वारा नवीन कपोलों को नोचती हैं अर्थात् लज्जा और कोप के संगम युत सखी मुखारविन्द से, कविता की सजीव कल्पना प्रकट करने के लिये, वल्लरी शब्द से प्रयुक्त हुई और वल्लरी का में इस भाव के कारण कुत्सित (हीन भाव, कोप भाव और भर्त्सना का आलम्बन बनकर) अर्थ में कः प्रत्यय अलंकृत किया है (यह भाव सांकर्य, हीन दशा को भी रस पोषण में सहायता दे रहा है शृंगार और क्रोध जनित कोप विरोधी हैं तथापि 'कपोलेष्वानमा करि कमल दन्त द्युति मुषि श्रुथन्नीबी ग्रंथि दृढ़मति रघूणां परिवृढः' आदिक उदाहरण भाव साङ्कर्य के माध्यम से रस पोषक भी होते हैं कि—श्रीराम, जानकीजी के हाथी दांत के समान स्वच्छ कपोल पर रसमय सतृष्ण दृष्टि लगाये हुए थे कि कुछ निशाचरों का कोलाहल सुनाई पड़ा, बस प्रेम का राग,

रोष के राग में बदल गया। नेत्र राग में परिवर्तन न हुआ पर क्रिया में परिवर्तन हुआ कि कमर कसने लगे। यहाँ तो रस पद्धति का पोषक कोप भाव, व्यभिचारी होने पर भी संचारी ही है ?

रसकुल्या टीका

सखी परिहासाद्यनन्तरं सप्रसाद वन विहार गमन माह-राधा-पदाङ्क विलसन्मधुरस्थलीके ! मन, चक्र, छत्र, कमल, ध्वज, पताकोर्ध्व रेखां कुशैर्वामाङ्कैः शंख, मत्स्य, वेदि, रथ, शैल, कुण्डल, गदा, शक्तिभिदक्षिणांकैः परमैश्वर्य सौभाग्य द्योतकैः सूक्ष्म. मृदु पराग रजो दृश्य मान मुद्रं वलक्तक रसाले स्वैरं लसत्यपि विशेषण लसन्ती दीप्यन्तीर्वा हर्षेण विलासं प्राप्तवती मधुरा स्थली यत्र, शृङ्गार रसात्मिका भूमिर्वा हृदय नयनादि परम मादक मोहका सर्व रसेवा विभाव्य माना वा घ्राण- रसना लांपटघ जनकमिष्ट रसा वा. संज्ञार्थेकः प्रत्यय इति मधुरस्थली त्यभिधेये त्यर्थः अथवा अज्ञातार्थत्वादनि वचनीय स्वरूपा परम प्रेमास्पद तया अहो न जाने स्वरूपं तत्वमसि इति चित्रं किं नुमोऽन्यत्र कुंण्ठी कृतकेलि पद्ये वक्ष्यत्येव !

अथवा पादारविन्द गमनानन्तरं तद्दर्शनैक जीवन खग कृत कलकूजितं श्रुत्वा विशिनष्टि राधा यशोमुखरेति ! 'वन्दिन स्वमन प्रज्ञाः प्रस्ताव सद्रशोक्त यः इत्युक्त लक्षणं वन्दि जना रव स्व प्रभुं वहिर्निर्गतं दृष्ट्वा यशोवर्णन घटित सरस छन्द, काव्यैः स्तुवन्ति गायन्ति ! यद्यदान्दोलन रास गान नृत्य. वाद्य. निलयन. पुष्पावचयादि विविध भोग विलासा अदृष्ट्वा श्रुत चरा अनुभूतास्तानेव गायन्ति एते खग रूपा परिकरा सच्चिदानंद मया दम्पति रस-विलासानंदार्थका

एव द्रुमवल्लीमवलम्ब्य ताद्दश विलास दर्शनासव घूर्णायमाना अतः अन्त स्वादं भजन्त्यपि यशः स्वादातिरेक दुःस्सह प्रेरण पराधीनामिथस्तदेव गायन्ति ! यूथशः सजातीया मिलित्वा तत्कथनानुवादानंदमनुभवन्निति मुखरार्थः।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

सखी परिहास, प्रणय कोप, भर्त्सनादि के पश्चात, प्रसन्नता पूर्वक वन-विहार और वन गमन का वर्णन करते हैं—राधा पद चिह्नों से सुशोभित मधुर स्थली श्रीवृन्दावन विहार स्थली में मेरे मन तू रमण कर !

यव, (जौ) चक्र, छत्र, कमल, ध्वजा, पताका, सीधी रेखा और अंकुश युक्त वाम चरणाङ्कन और शंख, मछली, वेदि, रथ, पर्वत, कुण्डल, गदा, शक्ति चिह्न युक्त दक्षिण चरणाङ्कन जो परम ऐश्वर्य और सौभाग्य सूचक चिह्न है, सूक्ष्म और सुकोमल वृन्दावन की रजमें दीख रहे हैं मानों रजत-पट पर मुद्रित किये हों साथ-साथ अलता महावर भी जिनमें झलक रहा है, जिनकी शोभा से स्वतः सिद्ध शोभा सम्पन्न की भी शोभा हो रही है, और इसी हर्ष के साथ श्रीप्रिया के गमन विलास को प्राप्त करने वाली मधुरा स्थली श्रीवृन्दावन विहार स्थली है ! अथवा शृंगार रस-स्वरूपा भूमि है अथवा हृदय नयनादिकों के लिये परम मादक, मोहक, मदिरा के रस में विप्लावित (भिगोई हुई) अथवा दृष्टि और रसना में (लाम्पटच) लोभ पैदा करने वाला कोई मीठा स्वाद है जिसका नामकरण करने के लिये कः प्रत्यय जोड़कर मधुर स्थली ही 'मधुर स्थली का' कही है अथवा इसका अर्थ समझ में ही नहीं आता है तो फिर कहा भी नहीं जा सकता तो अनिर्वचनीय स्वरूपा, परम प्रेमास्पद (सर्वोत्कृष्ट प्रेम के अधिष्ठान स्वरूप) युगल सरकार को भी प्रेमास्पद प्रतीत होने वाली भूमि-अहो, आश्चर्य है कि समझ ही न पड़ती है तू जैसी है, यही विचित्र बात है

कि अब वाणी भी कुण्ठित हो चुकी है क्या कहें और कहीं किसी पद्य में वर्णन होने की सम्भावना हो।

इसके अनन्तर चरण कमलों द्वारा गमन प्रसंग के पश्चात् युगल सरकार अथवा श्रीप्रिया जी का दर्शन ही जिनका जीवन है (जीवन का अवलम्बन है, जीवन धारण करने का उद्देश्य है) उन खगों पक्षियों का अव्यक्त मधुर शब्द 'पक्षीषुतु कूजित प्रभृति' पक्षियों के शब्द को कूजित ही कहा जाता है) सुनकर वर्णन करते हैं. उनके बोलने का रहस्य खोलते हैं कि 'राधायशो मुखर मत्त खगावलीके'– 'वन्दिजनों का स्वरूप है कि उनकी बुद्धि निर्मल, शुद्ध, होनी चाहिये, और प्रस्ताव के समान ही उनका वर्णन होना चाहिये, तो ये पक्षिगण वन्दिजनों के समान अपने प्रभु को बहार जाते देख, (निकुञ्ज से बाहर गमन करते देखकर) यश वर्णन सामिग्री से सजे हुए छन्द और काव्यों से प्रशंसा द्योतक गीत गाते हैं--जब जब, झूलन होता है, (झूलते हैं) रास गान, नृत्य, वाद्य, निलयन (आँखमिचोंनी) छुपने की लीला, फूल बीनने की लीला, और अनेकानेक भोग विलास जो न कभी देखे न कभी सुने (अपूर्व) उनका भी अनुभव करने वाले, उन्हीं लीलाओं का गान करते हैं, ये खग रूप में नित्य परि- कर ही है, (काम व्यूह स्वरूप ही हैं साधन सिद्ध दर्शक नहीं हैं) सर्वथा सच्चिदानन्द स्वरूप ही हैं। दम्पति रस विलासानन्द ही प्राप्त करने को (उस दिव्य रस का दर्शन, आस्वादन और अनुभव करने की शक्ति तदतिरिक्त-साधन सिद्ध परिकर में कही है अतएव, स्वयं ही दृष्टि रूप में विभक्त होकर अपने ही आनन्द का अपने आप आस्वादन करते हैं तभी आत्माराम, आत्मक्रीड़, आत्मरत कहे जाते हैं और अखण्डित रहते हैं 'आत्मरामोप्य खण्डितः' है) वृक्षों की डालों पर जमे हुए, उस अनिर्वचनीय विलास दर्शन रस रूप मदिरा से झूमते हुए अन्दर ही अन्दर सम्वेद्य शक्ति से आनन्द लेते हैं, पर

जब वह स्वाद अन्दर नहीं समाता है उसकी बाढ़ आने लगती है तो दुस्सह प्रेरणा के पराधीन होकर परस्पर उसी रस का गान भी करते हैं। झुण्ड के झुण्ड सजातीय (समान शील व्यसन) मिलकर उस रस को कह कर बार-बार वाणी के माध्यम से चर्वण कर करके आनन्द का स्वयं अनुभव करते हैं यह है मुखर शब्द का अर्थ 'श्रीराधा यशो मुख मत्त खगावलीके'।

रसकुल्या की संस्कृत टीका

पुनश्च यश इति मत्तेति गायं गायं (गायन्गायन्) श्रवण कथनानन्द मता स्तम्भ, वैवर्ण्य, स्वरभंग, रोमांचितादि प्रेम-दशाविष्टाः तिष्ठन्ति तत्तोऽव्यक्त शब्दोऽपि मध्ये क्वचित् क्वचित श्रूयमाणाक्षरैरेक देश ज्ञापनेन सर्वलीलायशः सखीः प्रत्य-भिज्ञावशतः राधे राधे इति तु तत्रत्य सर्वेषामनवरतं सार्व-दिको विश्रुत एव मंत्रः श्रूयते जयेति धन्येति श्लाघनीय महि-मार्थ वाक्य विशिष्टं यश इति खगशब्देन स्वतन्त्र गान दर्शन निरवरोधत्वं अतएव मत्त मुखरतादि धाष्ट्र्यमपि सख्या-नन्दकं यथाग्रे वक्ष्यति ।

मत्कण्ठे किं नखरशिखया दैत्यराजोस्मि नाहं—
मैवं पीडां कुरु कुचतटे पूतना नाहमस्मि ।
इत्थं कीरैरनुकृत वचः प्रेयसा संगतायाः-
प्रातः श्रोष्ये तव, सखि कदा केलिकुंजे मृजन्ती ॥१६३॥

इत्यादौ पशुस्वपि यश एवेदं प्रियायाः इति परि-हसन्ति सख्य इति पारावृतान्यभृत सारसचक्रवाक दात्यूह हंस शुक सारिका तित्तिरि बर्हि कुकुराद्याः खगा यूथाः

प्रतिजाति विविधवर्णगुण विशिष्टाद्वन्द्वशो दम्पतिक्रीडनका स्तेषामावलीपंक्तिः करणस्थितिर्लतादिषु जलेस्थले चाकाशे च केवलं निविष्टा एव पंक्त्या शोभन्ते । मधुरा रावं कुर्वन्ति तदा नितरांयशोक्षरं रचयन्तितदानींतमा इति एतादृशाद्भुत कार्यदर्शनादनिर्वचनोय प्रभावेण ज्ञातार्थे कः प्रत्ययः केचित्तु प्रियाकृत लालन पालनाः पारावत शुकसारिकाहंसादि शावा-निजकर वद्धमणिलघु,पद मंजोरासूक्ष्म कनकसूत्रस्तवक मणि-चंचच्छिरोग्रीवा अधातया माभ्यासंवर इव तद्यशः पाठ्यमानाः पठंति । तद्दर्शनश्रवणाभ्यां महामोहोदयेनानुकंपार्थे कः प्रत्ययः । एतादृशेवनेमन्मनो रमता मितिः यत्र तिष्ठन् गच्छन् स्वपन् पश्यन शृण्वन्नपिसर्वदैव वाह्याभ्यन्तरे राधैव-स्फुरे दितिभावः । अत्र हितसख्याचार्य त्रिवेदितर्यथा संभवं योज्या ॥१३॥

रसकुल्या की हिन्दी टीका

पुनः 'राधा यशो मुखरमत्तखगावलीके'-पद में इस प्रसंग पर यह भाव भी है कि वे खग मत्त होकर (प्रेमोन्माद दशा में) गा गा कर श्रवण कथन का भी आनन्द लेते हैं (प्रेमोन्माद दशा में ही गुह्याति गुह्या रहस्य प्रकट कर डालते हैं) इस रहस्य प्रकटन से उन्माद में भी उन्माद हो जाता है और पूर्ण मदोन्मत्त दशा में अष्ट सात्विक भावों का भी उदय होने लगता है, ये हैं स्तम्भ (जड़ हो जाना) वैवर्ण्य (रंग बदल जाना, पीला पड़जाना आदि) स्वर भंग (आवाज विगड़ जाना) रोमांचितादि प्रेमदशा प्रेमदशापन्न (प्रेम दशा में परवश होकर) चित्र लिखित जैसे हो जाते हैं जिससे फिर अस्पष्ट शब्दोच्चारण या कण्ठावरोध होने पर भी बीच बीच में कभी कभी कान में झनकते मात्र शब्दों से, इंगित पद्धति से (इशारे

के शब्दों से) अपूर्ण पदों से लीला का कुछ भाव प्रकट करके, समस्त लीला के द्वारा यश, सखी समाज को स्मरण करा डालते हैं और शेष रहस्य पूर्ति, राधे राधे शब्द से, जो कि वहाँ के (उस परिकर के) सभी रसिकों का निरन्तर चारों ओर से श्रुत पूर्व मन्त्र है सुन-कर—सहृदय स्वयं कर लेते हैं, सब कुछ समझ बूझकर आनन्द से जय हो ! धन्य हो ! आदि प्रशंसा के, कृतज्ञता के, सिहाने के शब्दों से महिमा वाले वाक्यों से, बस समझ गये ऐसी प्रतिश्रुति भी दे देते हैं। खग शब्द से यह भी अपूर्व ध्वनि है कि जो खग आकाश में घूमने वाले हैं, 'वियद् विहारी वसुधैक गतियों के पराधीन हो नहीं सकते वे परम स्वतन्त्र हैं उन पर मानवीय नीति का प्रतिबन्ध नहीं है अतः उनसे संकोच किसी पुरुषों को नहीं तो वे बिना रोक टोक के गा सकते हैं लीलाएँ देख सकते हैं पर वस्तु निष्ठ शक्ति का प्रभाव कैसा है कि प्रतिबन्ध शून्य, अनर्गल लीला दर्शन गानादिक से वे भी मत्त हो जाते हैं कि लीला रस पक्षियों में भी रसिकता का संचार करके उन्हें रसिक और दिव्य बना डालता है इस रस ने तो जड़ वंशी को भी चेतन धर्माक्रान्त बना डाला ऐसा वर्णन भागवत में ही है 'भुंक्ते स्वयं यदवसिष्ट रसं' (न वसिष्ठं अव शिष्ट, 'वष्टि भागुरि रल्लोपः') तभी रसाविष्ट खग मत्त होकर मुखरता से रसोद्घाटन करके 'लालजी की'—धृष्टता को प्रकट कर देते हैं और अपनी प्रिय सखी राधा के आनन्द को सजीव कर देते हैं। अथवा स्वतन्त्र खग, बिना रोक टोक लीला देखकर कहकर मस्त हो जाते हैं और रहस्य को कहने की धृष्टता करके आनन्द ही बढ़ाते हैं।

इस लीला में प्राकृत पशु पक्षियों का प्रवेश नहीं है-ये तो अप्राकृत जैसे बनकर यथावत अभिनय कर रहे हैं'–'ग्राम्यै समं ग्राम्य-वत' अस्तु धृष्टता लालजी की कि प्रिया को निर्दय होकर पीड़ित किया (यह धृष्टता, शठ, वृद्ध, लीला नायक के उचित हैं और रस

पोषक ही हैं कि उत्कट स्मरावेग में, निर्दय और धृष्ट बनना ही रसानुरूप है जैसा कि सखियों ने भी तो लालजी को संकेत में समझाया था कि—'तस्त्रादेषा रहसि भवता निर्दयं पीड़नीया, यंत्र क्रान्ता विसृजतिरसं नेक्षुयाष्टि कदापि, तन्वीवाला मृदुरिव मितित्यज्यतां अत्रशंका' कि ये कोमल हैं, तन्वी हैं, बाला हैं ऐसी शंका मत करना अकेले में निर्दय होकर खूब सताना, कम दबाव पड़ने से ईख से कम रस निकलता है। तो लालजी की धृष्टता भी सुखप्रद है उनका उत्पीडन भी रसप्रद है इस बात को छुपाने के लिये और प्रकट भी करने के लिये, वामा स्वभाव से, रस पोषण रीति से हँसती हुई कहती हैं—नाराज होकर कहें तो वह क्रिया होनीबन्द हो जाय, अतः अन्दर से प्रसन्न होती हुई प्रसन्नता सूचक भावों से शब्द से, कोप वाक्यों का अनुवाद करती हैं (यह सब कुछ रसिकों में जानने समझने की बातें हैं)।

मत्कंठे कि नखर शिखया–कि मेरे गले में नख क्षत क्यों कर रहे हो मैं कोई तृणावर्त तो नहीं हूँ। मेरे स्तनों में इतनी पीड़ा मत पहुँचाओ, मेरे स्तनों को इतनी जोर से मत दबाओ, मैं कोई पूतना तो हूँ नहीं। इन वाक्यों को जब मैं प्रातः निकुञ्ज की बुहारी देने जाऊँगी तब प्रियाजी लालजी के पास बैठी होंगी और पक्षी इन्हीं शब्दों को दुहरा रहे होंगे तब में सुनूँगी अपनी सखी राधा की इंगित ध्वनि। 'कि सुनो पक्षी क्या कहते हैं।' मैं सुनूँगी।

इत्यादिक प्रसंग में चुगली भी प्रिया के यश वर्णन में कारण बनी, इस प्रकार सखी परिहास भी रस संचार का माध्यम है। श्रीराधा यशो मुखर मत्त इति॥ पारावत (कबूतर) अन्यमृत (कोकिल) सारस, चक्रवाक (चकवा) दात्यूह गौरैया, हंस, शुक तीतर, मोर, कुक्कुट, मुरगा आदि पक्षी, झुण्ड के झुण्ड, अपनी अपनी जाति के साथ, तरह तरह के वर्ण गुण वाले, जोड़े जोड़े से मिलकर

'जो युगल सरकार के खिलौने हैं' पंक्ति बनाकर लताओं पर लदकर तथा जल थल और आकाश में भी डटे हुए सुशोभित होते हैं। मधुर-मधुर बोलते हुए सर्वथा यश वर्णन ही करते हैं, उस समय ऐसा अद्भुत कार्य, दृष्टि पथ पर आते ही चित्त में अनिर्वचनीय प्रभाव जमने लगता है, यहाँ खगावलीके में कः प्रत्यय इस विज्ञातार्थ में समझना चाहिये कुछ पक्षि जो श्रीप्रियाजी के पाले पोषे हैं, जिनमें कपोत, तोता, मैना, हंस, बालक हैं, जिनके पावों में प्रियाजी ने अपने ही हाथों से, छोटी-छोटी मणियों की पैंजनी बाँधी है तथा जिनके माथे और गले में जरी से तारों की तथा मणियों की बनी कलंगी और कंठी बँधी है, छोटे-छोटे विद्यार्थी के रूप में, यश वर्णन प्रधान पाठ को दुहराते हैं अभ्यास करते हैं। उनके देखने और सुनने मात्र से हृदय में बड़ा भारी मोह (ममत्व) और प्रेमात्मक अनुकम्पा का उदय हो जाता है यहाँ अनु-कम्पा के ही अर्थ में कः प्रत्यय है। ऐसे बन में मेरा मन रमे ! जहाँ रहने पर, बैठने से, चलने फिरने से, सोने और जगने से तथा सुनने समझने मात्र से श्रीराधा का ही स्फुरण होता है, यहाँ हित सखी रूप में आचार्य चरण ने तीनों प्रकार की उक्तियाँ यथा संभव व्यक्त की हैं, समझने योग्य हैं ।।१३।।

लीला माधुरी

रस मंजरी, शारदा, चन्द्रछटा, चित्रांगी, चन्द्रकला, चपला, विजया, पद्मा, कृपाला, मतिभद्रा, पद्मानना, रामा, भागवती, गुणाकरी, कुँकुमाभा, चंद्रिका, सारंगी, सौदामिनी, मालती, माधवी, कलहंसो, ये एक बीस सहचरियां मदन वाटिका में पारिजात कल्पलता के नीचे विराज रही हैं। चन्द्रछटा सखी माधवी सखी से पूछने लगी कि कल सायंकाल वनदेवी वृन्दा सखी ने श्रीहित सजनी जी से निवेदन करके मधूत्सव कौन कुञ्ज में किस वाटिका में होवेगा ज्ञात हो

जाने से वहां की सजावट की जावे तब श्रीहित सखी जी ने आज्ञा की कि राधा विहार वाटिका में होवेगा, यह कहकर श्रीहित सजनी जी मधुर स्रवा नाम वाली वीणा को उठाकर बजाने लगी और अति झीण स्वर से गाने लगी, राधाकरावचितपल्लववल्लरीके इत्यादि पद का गायन किया राधाविहारविपिनेरमतां मनोमे यह अंतिम पद गा ही रही थी कि देहानुसंधान रहित होकर प्रेम समुद्र से डूब गई। उस समय श्रीललिता जी की सेवा में आप भी वहां उपस्थित थीं ऐसा मैंने सुना है। देहानुसंधान एक प्रहर के लिये जाता रहा।

अनन्तर श्रीललिता जी के पूछने पर श्रीहित सखीजु ने बताया कि हे ललिता जी मैं श्रीराधा विहार विपिन का ध्यान करती-करती वहीं पर पहुँची, वहां पहुंचकर मैंने बड़ी अनुपम अद्भुत लीलाओं के दर्शन किये। यह सुनकर श्रीललिता जी ने प्रश्न कियो कि हे स्वामिनी जी आप मुझ को वह समस्त लीला का वर्णन करो ऐसी मेरी प्रार्थना है तब श्रीहित सजनी जी ने राधा विहार विपिन की सुन्दर लीला ललिता जी को सुनाई और आपने भी वह लीला सुनी है आप कृपा-कर हम सब सखियों को सुनावैं।

यह सुनकर माधवी सखी वर्णन करने लगी, हे प्यारी सखियो राधा विहार विपिन की भूमि कोमल कंचन मणिमय है उस पर हीरा के कमल जटित चारों तरफ चन्द्रकान्त मणियां से रचित पन्नान के जड़ाव से जड़ी हुई चार दिवारी झलक रही है। चार दिवारी के सामने सुन्दर बगीचा है जो कि यमुना जी के तट से लगा हुआ है बगीचा के सरोवर में श्वेत नील गुलाबी कमल फूल रहे हैं ये कमल पुष्प मणियों के प्रकाश जैसे प्रकाशित हो रहे हैं पारिजात, अशोक, अश्वत्थ, वट, कदम्ब तमाल आदि सुन्दर सुन्दर वृक्ष विराज रहे हैं। इन तरुवरों पर मालती, हेम, पुष्पी, माधवी, जुही, गुलाला, चमेली, हेमलता आदि लताएँ लपट रही इन लताओं की वल्लरियां और नूतन

अरुण पल्लव खिल रहे हैं, स्थान-स्थान पर मौलसरीके वृक्ष फूल रहे हैं और मोतियों के झोरैं उन वृक्षों पर लटक रहे हैं उन झोरान से मोती झर-झर के पड़ रहे हैं उन मोतियों को हंस शावक चुगते डोल रहे हैं।

श्रेष्ठ उज्ज्वल सुन्दर वृक्षों पर चन्द्रकान्त मणियों के झाड़ लटक रहे हैं उनकी शोभा ऐसी है मानो चन्द्रमा के समूह इन वृक्षों पर आय विराजे हों। फिर सुखद सुन्दर मनोहर शरद पूर्णिमा की निशा है। सुखद शरद की रात्री में पूर्णिमा का चन्द्रमा जगमगाय रहा है चांदनी की छवीली छटा छिटक रही है एक तमाल वृक्ष सों हेमलता (स्वर्ण मालती) लपट रही है उस समय मोतियों का शृङ्गार किये नील जरकसी साड़ी गुलावी अतरोटा कजरारी कंचुकी माणिक जटित ताटंक (कुण्डल) पहिरे रूप की घटा सी श्रीराधाजी पधारीं आपके ऊपर ललिता और चन्द्रावलि दो सखियाँ चँवर कर रही हैं उस तमाल वृक्ष के पास आकर खड़ी हो गई सामने यमुना पार एक गोवर्द्धन पर्वत नजर आया।

※ संस्कृत गद्य ※

यत्र किल कालीयक तरुमूलवाहिना निर्झरेण परिमल-परिभावितासूपत्यकासु सकला एव तृण जातयो गन्धतृणता मभिपद्यन्ते।

हरिण्माणिक द्रव मूजवाहिषु शुकपक्षच्छविषु मिर्झरेषु कृतावगाहाः सर्वाएव रुरुचमर इव परस्परं न परिचिन्वन्ति। यश्च क्वचन महानील मणिशिला मयूरवच्छविच्छुरित स्फटिक मणिगण्डशैलः कलित नीलनिचोलो हलधर इव दरी-दृश्यते क्वचन चारु चामीकर शिला किरणच्छुरिताधो भाग महामरकत गण्डशैलः पीताम्बरो कृष्ण इव।

(पृष्ठ ३५ पंक्ति ५ वीं)

※ हिन्दी में अर्थ ※

इस गोवर्द्धन पर्वत की तराई (तरेटी) में वृक्षों के बीच में बहने वाले झरने के जल कणों से मिश्रित पुष्पों की सुगन्ध उड़ रही हैं और हरे-हरे नवीन-नवीन तृण निकल कर सब ओर सुगन्ध फैला रहे हैं। हरित मणिमय भूमि पर बहने वाले झरनों के जल की छटा शुक (तोते) के पंखों के रग की तरह झलक रही है और उस जल की धारा में होकर हरे पेड़ों के नीचे रुरु, चमर, चमूरु गवय, गन्धर्व, समर, रोहित, शश, शम्बर आदि जातियों के हरे रंग के हिरण निकल रहे हैं, जिनका रंग जल के रंग से शोभा मिल जाती है कि पहिचान में नहीं आते कि हिरण हैं या जल है। यहाँ कोई(एक) नीलमणिमय शिला मयूर के कण्ठ की छटा के समान है जिसके ऊपर श्वेत शिला की शोभा ऐसी है मानोनील-निचोलधारी बलदाऊ (हलधर) हो किसी एक नील शिला के नीचे पीले वर्ण की शिला ऐसी लगी कि मानो पीताम्बरधारी श्रीकृष्ण हैं। इसकी ओर नजर पड़ते ही श्रीराधाजी के मनमें श्रीकृष्ण हैं यही निश्चय हो गया और सलज्ज हो नीलीसाड़ी का घूंघट कर लिया।

※ संस्कृत गद्य ※

क्वचन—कनक मणिशिला पट्ट संघट्टभासुरं हीरकपोल भित्तिर्हर गौरीविग्रह इव। क्वचन च। मरकतगण्डशैल मनूभयतः प्रपात निर्झरजलोमण्डली कृतकोदण्डः सीतापति रिव क्वचन च। रजतगण्डशैलो परिगत कमलरागशिला-पट्टसन्निवेशो महाहंसाधिरूढः कमलयोनिरिव।

※ हिन्दी में अर्थ ※

कहीं पर स्वर्णमयी शिला और श्वेत मणिमय शिला आपस में ऐसी मिली हैं मानो शिव और पार्वती हों और कहीं पर झरने का

जल घूमकर ऐसा बह रहा है मानो श्रीरामचन्द्र का धनुष हो। कहीं चांदी के समान मणिमय शिला पर पीत मणिमय शिला ऐसी सुशोभित है, मानो हंसारूढ़ ब्रह्मा ही हों।

❋ संस्कृत गद्य ❋

क्वचनचोन्नतर मणिगण्डशैलशिखरतः प्रबलतर तरसा निस्स्यन्दमानेन विविधमणि किरणच्छटाच्छुरितेन निर्मल-निर्झरेण ऋजुभूयलम्बमान सुरपतिकोदण्ड इव।

क्वचनच—विविधमणिपाषाण शबलीभावभासुरस्य सानुनः समुदितवरेणकिरण निकरेण नभसि निर्मीयमाणः शक्रशरासन इव।

क्वचन च—श्रीराधाकृष्णयोर्मणिसिंहासनायमान सुसोम सुषीमशिला विलासः॥ क्वचनच-श्रीराधाकृष्णयोः रासविलास विशेषसमुचित मणिस्थली परिसरः। क्वचनच-श्रीएतयोरुभयोर्मणिमन्दिरायमानकन्दरनिकरः। क्वचनच। पवनसमुद्धूत विविधकुसुमपरागवितर्तिवितन्यमान श्रीकृष्णार्थकासित वितानः। क्वचनचामूल विकसित लोध्रतरु निकरेणाभितोऽभितः प्रतानित पटकुट्टिम पटलायमानः।

धव खदिर पलाश शल्लकी निचुल शिशपा करज मधूक पनस प्रियाल तालीप्रभृतिभि वनराजिभि रपहृतातपः सहजनिर्वैर विसदृश सत्वसमाकुलश्च। अपरेतत् पादाअपित दगुणाएव। एतादृशो गोवर्द्धनमहीद्रो दृष्टिपथ मागमत्।

❋ हिन्दी में अर्थ ❋

किसी ऊँचे शिखर पर से झरना धारा प्रवाह बह रहा है। उसके एक तरफ हरे रङ्ग के चमकते हुए वृक्ष और दूसरी तरफ चम-

कती हुई लाल मणिमय शिला है। ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्द्र धनुष हो। विविध मणियों के रंग वाली शिलाओं से कोई शिखर ऐसा दीख रहा है मानों आकाश में इन्द्रधनुष निर्माण किया गया है। कहीं पर वैडूर्य मणिमय शिखर की शिखा से उत्पन्न होने वाली किरणों की अविच्छिन्नधुएँ की सी रेखा ऐसी प्रतीत होती है मानो धूमवाट पक्षी बैठ रहे हों। कहीं पर मणिमय शिलाएँ ऐसी बनी हुई हैं मानो प्रिया-प्रीतम के बैठने के लिये सिंहासन हो। ऐसी चित्र विचित्रता से शिलाएँ स्वाभाविक सुखद हैं।

कहीं पर श्रीप्रिया-प्रीतम के रासविलास के लिये विशेष लम्बी चौड़ी स्थली वाले मण्डल बने हुए हैं। कहीं पर इन दोनों प्रिया-प्रीतम के मन्दिर के समान मणिमय कन्दराएँ हैं वहाँ पर वायु से आने वाले विविध पुष्पों के पराग से वितान से बन गये हैं। और कहीं पर प्रफुल्लित लोध्र के वृक्षों के झुण्ड कारीगरी पूर्ण रचना से ऐसे सजाये हुए हैं मानो विचित्र मंडल हों।

धव (धावनामक वृक्ष) खैर पलास शल्लकी निचुल शिशप करंज मधूक फनस प्रियाल तालीआदि वृक्षों की घनी क्यारियाँ सुशोभित हो रही हैं। वहाँ पर धूप नहीं आती है अतः सहज निर्वैर (बैर छोड़कर) बड़े बड़े विचित्र हिंसक जीव-जन्तु भी यहाँ आकर विश्राम कर रहे हैं। ऐसे अनेक वृक्ष एवं विचित्र वैभव से सुशोभित श्रीगोवर्द्धन पर्वत दीख पड़ा।

इस गोवर्द्धन पर्व के किञ्चित् दूरी पर एक बहुत सुन्दर नगर जो कि पर्वत श्रेणी पर शिखर से लेकर उपत्यका तक बसा है जिसकी ख्याति नन्दग्राम नाम से प्रसिद्ध है इन्द्रपुरी (अलका) भी इसके सामने लज्जित होती है, और इसके बगीचे (उपवन) ऐसे मनोहर अद्भुत रचना रचित है जिनकी शोभा पर स्वर्ण का चैत्यनाम का बाग आरार्ति कर दिया जा सकता है बहुत ही सुन्दर है। यह नन्द-

नंदग्राम अपने पिता श्रीवृषभानु बबा ने लाड़िजी के विवाह में हथलेवं में श्रीकृष्णचन्द्र को दान में दिया था वही नन्दग्राम आजकल श्रीनन्द-बाबा की राजधानी है और इसीमें नन्दकुल का निवास है। इस नन्दग्राम की छटा श्रीप्रिया जी के दृष्टिपथ में आई। तब शारदासखी मधुर शब्दों से नन्दग्राम की छटा का वर्णन कर प्रियाजी को इस प्रकार सुनाने लगी। नन्दग्राम अथवा नन्दीश्वर की शोभा का वर्णन। संस्कृतगद्य द्वारा शारदा सखी कहती है।

गोवर्द्धनसमः कश्चन तस्याद्दूरतएव नन्दीश्वराख्यो द्वितीय इव नन्दीश्वरः क्षितिधरः। यश्च चारुतरधवाक्रीडोऽपि माधवाक्रीडः। किं शुकवानपि न किं शुकवान् सुप्रस्थशोभोऽपि असुप्रस्थ शोभः।

बामन इव सुरसार्थसमुत्पादनखनिः स्यन्दमान सलिलनिर्भर-शीतशिवः। प्रौढमानिनीजन इव सहचरी प्रसादरचनाभेद्यमनः शिला-सारः हर इव सदोपगूढ शैलजः। यत्र काचन राजधानी व्रजपुरः पुरन्दरस्य श्रीनन्दरायस्य। यत्र खलुमेखला शृङ्खलादिष्वेव खल इति, स्वस्व सरष्वेव मत्सर इति, चन्द्रएव दोषाकर इति, परिमलादिष्वेव मल इति, छत्रचामरादि दण्डेष्वेव दण्ड इति, नीवीरसनादि बन्धएव बन्ध इति, चन्दन कुङ्कमादि पङ्केष्वेव पङ्कइति, समाध्यादौ केवल-माधिरिति आपीड़ा पीडेति शब्दः श्रूयते।

किंच कुन्तलादौ कौटिल्यं हारादौ लौल्यं कस्वरणादिषुरागः अवलग्नादौ मध्यमाख्या पलोन्मितएव पलितं कुसुमादिधूलिष्वेवरजः अन्धकार एव तमः रत्नादिष्वेव कठिन्यं युग्मएव द्वन्दं पवनादौ मन्दता मध्यादावेवक्षीणता लोचनादावेवचाञ्चल्यं जलेष्वेव नीचगामिता व्यभिचारि भावेष्वेव ग्लानि शङ्का दैन्य विषादादयः। पुनशारदोवाच हे स्वामिनि राधे नन्दीश्वरे (नन्दपुरे) मुक्तादिष्वेव छिद्रं कटाक्षादि-ष्वेवतैक्ष्ण्यं रस विशेषएव कटुता जातावेव सामान्यं रजतएव दुर्वर्णता।

पुनः वर्णयति अत्र च सर्व इव नानागुणखनयोऽपि मुक्तावस्था।

हिन्दी अनुवाद—

गोवर्द्धन पर्वत के समान ही उसी के थोड़ी दूर पर नन्दीश्वर पर्वत है। वह पर्वत द्वितीय शंकर के समान है अति सुन्दर वृक्षों से सुशोभित है और श्रीकृष्णचन्द्र का क्रीड़ास्थल है, किं शुक नाम के वृक्षों वाला होते हुए भी वह शुक पक्षियों द्वारा सेवित है, इसकी कान्ति अपार है और देखो प्यारी, यह सुन्दर शिखरों से सुशोभित है। श्री वामन जी के चरण नख से निकली हुई गंगाजी की धारा के समान यहां पर शीतल सुखप्रद झरने झर रहे हैं और प्रौढ (किशोरावस्था वाली) मानिनियों की तरह अभेद्य मन वाला शिला के सार की तरह कठोर मैनशिल धातु इसमें है।

शङ्कर भगवान के समान सदा आलिङ्गित-शैलजा (पार्वती जी से आलिंगित) की तरह जहां शिलाजीत चिपट रही है, जो किसी व्रज के राजा (श्री नन्दराय जी) की राजधानी है। जहां रमणीयों की कटि किंकिणियों के शब्द सुनाई दे रहे हैं और जहां चन्द्रमा ही एकमात्र (घटने बढ़ने रूप) दोष वाला है, परिमल ही सुगन्धि द्रव्य जहां मल का नाम है, छत्र चमर आदि के दण्ड ही जहां दण्ड नाम से और वस्त्रों के बन्धन आदि ही जहां बन्धन नाम से प्राप्त होते हैं, चन्दन और कुंकुम (केसर) के पंक में ही पङ्क (बुराई) शब्द का उपयोग होता है। जहां पर आलिंगन की पीड़ा ही पीड़ा सुनी जाती है। केशों ही में वहां कुटिलता तथा हार आदि में ही जहां अधिक अस्थिरता (हिलना-डुलना) पाई जाती है कर चरण आदि में लगा हुआ राग ही जहां राग नाम से पाया जाता है, पुष्पों की धूली से होने वाला अन्धकार ही जहां अन्धकार है और पुष्पों की धूली ही जहां पर धूली पाई जाती है। मणि माणिक रत्नों आदि ही में जहां कठिनता

(कड़ापन) पवन आदि ही में मन्दता, कटि (कमर) ही में क्षीणता और लोचन के कोणों में ही जहां चञ्चलता मिलती है। जल ही में जहां नीची गति पाई जाती है मुक्ताओं ही में जहां छिद्र दिखाई देते हैं। मृगनयनियों के कटाक्षों में ही जहां पर धार प्रतीत होती है और श्रृङ्गार आदि रसों की ही विशेषता में कहीं कटुता (जैसे प्यारे के अन्तर्धान होने से विरह हो जाता है) पाई जाती है। बातचीत के समय बोलने के वर्णों में ही कहीं दुर्वर्ण हो सकता है अन्यत्र कहीं दुर्वर्ण (जैसे ट कार) नहीं मिलता। जहाँ पर सब लोग नाना गुणों की खान होते हुए भी मुक्तावस्था को प्राप्त होते हैं।

श्रीशारदा जी फिर कहने लगीं-

सूर्य्य इव हरिदश्मरश्मि महारथ्यः। हरनटनविलास इव महाट्टहासः।

सूर्योदय इव निजमहसोरु चारिमणिनिशान्तः। नारायण इव चामीकरपटलः। ब्रह्मानंद इव उपयुक्तमुक्तावलीकः। सत्सेनानीसार इव बिदूरवलभीकः। चकोरनिकर इव शशधरकान्त गोपानसीमः। रत्नाद्रिरिवविविधरत्नप्रघणः। हर इव सदामहोमाङ्गनः पुरनिकरः।

यस्य प्रधानतममसारप्राचारं मरकतगृह हेमपटलं प्रवालस्तम्भालिस्फटिक वृत्तिवैडूर्य बड़िभिः महानीलेद्राद्द विमलकुरुविन्दोपल महाप्रतीहरं नानाकृतिजित विमानवलिपूरम्।

* श्लोक *

कुड्यं यस्य मणिप्रवेकरचिते शिल्पक्रिया कल्पितैः।
प्रत्यासज्य शुकैः समं गृहशुकेष्वासादितस्थेमसु ॥
सप्राणाः किममी इमे किमथ वेत्युन्मीलतः संशया।
दातुं दाड़िमबीजकाति सुचिरंमुह्यन्तिमुग्धाङ्गनाः ॥१५३॥

(आनन्द वृन्दावनचम्पू)

यत्रपुरेमूर्तए वात्सल्यरसः। शरीरभृदिव शुद्धसत्वंम्। सार इव सकलसौभाग्य। द्वीपइवानन्द समुद्रस्य श्रीनन्दोनाम व्रजराजः। यः खलु भगवत् पितृभावभावुक सुगम्भावुकः। चिद्विलासइव सदैकावस्थाः यस्य च भगवत् प्रकाशफलावल्लीव मूर्तिमतीव वात्सल्यरसश्रीः सञ्चारिणीवतेजोमंजरी स्वकुलयशोदानाम सहधर्मचारिणी।

यत्र च राजधान्यां बहवएव गोदुहः सर्वे पशुपतयोऽपि अहरा अभवा अनुग्राश्च गव्याजीवा अपिनगव्याजीवाः।

तत्र च कंचन व्रजराजस्य सनाभयः केचन परम्परा सम्बन्ध भाजः तेषामपत्यानि श्रीकृष्णसहचराः केचन गोदुहोमूर्ता इव भगवद्धर्मास्तत् पत्न्यश्चमूर्ताः इव भक्तिवृत्तयः। येतु तदुत्पन्ना बालकास्ते सर्वे श्रीसनकादय इव नित्यकौमाराः वनप्रदेशा इव सवयसः हारभेदा इव परस्परतोऽवि सदृशगुणाः। शरत्पद्माकारा इव वृहस्पतिवंशा इव सदाच्छविकचाः ईशान दिग्विभागा इव समदसुप्रतीकाः। भरद्विलासा इव पद्मास्याः। षड्जमध्यम पञ्चमस्वारा इव समानश्रुतयः कुसुमसमूहा इव सुघ्राणाः।

हिन्दी अनुवाद–

यहाँ पर अरुणोदय के समान पूर्वदिशा लाल होती है, यहाँ मणिसम वितानों में लगे हुए तोरणों से भूमि उत्सवमयी हो रही है और हरितवन वीथियों रूप रथ के घोड़ों से युक्त सूर्य चमक रहा है। सूर्य के चलने की छटा के समान जहां पर अट्टालिकाओं का प्रकाश झिलमिला रहा है, जहाँ सूर्योदय के समान महाप्रकाशमान रात्री रहती है, नारायण के समान जहाँ पर स्वर्ण के पटल हैं ब्रह्मानन्द भोगने वाले मुक्तपुरुषों के समान जहाँ अट्टालिकाओं में मुक्तारत्न जड़े हैं और सुन्दर सेना के समान जहाँ मणिमय खम्भ हैं।

जैसे चन्द्रमा की कान्ति का पान चकोर-निकर करते हैं ऐसे ही वहां श्रीकृष्णचन्द्र की कान्ति छटा का पान करने वाले असीम गोपगण हैं भवन के आंगनों में विविध रत्न बाहुल्य से जड़े हैं और सदा हवन होते रहने से सुगन्ध फैल रही है। ऐसी सुन्दर व्रजराज की राजधानी श्रीनन्दराय जी का पुर सुशोभित है, जिसके मरकतमणि के भवन में स्वर्ण की दीवारें, प्रवालों के खम्भ और स्फटिक मणि तथा वैडूर्य की छतें हैं। ऐसी महानील मणिमय एवं विचित्र मोतियों से चित्रित विमानों के समूहों को पराजित करने वाला नन्दग्राम है।

उस ग्राम में किसी गृह में मणिमय भीति (दीवाल) पर रचना के चातुर्य से कहीं ऐसा सुन्दर शुक (तोता) बनाया है जिसे देखकर भोली गोपाङ्गनाएँ अनार (दाड़िम) के दाने खिलाने को हाथ बढ़ाती हैं और वे चित्रित शुक उन्हें ऐसे प्रतीत होते हैं मानो नेत्र खोल रहे और बन्द कर रहे हों।

उस नन्दगांव के राजा नन्दराय जी ऐसे प्रतीत होते हैं मानो मूर्तिमान वात्सल्य रस हो अथवा शुद्ध सतोगुण का सार ही शरीर धारण किये हुए हो। आनन्द समुद्र के द्वीप के समान ये व्रज-राज श्रीनन्द केवल भगवान् के पिता होने के भाव की प्राप्ति के सौभाग्य आनन्द में सदा एक रस रहते हैं। उनकी धर्मपत्नी अपने कुल को यश देने वाली श्रीयशोदा जी मानो मूर्तिमती कल्प लता हैं। जिसका फल श्रीभगवान् प्रकाश, जिसकी शोभा वात्सल्य रस, और जिसकी सुगन्धमयी मञ्जरी दुलार (लाड़) है। (अब श्रीशारदाजी) नन्दग्राम निवासी सखाओं का स्वरूप श्रीप्रिया जी के आगे कहने लगी।)

हे स्वामिनी जी, श्रीनन्दराय जी की राजधानी नन्दग्राम में बहुत से गोपाल रहते हैं। सब ही अपार गौवों के स्वामी हैं। और

गौवों के दूध दही मक्खन आदि से ही जीविका चलाने वाले हैं। उनमें कोई वृजराज के भ्राता और कोई परम्परा के सम्बन्धी हैं, जिनके पुत्र श्रीकृष्ण के सखा हैं। कोई गोपल मूर्तिमान धर्म है जिनकी पत्नियाँ भक्ति की वृत्तियाँ हैं।

श्रीकृष्ण के सब बाल सखा सनकादिकों के समान नित्य कुमार (बालक) रहते हैं। (अर्थात् उनकी नित्य बाल्य अवस्था ही रहती है) वे वन की क्यारियों के समान बराबर वय वाले सुगन्धित पुष्पों के हार के सदृश परस्पर समान गुण वाले हैं, शरद में प्रफुल्लित कमलों के समान प्रफुल्लित रहते हैं मनोहर घुंघराले केश वाले और ईशान आदि दिशाओं के समान सुन्दर अङ्ग वाले हैं। शरद में प्रफुल्लित कमल के समान उनके मुख, षड़ज मध्यम, और पञ्चम स्वरों के समान सुन्दर नासिकाएं हैं।

(फिर कहने लगी कि हे प्यारी जी)

ते हि अक्षदेविन इव चञ्चलाक्षाः। रघुनाथसहाया इव ओजस्वि-सुग्रीवाः करभा इव पीनायतहस्ताः मथ्यमान क्षीरनीरधितरङ्गा इव प्रसन्नवक्षोजाः।

करिण इव पीनकटा सदासुखिन इव महोरवः चन्द्र इव कोमल-पादाः सदैकशा अपि त्रिदशैकाधिकास्ते च श्रीदामसुदाम वसुदाम सुबलादयः।

गोपी स्वरूपवर्णनम्। अहो स्वामिनी सखीनांस्वरूपं वर्णयामि। द्वितीय गोदुहान्तु ताः कन्याः सुकविता इव सुकुमार पदाः। मनोवृत्तय इव निरूपम जंघालताः। वनवास प्रवृत्तरामराज्यश्रीय इव स्ववरजानु-गतसकलसौभाग्याः। उत्सवभूमय इव घनोरुरम्भास्तम्भारोपाः।

दुरूहग्रन्थय इव प्रकटितटीकाः बन्धजनचिरकाल संगतय इव बन्धुरोदराः। भगवन्नामकीर्तय इव सदावर्तनाभिकाः। भगवत्कृपा इव

दीनावलग्नाः। वर्षाश्रिय इव नव पयोधराः। हेमन्तश्रिय इव सुवलितायतदोषाः। अभिषेकावसानशिरः श्रिय इव कम्बुकन्धराः। नारायण करशाखा इव मार्जितकमलाननाः वसन्तश्रिय इव तिलकुसुमगन्धवहाः भगवन्मूर्तय इव ईक्षणानुग्रहीत कुवलयाः। भगवद्गुणकथा इव श्रवणरम्याः। कुबेरपुरश्रिय इव विलसदलकाभिख्याः। पश्चिमदिग् विभागलक्ष्म्य इव अभिरामकेशकलापाः।

हिन्दी गद्यानुवाद—

अब चपला सखी बोली कि हे स्वामिनी जी! मैं आप से नन्दग्राम वासिनी गोप कन्याओं का वर्णन करती हूँ—

गोप कन्याएँ परम सुन्दरी सुन्दर कविताओं के समान सुकुमार चरणवाली हैं। मन की वृत्तियों के समान अनुपम जंघा (लताओं) वाली, वनवास के पश्चात् रामराज्य की सम्पत्ति के समान समस्त सौभाग्यों वाली, और पृथ्वी की उत्सव स्वरूप घनी छवि वाली हैं। ये गोप कुमारिकाएँ कठिन ग्रन्थों की रची हुई प्रकट टीका के समान सुन्दर उदय और सुन्दर कटि वाली हैं। भगवन्नाम कीर्तन का जैसे बारम्बार आवर्तन होता है ऐसी आवर्तनमय नाभि वाली कन्याएँ हैं। जैसे दीनों पर भगवत् कृपा होती है उसी प्रकार ये गोप कन्याएँ प्रकट हुई हैं। इन कन्याओं के नव पयोधर (स्तन) वर्षा ऋतु की शोभा के समान हैं। वे हेमन्त ऋतु की रात्री के सदृश वृद्धि को प्राप्त होते हैं। अभिषेक समाप्ति के शोभायमान शंख सदृश उनका कण्ठ शोभित है। वे नारायण भगवान की उंगलियों से मार्जन किये हुए कमल के आनन वाली तथा पुष्पों की सुगन्ध बहाने वाले वसन्त की शोभा के समान अङ्ग वाली हैं। भगवान् नारायण की मूर्तियों के समान उनके कटाक्ष (अर्थात् अग्रहमय नील कमल के सदृश उनके नेत्र) हैं। और भगवान के गुणों की कथा के समान सुन्दर कर्ण (कान) हैं कुबेर की अलकापुरी की शोभा के समान

उनकी सुन्दर अलकावलियां और पश्चिम दिशा की शोभा के समान उनके केशों की गूंथन है।

इनका श्रवण कर किशोरी जी आगे पधारीं इनको विहार स्थली की ओर चलती देखकर श्रीप्रिया जी की सहचरीगण जो सर्व सखीयों की यूथेश्वरी ललिता, विशाखा, रंगदेवी, सुदेवी, चंपकलता, चित्रा, तुङ्गविद्या, इन्दुलेखा ये आठों सहचरि प्रियाजी के पीछे-पीछे चल पड़ी, ललिताविशाखा आजु-बाजु (पार्श्व में) रंगदेवी सुदेवी पीछे से दायीं-बायीं चमर करती हुई अवशिष्ट चारों सहचरी अतर पान आभूषण आदि लिए पीछे-पीछे चल रही हैं हित अलिजी आगे-आगे मार्ग प्रदर्शन करती हुई गमन कर रही हैं। श्यामसुन्दर इसी वाटिका के कोण में एक तमाल वृक्ष की ऊँची शाखा पर बिछे हुए प्यारी की गवनी की शोभा को देख-देख कर मुग्ध हो रहे हैं जब यह श्यामा मण्डल कुछ आगे गमन कर चुका तब प्यारे श्यामसुन्दर तमाल से नीचे उतर आये और तमाल तरु की शाखा का अवलम्ब कर खड़े-खड़े निहारने लगे।

श्यामा मण्डल मण्डन प्यारीजी मणिमय विहारस्थली में पधार कर एक तमाल तरु वेष्टित हेम लता की वल्लरी को अपने कर कमल संपुट में रखकर उन मृदु-मृदु पल्लवों को चुम्बन देती हुई प्यार करने लगी उस वक्त उस तरु तमाल पर चढ़ी हुई माधवीलता ने प्यारी पर प्रफुल्लित सुगन्धी पुष्पों की झर लगा दी यह देखकर श्रीललितादिक आठों सखियों ने जय-जयकार किया। इस प्रकार अपने इस मनोहर बाटिका के लताओं का प्यार दुलार करती हुई प्यारी जी अपनी सहचरियों के साथ रासस्थली में पधारीं नव-नव रंग युक्त विविध मणि मण्डित रासस्थली में गमन करते समय प्रिया के चरणारविन्दों में मेंहदी जावक की चित्रावली का प्रतिबिम्ब उस मणिमय स्थली पर जगमग करने लगा तथा श्रीप्रिया चरणारविंदों से

कुँकुम पराग झर-झर कर बिछाया उन पर प्रियाके उन्नीस पद अङ्कों (चिह्न) से वह मधुर स्थली मण्डित हो शतगुणी शोभा को प्राप्त हुई, वृक्ष रूप धारिणी वृक्ष लताओं पर विराजित कोयल मैंना रूप में स्थित सखी मण्डली प्रिया की नामावली राधा-राधा की यशोराशी का गान करने लगी। (ग्रन्थकर्ता आचार्य) हित सजनी इस अद्भुत अनुपम शोभा को देख--देख परमानन्द सागर में निमग्न हैं। जहाँ प्यारे श्यामसुन्दर एक तमाल तरु की शाखा का अवलम्ब लेकर खड़े हैं वहाँ चन्द्रानना और माधवी ये दो सखियाँ श्यामसुन्दर के समीप आकर प्यारे से कहने लगीं रसिकेन्द्र श्याम इस वाटिका में यहाँ से थोड़ी दूर पर एक अति सुन्दर किशोरीगण विहारस्थली में क्रीड़ा कर रहा है उस यूथ में एक परमाद्भुत रूपवती किशोरी हैं वह क्रीड़ा कर रही हैं उसके रूप और लावण्य को देखकर आप अपनी सुध-बुध भी भूल जावेंगे। यह सुनकर श्यामसुन्दर ने कहा कि हे सुन्दरी तुमने उन किशोरीजी को देखा है क्या ? चन्द्रानना ने कहा हाँ श्यामसुन्दर मैं तो उनका दर्शन करके ही आ रही हूँ। तब श्रीकृष्ण बोले तुमने देखा है तो वह कैसी है कुछ उनके स्वरूप का तो वर्णन करके सुनाने की कृपा करो। चन्द्रानना श्रीराधाकिशोरीजी के स्वरूप का वर्णन करके श्यामसुन्दर को सुनाने लगी।

अहो प्रिय—आसां मध्ये सकलरमणीमौलमणिमालेन। वैदर्भी रीतिरिव माधुर्यौज: प्रसादादिसकलगुणवती सकलालंकारवतीरसभात्र मयी च। कनक केतकीव प्रेमारामस्य। तड़िन्मञ्जरीव मधुरिमजल धरस्य, कनकरेखेव सौन्दर्य निकषपाषाणस्य। कौमुदीवानन्दकुमुद-बान्धवस्य। भुजदर्पावलिरिव कुसुमायुधस्य। सार श्रीरिव लावण्य जलधे:।

हासलक्ष्मीरिव मधुमदस्य। आकर भूरिवकलाकलापस्य-खनिनिरिव गुणमणिगणस्य कापिश्रीराधिकानाम। या खलु गौरी च

गौरी सहस्राधिका। तथापि श्यामाअनादिरपि किशोरो। सुरूपापि असुरूपा सखीनिकुरम्यस्य । सौकुमार्य्य वतीचासौकुमार्य्य वतीह सकलसौभाग्यम्। यां खलु महालक्ष्मीरितिकेचन लीलेति तान्त्रिका: परन्तुसा आनन्दिनी परमानन्द रूप परब्रह्मैवेति बोद्धव्यम् यस्याश्च ललिता विशाखादय: समान गुणरूपास्तत् प्रतिच्छायाख्या: प्रियसख्य: हितसखीनामा च प्रधानसचिवा तस्या:। द्वितीया च तस्या: दास्यभाव भाविता काचिद्यूथपा चन्द्रावलीव परमसुन्दरी प्रकृतिरिव गुणमयी नयनेन्द्रिय वृत्तिरिव रूपवती अपां वृत्तिरिव रसमय। कुसुमावलिरिव परमोदारा चन्द्रावलीनाम ललनारत्नं तस्या: सहचरीति।

हिन्दी में गद्यानुवाद—

समस्त स्त्रियों की शिरोमणि माला सदृश, काव्य-अलङ्कारों में वैदर्भी रीति के समान, माधुर्य, ओज, प्रसाद आदि सकल गुणों और सकल अलंकारों वाली, रस भावमयी, प्रेममयी बगीचे की स्वर्ण केतकी जैसे समस्त पुष्पों से केतकी पुष्प की सुगन्ध सर्वोत्कृष्ट है बैसे ही श्रीलक्ष्मी श्रीपार्वती श्री सरस्वती श्रीशची आदि रमणियों में सर्वोत्कृष्ट गुण सुन्दरी माधुर्यमय मेघ की विद्युल्लता के समान सौन्दर्य रूपी कसोटी स्वर्ण रेखा (लकीर) के समान, आनन्द रूपी चन्द्रमा की चांदनी के समान, कामदेव की गर्वित भुजाओं के समान (कामदेव को अपनी भुजाओं का महान् गर्व रहता है) लावण्य रूपी समुद्र में उत्पन्न सार लक्ष्मी के समान, कला कलापरूपी कुसुमा के कुसुमाकर के समान और गुणरूपी मणियों की खान के समान कोई एक श्रीराधा जी नाम की सर्वश्रेष्ठा कुमारी हैं। जो सहस्त्रों गोरियों से बढ़कर अनन्त गौर वर्ण होकर भी श्यामा तथा अनादि होते हुए भी किशोरी कही जाती हैं। जो सखी रूपा इन्द्रियों के प्राण और सुकुमारता से पूर्ण सकल सौभाग्य की सीमा के समान हैं जिनको कोई तो महालक्ष्मी (वैदिक) कहते हैं और कोई तान्त्रिक

लोग लीला ऐसा मानते हैं। किन्तु वह न तो लक्ष्मी और न लीला अपितु सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही है ऐसे निश्चित रूप से जानना चाहिये (अर्थात् श्रीराधा सर्वाराध्या परब्रह्म परमात्मा है) उनकी ललिता, विशाखा आदि समान गुण वाली आठों सखियाँ कायव्यूह रूपा प्रतिछाया रूपिणी प्रिय सखियाँ हैं। और एक हित अलि नाम की प्रधान सचिवा है। एक और दूसरी उनकी दास्य (सेवा) भाववाली (सेवा करने वाली) एक यूथ की स्वामिनी प्रकृति के समान गुणमयी, रूपवती, रसमयी, कुसुमावलि के समान ललना रत्न चन्द्रावली नाम की गोपी है। इतना वर्णन कर चन्द्रानना चुप होगई। श्यामसुन्दर के मन में अपनी प्रियतमा श्रीराधा के दर्शनों की उत्कंठा तीव्र हो गई और श्रीचन्द्रानना सखी से बोले हे सखी तुम मुझ को प्यारी के पास ले चलौ तो मैं आपके उपकार को कभी भी भूलूँगा नहीं यह सुनकर चन्द्रानना बोली हे प्यारे मैं आपको दूर से बता सकूँगी बिना आज्ञा आपको मैं ले जाने में असमर्थ हूँ अच्छा मुझ को आप उस जगह पहुँचा दो जहाँ श्रीराधा प्यारी क्रीड़ा कर रही हो, दोनों सखियाँ श्यामसुन्दर को साथ लेकर उस जगह पहुँची जहाँ प्यारीजी ने श्याम तमाल से लिपटी हुई हेमलता को अपने कर कमलों से लालित कर दुलरायी थी। दूर ही से उस तमाल वृक्ष को दिखलाकर दोनों सखियां श्यामसुन्दर से अलग होकर पुष्पों का चयन करने अन्यत्र चली गई। श्यामसुन्दर उस तमाल वृक्ष के पास जाकर हेमलता की उस वल्लरी को देखने लगे। श्रीकृष्ण को उस वल्लरी के पत्तों व पुष्पों में अपनी प्यारी श्रीराधा का प्रतिबिम्ब दीख पड़ा प्रतिबिम्ब के दर्शन करते ही श्रीश्यामसुन्दर के रोमांच हो गये आनन्दाश्रुओं की झड़ी लग गई देह का अनुसंधान जाता रहा पात-पात में पुष्प-पुष्प में प्यारी की छबि के दर्शन हो रहे हैं जिस वल्लरी का दुलार प्यारी जी ने अपने कर कमलों से कि

अपने मुखारविन्द के अधरों से स्पर्श कर चुम्बन दिया वह लता हर्ष से प्रफुल्लित हो असीम अनंत महासौरभ युक्त फूलों से लद रही है और जहाँ प्यारीजी ने विराजकर लता को लाड़ प्यार दिया उस जगह पर झुकी हुई पुष्पों की वृष्टि कर रही है वहां भंवरों के यूथ के यूथ मंडरा रहे हैं उस प्रेम समुद्र में निमग्न हुए श्याम उसी लता को अपने अङ्क में लेकर नेत्रों से छुआ रहे हैं भाल पर लगारहे हैं ऐसा प्यार कर रहे हैं मानों श्रीराधा प्राण प्यारी ही को प्राप्त कर सुखी होरहे हों क्योंकि उसीमें तो श्रीराधा प्राणेश्वरी का प्रतिबिम्ब झलमला रहा है वह प्रतिबिम्ब भी चिन्मय है अतः वह प्रतिबिम्ब कहने मात्र में है वह तो साक्षात् श्यामसुन्दर की प्राण पोषिणी जीवनी श्रीराधा ही हैं।

श्रीश्याम सुन्दर अपनी प्राणेश्वरी श्रीराधा जी के प्रतिबिम्ब को देख-देखकर अपनी देह का अनुसन्धान ही खो बैठे मानो प्यारीजी ही हृदय कुंज में प्राप्त हैं प्रेमानन्द सागर में डूब रहे हैं। इतमें विशाखा जी ने आकर प्यारे की यह प्रेम निमग्न दशा का अवलोकन कर विचार करने लगी कि प्यारे बड़ी देर से सुध-बुध खोये बैठे हैं इनको अब प्यारी से मिलाना ही चाहिये यह मन में विचार कर पास की वाटिका में चन्द्रावली सखि समुदाय पुष्पों का चयन कर रही थी उनको बुलाया और उनसे कहा कि देखो प्यारे तो प्रियाजी के प्रतिविम्ब को देखकर अपना देहानुसंधान ही खो बैठे हैं अब अपने श्रीराधा यशो गान करके इनको सावधान करें और प्यारीजी मदनानन्द कुंज में पधारी हैं वहाँ प्यारे को ले चलें। सब सखियों ने राधा यश गान आरम्भ किया । सबही सखियाँ मधुर स्वर से राधा-राधा नाम का उच्चरण कर रहीं हैं श्रीराधा नाम श्रीकृष्ण के कानों द्वारा हृदय में पहुँचा कि प्यारे ने नेत्र खोले और 'जलपत्यश्रुमुखो हरिस्तदमृतं राधेति मे जीवनम्' नेत्रों से प्रेमाश्रु की धारा चल रही

और राधा राधा यह नाम को रटने लगे सखियों ने प्यारे को चेत कराया और निवेदन किया कि हे प्यारे हम आपको प्यारी से मिलाती हैं आप हमारे साथ पधारो प्यारीजी आपके दर्शनों की प्रतीक्षा में मदनानन्द वाटिका में विराज रही हैं।

श्री विशाखा जी और श्री चित्रा सखी जी दोनों एक माधवी-लता के पास छिपकर लाल की इस अवस्था को देख रही थीं, लाल प्रेम में निमग्न हो रहे हैं उनको अपने देह की भी सुध नहीं है तब दोनों सहचरि लाल के पास आकर प्यारे को चेत कराकर विनती करी कि हे प्यारे आपकी प्यारीजी तो मदन वाटिका में विराज रही हैं और आपके दर्शन करने की प्रतीक्षा कर रही हैं कि प्यारे यहाँ आवेंगे, अतः आप वहां पधारो, यह बात सखियों की सुनकर प्यारे उठ बैठे और आगे पधारे पीछे-पीछे दोनों सखियां चल रही हैं कुछ दूरी पर मार्ग में अपनी प्रियतमा श्री राधा जी के चरणारविंद रमणरेती में मण्डित देखे उन चरण चिह्न को देखते ही प्यारे के मनमें प्रेम को समुद्र उमड़ पड्यो और आप उसी जगह विराजकर प्यारी के चरण को दुलराने लगे।

※ दोहा ※

निरखत तेई चिन्हनि पुनि, बढ्यो चतुर गुन काम।
गही शरन चरननि तबै, जानि सुखद सुख धाम ॥१॥

लई लाल जिनकी शरन, कोमल सुरङ्ग सुदेस।
कछुक कहत हों जथा मति, तिनकी छबि को लेस ॥२॥

श्री राधा प्यारी के चरण की शोभा तो अरुण कमल की शोभा को लज्जित कर रही है अर्थात् कमल पुष्प की कोमलता से भी अधिक कोमल और सुरङ्ग हैं लाल के मनमें ये चरण सुख को पुञ्ज ही मालुम हो रहे हैं।

※ दोहा ※

कुंअरि चरन सुख पुञ्ज में, अम्बुज छबि हरि लेन ।
चहुं दिसि तापर भ्रमत रहै, प्रीतम के अलि नेन ॥३॥

और उन चरण-कमल के ऊपर लाल के नेत्र रूपी भँवर चारों ओर मँडरा रहे हैं। और उन चरणों पर सूर्य की धूप गिरती देखकर प्यारे ने अपने मुकुट की छाया करी और अपने प्रेम के आँसुओं से उन चरणों को अर्घ प्रदान किया फिर अपने पीताम्बर के छोर (पल्ले) से उस पर वायु करने लगे (विचार किया) फिर झुककर चरणों को प्रणाम किया।

※ दोहा ※

प्रेम प्यार के चाव सौं, सेवत पद सुकुंवार ।

अब तो प्यारे ने अपने पीताम्बर कौ बिछोना बिछा कर उन चरण को ऊपर विराजमान किये और हाथ में दर्पण लेकर निहा-रने लगे।

※ दोहा ※

चितवत लीने मुकुर ज्यों, अमित माधुरी रूप ।

अथवा जैसे हाथ में आरसी लेकर रूप को निहारते हैं उस तरह अपने नेत्रों से उन चरणों को निहारने लगे।

※ दोहा ※

चुंबत छुवत नेन पिय, जावक चित्र बनाइ ।
देखि अटपटी प्रेम की, गति नहिं समुझी जाइ ॥

बार-बार उन चरणों को लाल अपने मुख से चुंबन करने लगे और उन पर जावक चित्र बनाते है।

* दोहा *

यह सुख देखत सखिन के, बाढ्यो अति अनुराग ।
हित सो देत असीस सखि, अविचल कुँअरि सुहाग ।।

विशाखाजी चित्रा सखी से कहती हैं कि हे सखि देख कैसो अटपटो प्रेम लाल को है जो निशि दिन लाल इन चरणों की सेवा करते हैं इन चरणों को अपने हृदय में विराज रक्खे हैं इन चरणों को तो लाल अपने हिये को हार बनाय रक्खे हैं ।

* दोहा *

ते पद सेवत रहत दिन, सहज परयो यह नेम ।
चरन चारु कौ हार किय, पिय प्रवीन रस प्रेम ।।३५।।

(ध्रुव प्रेमावलि लीला

विशाखा जी फिर कहती हैं कि हे सखी देखो - देखो प्यारी के चरन कैसे हैं कुन्दन (स्वर्ण) के समान झलमलाते हैं और उन पर नख की कांति मणि के समान अथवा माणिक की तरह चमक रही है ये चरण तो मानों कमल में मणियों का जड़ाव जड़ा हो ऐसे सुख दे रहे हैं ।

* दोहा *

मनिगन युत झलकत रहै, पद अम्बुज सुख देन ।

इन चरण कमल के प्रेम रूप सुवास को सूँघने के लिये प्यारे को चित्त तो भँवर बन गयो है ।

* दोहा *

सहज सुभग रसनिधि सरस, प्रीतम चित अलिरान ।

फिर विशाखाजी प्रेम में छककर चित्राजी से कहने लगी कि हे सखि यह लाल को महा अद्भुत प्रेम है प्रेम के पुजारी लाल ही हैं

प्रीति की रीति तो यह रँगीलौ ही जानै है अर्थात् विशुद्ध उज्ज्वल महा प्रेम के निबाहने वाले तो ये लाल ललना ही हैं और बोलि कि-

* दोहा *

रूप मदन गुण नेह जुत, ऐसो भयो अनूप ।
सो रस पीवत छिन ही छिन, मिलि वृन्दावन भूप ।।
तेहि सुख को रस मोद सखि, जो उपजत दुहुँ मांहि ।
पल-पल पीवत दृगनि भरि, ललितादिक न अघांहि ।।
रस निधि रस रतनावलि, रसिक रसिकनि केलि ।
हित सों जो उर धरै ध्रुव, बढ़े प्रेम रस बेलि ।।
महा गोप्य अद्भुत सरस, चिंतन रहो मन मांहि ।
या रस के रसिकनि विना, सुनि ध्रुव कहवो नांहि ।।

विशाखाजी बोलीं कि हे प्यारी सखि राधा पदाङ्क विलसन्मधुरस्थलीके ऐसी राधा पद चिह्न मण्डित राधा विहार विपिन की मधुर स्थली में हमारो मन सदा रमण करै ।

कृष्णामृतंचल विगाढु मितोरिताहं ।
तावत् सहस्व रजनी सखि यावदेति ।।
इत्थं विहस्य वृषभानुसुतेह लप्स्ये ।
मानं कदा रसद केलि कदम्ब जातम् ।।१४।।

* पद *

कृष्णामृतं चल विगाढुं इति ईरिता अहम् तावत् सहस्व रजनी सखि यावत् एति। इत्थं विहस्य वृषभानुसुता इह लप्स्ये मानं कदा रसद केलि कदम्बजातम् ।

।। हिन्दी में अर्थ ।।

जब प्रियाजी मुझसे कहेगी—"अरी सखी, श्रीकृष्णामृत अवगाहन करने के लिये चल" । तब मैं हँसकर कह दूँगी—हे प्यारी जी

तब तक धैर्य्य रक्खो जब तक रात्री नहीं आ जाती। क्योंकि कृष्णामृत—अवगाहन तो रात्रि ही में ठीक बन सकता है। उस समय मेरे हास्य-मय बचनों से रसदायक केलि समूह का एक अनुपम आनन्द उत्पन्न होगा। मैं कब श्रीवृषभानु नन्दनीजू से इस रसमय सम्मान की अधिकारिणी होऊँगी ॥१४॥

इस श्लोक से—दिशा-नमस्कार, महिमा-नमस्कार, चरणरज-स्मरण श्रीप्रियापरत्व, मार्जनी टहल की अभिलाषा, श्रीवृन्दावन की प्राप्ति की अभिलाषा आदि करते हुए अब अत्यन्त निकटवर्ति ऐश्वर्य-शून्य महामधुर सहचरि भावपूर्वक हास-परिहास का वर्णन किया है।

❋ कुण्डलिया ❋

सुकुमारी प्यारी हिये, उपजी आनन्द बेल।
निजहित सजनी सों कह्यो, चल कृष्णा कलकेल॥
चल कृष्णा कलकेल, करें हिलमिल झकझोरी।
परखि प्रेम की बात, कही हँसि चतुरा गोरी॥
धरो सजनी धीर, केलि करियो निसि प्यारी।
हुलसहुं कब लखि सुनत, सकुच विहसन सुकुमारी॥

❋ दोहा ❋

कृष्णामृत हित चलि सखि अवगाहन चित्त चाई।
सजनी रजनी लौं रहो सुनि हंसि भौंह चढाई ॥१॥
परम उतावल भानुजा कब सुमान उर धार।
कुञ्ज केलि आनन्द रस सुख उपजावत हार ॥२॥

संक्षिप्त संस्कृत टीका

हे वृषभानुसुते त्वया हे सखि कृष्णामृतं विगाढुं चल इति ईरिता अहं त्वां इत्थं विहस्य रसद केलि कदम्ब जातं

मानं सन्मानं कदा लप्स्ये प्राप्स्यामि। इत्थंकि हे सखि राधे यावद् रजनी एति तावत् सहस्व धैर्यं कुरु।

श्री कृपालाल कृत संस्कृत टीका

इदानीं स्वस्मिन् तन् मान सुखमास्वादयन्नुद् भावयति। कृष्णेति। हे वृषभानुसुते। अहं इत्थं मानं कदा लप्स्ये। त्वत्त इति शेषः। कीदृश्यहं। हे सखि कृष्णामृतं विगाढुं चल इतीरिता। अत्र लिंगवद्धि समास प्रवृत्तिः। कृष्णा श्रीयमुनापि तत्र पुंसमास ज्ञानोत्तरमेव मानबीजम्। तदेव दर्शयति। यावद्रजनी एति तावत् सहस्व। एवं प्रकारेण विहस्य मत्कथनोत्थितो यो मानः तं बहुसंमर्दवशाद्दिवा न सिद्धये दित्याशयेन। कीदृशं मानं रसद केलि कदम्ब जातं। रसंददातीति रसदो यो मानस्तस्मिन् या केलिः पादपतनादिः तस्याः यत् कदंबं समूहः तस्माज्जातम्। तदनुरोधादुधृतमित्यर्थः। अपह्नुति ज्ञानेनैवेति भावः।

कृष्णामृतंचल विगाढुमितीरिताहं।
तावत् सहस्व रजनी सखि यावदेति ॥
इत्थं विहस्य वृषभानु सुतेह लप्स्ये।
मानं कदा रसद केलि कदम्ब जातम् ॥१४॥

अन्वयार्थ—कृष्णामृतं विगाढुं चल इति ईरिता अहं रस क्रीड़ावसानं वीक्ष्य राधे कृष्णा यमुना तस्या अमृतं सलिलं तस्मिन् विगाढुं स्नानं कर्तुं चल इति मया कथितं वाक्यं श्रुत्वापि विहस्य हास्यं कृत्वा वृषभानु सुता मां प्रति आह ससि रजनी आयाति तावत् सहस्व इति इत्थं रसद

केलि कदम्ब जातम् मानम् स्वान्तरङ्गा सखि संबोधनम् अहम् कदा लप्स्ये ।

॥ हिन्दी में अर्थ ॥

श्री यमुना जी में स्नान करने को चलो इस तरह के वचन बोलने पर वृषभानु राजनन्दिनी मुझको कहेगा कि हे सखि जब तक रजनी शेष न हो जाय तब तक ठहर जा ।

इस प्रकार रसद केलि कदम्ब से उत्पन्न मान को मैं कब प्राप्त करूँगी ।

तात्पर्यार्थ—श्रीराधा और श्यामसुन्दर दोनों की रस लीलाका अवसान (समाप्ति) देखकर (अर्थात् पश्चात्) सब ही सखीजन कुञ्ज द्वार पर आकर उपस्थित हो गईं ।

※ दोहा ※

दोहुँ जना पूरल मनो अभिलाष बैठलो राई
श्याम वाम पाश ।
सेवन परायण सहचरी आई चामर
वीजन वीजई ताई ।
बासित बारी कई सखि देल वदनक चरवण
ताम्बुल नेल ।

सेवा परायण सब सखियों को इसी प्रकार आनन्द उल्लास मय सेवा चातुर्य को मानस नेत्र से देखकर ग्रन्थ कर्ता साधको चित भाव में कह रहे हैं कि अहा हम तव राधेजी को कहेंगी । हे श्री राधे श्री यमुनाजी के स्निग्ध जल में स्नान करने को चलें । मेरी इस बात को मुझसे सहर्ष कहेंगी कि हे सखि रात्री है प्रभात नहीं हुई अतः कुछ देर ठहर जा । इस प्रकार वचन बोलकर फिर दोनों आलस से

शय्या पर सो रहे रति रण रूपी विलास से थक कर गाढ़ निद्रा में सो गये।

हाय इस प्रकार रसद केलि समूह से उत्पन्न मान अर्थात् स्व-अन्तरङ्ग सखि के योग्य ऐसा मान मुझको कब प्राप्त होगा, यह सखि ठहर जावो ऐसा अन्तरङ्गा सखि के योग्य सन्मान मुझको कब प्राप्त होगा।

रसकुल्या टीका

येन साक्षान्नाम कथन मर्म नर्मोञ्चित व्यवहार सिद्धिस्तमेव सख्य रस निर्देश इति कृष्णामृतं चलेति !

कृष्णामृतं चल विगाढु मितीरिताहं—
तावत्सहस्व रजनी सखि यावदेति।
इत्थं विहस्य वृषभानु सुतेह लप्स्ये,
मानं कदा रसद केलि कदम्ब जातम् ॥१४॥

कृष्णामृतमिति—ह इति हर्षे ! हे वृषभानु सुते त्वया इतीरिताहं इत्थं विहस्य रसद केलि कदम्ब जातम् मानम् कदा लप्स्ये इतीति किं त्वं कृष्णामृतम् विगाढुं चल अहं तत्र यास्ये इत्यर्थः। इत्थं कथमिति, हे सखि यावद्रजनी एति-तावत्सहस्वेत्यन्वयः। कृष्णा यमुना नामान्तरम् गौण्यपि श्याम वर्णेन कृष्णेति गांभर्येतु—'कृषिर्भू वाचकः शब्दोणश्च निर्वृति वाचकः तपो रैम्यं परंब्रह्म कृष्ण इत्यभि धीयते'— इति केवलम् सदानन्द प्रति रुपेत्यर्थः। तस्या मृतम् तद्रूपं— जलम् अवगाहयितुम् स्नानादि क्रीडार्थं चल त्वं इति ईरिता कथिता प्रेरिता तदामया कृच्छ शब्द शेषार्थं मनुसृत्य हसितं हे सखि हित प्रिय सत्य वादिनी प्रायः अनिन्हुत सकल सह कृत क्रीडे अहमप्येवम् यथार्थं वच्मीति यावद्रजनी परस्परा-

नुराग विलास विश्रंभ गाढ मनोरंजनी रात्री रागच्छति तावत् क्षमस्व किमिदानीमेव त्वरयसि। इत्थं विविधकेलि प्रिय रस यथेष्टावगाहनार्हा रात्रिरेवेति लोकख्यातिमाश्रित्यहासार्थं मुक्तं न चात्र दिवसस्य विलासार्हता सूचिता यदा इत्थं विहसितं तदा किं जातमित्याहरसदं इति किं निर्व्रीडे विकल्पयसि तव किं शीलं, श्लेषार्थं व्यंगं विना कदापि किमपि न वदसि, सदैवअदान्त मनसि विलास एव स्फुरति इति। तत्स्मित भ्रू भंग क्रीड़ा कमलसंताडनावहेलन परिहास प्रत्युत्तरकौतुक रसास्वादादिखेल वैविध्यजातंसख्यरस फलीभूतं मानं, न कापिमत्समेति चित्त समुन्नयन संमानं हर्षं प्रेमदर्पमितियावत्। कदेति साधक रुपापेक्षयानिजानुभूतस्मरणोत्कलिकातिरेकेण दुर्लभत्वद्योतनं लप्स्ये प्राप्स्ये इति।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

जिस पर स्पष्ट नाम भी उच्चारण हो जाय तथा मर्म और नर्मोक्ति व्यवहार सिद्ध हो उसी प्रकार सखी को रस निर्देश पद्धति से समझा रही है—कृष्णामृतं चल विगाढुं इत्यादि! (लालजी का स्पष्ट रूप से नाम कान में डालकर बड़ी गुप्त बात को, कहने की चतुरता से, सखी को समझाती हुई रस प्रकट करती है)।

एक समय, दिन में ही, श्री प्रियाजी के मन में लालजी के साथ रति क्रीड़ा करने की उत्कण्ठा जाग्रत होती गई तो श्रीहित सखी जी से बड़ी चतुरता से गुप्त प्रकट भाषा में अपने हृदय की इच्छा व्यक्त करने लगी कि चलो कृष्णामृत में अवगाहन करें, कृष्णा श्री यमुना का अमृतमय जल है उसमें स्नान करें इस भाव को गौण बताने के लिए प्रकट शब्दों में, द्वयर्थक भावों में, श्लेषात्मक

अलंकार द्वारा कहती हुई, गुप्त रूप से कहती है कृष्ण रति रस में अवगाहन करें, चलो, अर्थात् कहने का अभिप्राय है कि श्रीकृष्ण के साथ रति क्रीड़ा करने चलो पर वाच्यार्थ यह है कि श्रीकृष्ण यमुना में गोता लगा आव। यहां वाच्यार्थ गौण है लक्ष्यार्थ प्रधान है इसे साहित्यकार (अत्यन्त तिरष्कृत वाच्य श्लेषार्थ कहते हैं। श्रीहित अलीजू परम चतुर अन्तरंग सखी हैं अतः श्रीप्रियाजी के हृद्गत भावों को तुरन्त ही समझ गई और वाच्यार्थ को तिरष्कृत करके लक्ष्यार्थ को प्रकट करती हुई बोलीं कि रात्रि के आने तक धैर्य धारण करो, रात्रि में कृष्णा यमुना के जल में अवगाहन (स्नान) और केलि होती नहीं है अतः यमुना स्नान के लिये तो आप कहती नहीं हैं कहतीं हैं कृष्णामृत में अवगाहन के लिये वह में समझ गई तो उसके लिए रात्रि ही उपयुक्त है। इस प्रकार हँसकर श्रीहित सखीजू उत्तर देकर प्यारीजू के भाव संगोपन को देखने की अभिलाषा कर रहीं हैं, कि इस प्रकार प्यारीजू के आश्रय को स्पष्ट करके मैं उन्हें रस मग्न कर दूंगी जिससे उनके भाव प्रकट होने लगेंगे और उन्हें छुपाने के लिए संकोच और भाव संगोपन पद्धति स्वीकार करेंगी तथा मुझे चुप करने के लिए मान द्वारा डराएंगी कि रस को स्पष्ट करना दोष है। यह अपूर्व रस निरूपण है साहित्यकार इसी पद्धति को 'शून्यं वास गृहं विलोक्य शपना हुत्थाय' आदि प्रकार से व्यक्त करते हैं कि प्रिया अपने प्रियतम को गाढ़ निन्दा में जानकर पास जाती है और चुम्बन करती है पर वह तो निन्द्रा का ढोंग बनाये पड़ा था अतः चुम्बन से उसके रोमांच हो गये, यह गलती अपनी समभकर प्रिया भाव गोपन के लिए लज्जित और नम्र सुखी हुई तो प्रिया ने भाव गोपन से पूर्व ही चुम्बन क्रिया द्वारा प्रतिबन्ध लगा दिया, किन्तु यहाँ तो दिव्य प्रेम लीला में प्रतिब्रन्ध के स्थान पर उस भाव संगोपन का दर्शन करके उसे बढ़ावा देने के लिये

कृतज्ञता सूचक भावों से देखते रहने की ही अभिलाषा है। टीकाकार इन्हीं भावों को व्यक्त करते हैं और इन्हीं भावों में डूबकर दुर्लभ तथा दिव्य रस का निरूपण भी करते हैं जो केवल श्रीराधिका रति निकुञ्ज मण्डली सम्बन्ध ही है।

कृष्णामृत चल विगाढुम्—इस श्लोक के तीसरे चरण में 'वृषभानु सुतेह' पद में ह यह अक्षर हर्ष द्योतक है। वृषभानु सुता तुम्हारे इस प्रकार कहने पर मैं, इस तरह हँसकर, रसोद्बोधक केलि कलाप युक्त, मान कब पाऊँगी। 'विगाढु मितीरिताह' इस प्रथम चरण के पद में इति शब्द का यह अर्थ है कि तुम (हित सखीजू) कृष्णामृत में अवगाहन करने चलो, अर्थात् मेरे साथ चलो, मैं अवगाहन करने को जा रही हूँ तुम पथ प्रदर्शिका बनकर मेरे साथ चलो, अवगाहन तो करना है मुझे, अवगाहन की उत्कट अभिलाषा है मुझे अतः (सुख दुःखे समासखि) रसोद्रेक के कारण मैं जाने में असमर्थ हूँ तो पहुँचाने का कार्य तुम करो, (यहां प्रियाजी की स्थिति में अशक्तता है और हित सखीजू की स्थिति में सावधानता है यह दोनों की दशा और प्रेम की तुलना है) मैं क्रियात्मक अवगाहन करूँगी और तुम भावात्मक अवगाहन करोगी इसीसे वाक् विन्यास में लाभ का संकेत है कि 'तुम कृष्णामृत में अवगाहन करने चलो।

इत्थं, इस प्रकार अर्थात् उपरोक्त प्रकार से जो द्वितीय चरण में बताया है कि 'रात होने तक धैर्य धारण करो' हे सखि राधे! जब तक रजनी (रंजन करने वाली की सहायता से न मिले) न आवे तक पीड़ा सहो, धैर्य धारण करो ये है सम्बन्ध (अन्वय) कृष्णा, यमुना का नामान्तर गौण है पर श्याम वर्ण के कारण (यमुना का जल काला) यमुना को कृष्णा कहते हैं, यह कृष्णा नाम प्रधान नहीं है कृष्णा नाम की एक दूसरी नदी है उसी का प्रधान नाम कृष्ण है यहाँ यमुना को कृष्णा गौण नाम से सम्बोधित करने का अभिप्राय

यमुना अवगाहन यमुना स्नान अभीष्ट नहीं है, वाच्यार्थ प्रधान नहीं प्रधान तो लक्षार्थ कृष्णा के लिये ही है। कृष्णा शब्द का अर्थ यहाँ हेतु गर्भित है अभीष्ट तो कृष्णा रूप अमृत में अवगाहन है अतः कृष्णा-मृत का अर्थ कृष्णा ही अमृत है (और सब अमृत नगण्य, अपेक्षाकृत हीन है) जैसे 'कृषि भू वाचक शब्दः' इस पुष्पिका से श्रीकृष्णा ही सदानन्द, स्थिरानन्दामृत है, कृष् शब्द भू वाचक है और भू शब्द का अर्थ स्थिर है ण शब्द का अर्थ निवृंति है तृप्ति है कृष्णा माने स्थिर तृप्ति है उसीमें निमग्न होने की इच्छा श्रीप्रिया जी की है अर्थात् सदानन्द में डूबे रहने की इच्छा है। (संयोग तो सदा है ही सदानन्द कृष्णानन्द कृष्णामृत में अवगाहन तो सदा ही है पर संयोग में ही विप्रयोग की भावना आ जाती है 'अंकस्थितेपि दयिते' आदि उदाहरण हैं कारण 'न विना विप्रलम्भेन सयोगः पुष्टि मश्नुते' विप्र-योग के बिना संयोग सुख का मूल्य भी नहीं है, वल्लभाचार्य के मत से तो श्रीकृष्णा 'उभय विध उद्बद्ध रसः फलात्मा' है तो श्री प्रियाजी की इच्छा सदा संयोग सुख को ही प्राप्त करने को रहती है) श्रीप्रिया जी कहती हैं, चल कृष्णामृत में अवगाहन करें, संयोग की भावना आ ही आदर करें विप्रयोग भावना का तिरस्कार करें (वेदान्त सिद्धान्त से भी संयोग ही है मूर्खों ने विप्रयोग मान रखा है, देश, काल, वस्तु से अपरिच्छिन्न ब्रह्म का संयोग ही मानना सम्यक् ज्ञान है) सदानन्द के श्रीकृष्ण के अमृत में तद्रूप जल में (प्रेम में) अवगाहन करने को, स्नानादि क्रीड़ा के लिये चल तू इस प्रकार प्रियाजी के द्वारा ईरित, प्रेरित, होने पर कहने पर तब मैंने कृष्णा शब्द में श्लेषार्थ का विचार करके समझा कि ये कृष्णा यमुना में अवगाहन करना नहीं चाहती है कृष्णा रस में अवगाहन करना चाहती है मैं हँसी और कहा कि हे सखि, हित, प्रिय, सत्य बोलने वाली, तुमने प्रायः लालजी के साथ हुई सभी क्रीड़ाओं को कभी

मुझसे छुपाया नहीं है तो इसी तरह मैं भी ठीक कहती हूँ कि, जब तक रजनी (रंजन कराने वाली) परस्पर अनुराग, विलास, विश्वास और गाढ़ मनोरंजन प्रदान कराने वाली रात्री (रा धातु के साथ तृन् प्रत्यय जोड़ने से प्रदात्री अर्थ होता है) भावना नहीं ग्राती है, मिलन की वेला या मिलन की भावना नहीं आती है तब तक के लिये मुझे आज्ञा पालन करने में विलम्ब दोष, अपराध के लिये क्षमा प्रदान करें, (यह भाव देश की भाषा भी रसमयी है जिसे रसिक मण्डली ही समझ सकी है, यह साहित्यक सहृदय सम्बेद्य भाषा से भावित नहीं हो सकती) इस प्रकार विविध केलि रूप,प्रियतम को रस में,पूरी तरह से डुवा देने वाली रात्री (मिलन कराने वाली भावना) की ही बात, बदलकर, रात्री का भी श्लेषार्थ करके गौण रात (ग्रन्धकार) अर्थ जो 'लोक ख्यात' संसार प्रसिद्ध ग्रर्थ है मानकर हँसी में ही उत्तर दिया कि रात आने दो. वास्तव में यहाँ दिन का विलयन (बीतना) या दिन भर प्रतीक्षा करना और रात की वाट देखना ये प्राकृत अर्थ या रसानुरूप अर्थ नहीं है. दिन भर की प्रतीक्षा तो दूर प्रेम देश में तो एक पल भर की प्रतीक्षा में महा प्रलय होता है और यह युगल प्रेम, रात दिन की अपेक्षा में साधन सापेक्ष नहीं बन सकता है यहाँ तो इच्छा मात्र से दिन-रात, और रितु ग्रादिक, लीला की प्रतीक्षा में तत्पर रहते हैं।

जब इस प्रकार रसोद्बोधक परिहास के द्वारा, चतुर शिरोमणि श्रीहित अलीजू ने कहा तब क्या हुआ इस रहस्य को टीकाकार श्रीहरिलालजी व्यास, उन्हीं की कृपा से समझकर, व्यक्त करते हैं—

रसदं इति ! रसोद्बोधक, रसात्मक अथवा रसमय केलि (विलास) परम्परा से युक्त सम्मानित, मान सन्मान कब प्राप्त होगा। हे निर्व्रीडे ! लज्जा रहित ! क्या ? द्वयर्थक शब्द बोल रही हो।

तुम्हारा कैसा स्वभाव है ? श्लेषार्थ, व्यंग्यार्थ शब्दों के बिना बोलती ही नहीं हो ! तुम्हारे अदम्य (अविनीत) मनमें सदा विलास का ही स्फुरण (फुरना) रहता है । तब कुछ मन्द मुसकान के साथ, भ्रकुटि टेढ़ी करके, लीला कमल को अपने ही हाथ पर या सखी के कन्धे पर थपका कर, उसे पुनः चूमकर, हँसी-हँसी में, प्रत्युत्तर के खेल का स्वाद लेकर अनायास ही तरह-तरह से उत्पन्न होने वाले सख्य रस के परिणाम स्वरूप मान को, कि मेरे समान कोई नहीं है, इस प्रकार के भाव को व्यक्त करने वाले, दिल को ऊँचा प्रतीत कराने वाले सन्मान, हर्ष और प्रेम दर्पको ! कब, साधक रूप से अनुभव करने वाले की अपेक्षा, कृपासाध्य अनुभव से उपस्थित किये हुए स्मरण रूप दीप-कलिका के प्रकाशातिरेक से (आधिक्य से) दुर्लभ वस्तु (मान) प्राप्त हो चुका है इस प्रकार का अनुभव प्राप्त करूँगी ।

रसकुल्या टीका

अयं भावः! एकदा अपराह्णोत्थापन समये, इयमुक्तिः तदा ग्रीष्मर्तु गुणोत्पन्ने जल क्रीडा समय एव, तत्र किंचिदुष्मतायामेव क्रीडा रुच्यातिशयादमृतोक्तिः ! अथवा प्रातः शयनोत्थिता विविध विलसित रात्रि विलास सरस रतोपमर्द्द चिन्हास्तव्यस्तव्यस्त वसन भूषणांगराग, सा लसज्जृंभित वदनपरिमलोद्गार सुरभित वास गृह परिजन परमानन्द दायि सौभाग्य भूमि, तत्समय विलक्षण प्रेक्षणीया जटत्यागत मत्समी कृत यथा वद्वसन रसनालका रसनाशक्य परमानंद प्रापिका प्रिया, परमान्तरङ्ग हित प्रिय विश्रम्भास्पदां, सकल रजनी-विलासयाथार्हाध्यवसिता प्रमत्त स्थित्यधिकारां मां हित सहचरीमुवाच प्रिये च, यावत्तावत्तद्वचन कौतु-

काय क्वचिद् यमुना कूल फल पुष्पावचयनाय नवीन कुसुम भूषां विरचय्य शीघ्रम् यामीत्ये तदर्थं गते सति वाम्य कृष्णामृतमिति ! किशोर वयोवश प्रादुर्भूत सकल विद्यादि वैदग्ध्य गुण कथित मात्र ज्ञात शब्द श्लेषार्थ भावा नागरी सर्वेषां स्वाभिलषित संकेतित नामान्तराण्येव वदति, किंच परम करुणा कृपा रस द्रव चित्त तया शब्द कार्कश्य वचन श्रुतिभीरुः सुकुमारी सकल दुःखद कृतान्त भगिन्यर्थ द्योतकं नाम यमुनेति पूर्व वन्नाभि दधाति यमुनेति क्वचित् प्रत्यक्ष पलकांतर प्रेम वैचित्ये कथयति मिथो भानु जात्व जात सख्येन सेवन धर्मानुगत तत् सुखता मय दास्येन च प्रियता स्पद सहचरत्व सिद्धौ तदमृत सलिल निमज्जन क्रीडैव परम इष्टा अतः केलिश्रम निवर्हणार्थ मेतदुक्तिः परम ममता स्नेह मयी कृष्णामृतमितिः यद्वा कृष्ण रसावेश वैवश्येनेय मुक्तिः। अन्तर्यत्प्रेमास्पदं तदेव वैवश्ये वहिः स्फुरेदिति व्यत्यस्त क्रम-मपि शारदा सख्यत्व वर्तिनी यथा रस पोषकमर्थं मेल-यत्येवेति ज्ञेयं !

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

भाव ये है कि—एक समय जब श्रीप्रियाजी दुपहर के विश्राम के पश्चात् (सन्ध्या से पहले ही, स्नान करने के लिये उपयुक्त समय में) बोलीं—गरमी के कारण (ग्रीष्म ऋतु में स्नान करना सुहाता है, 'सुभग सलिलावगाहा') जल क्रीडा करने के लिये उपयुक्त समय में, गरमी शांत होने लगती है सन्ध्या प्रवेश के कारण उष्मा बढ़ने लगती है तब स्नान करना रुचता है, तब इस प्रकार श्लेषार्थक शब्दों का प्रयोग 'कृष्णामृतं चल विगाढुं' यही अर्थ प्रतीत कराता है कि

यमुना स्नान करने के लिये आज्ञा दे रही हैं पर 'कृष्ण' शब्दके प्रयोग से अंतरंग सहचरी श्रीहितअलीजू वाच्यार्थसे भ्रममें न पड़कर बाच्यार्थ को समझ गईं, और सदा इसी प्रकार की रसमयी भावमयी वाणी को सुन-सुनकर हृदगत भावों को समझने में कुशल भी हो गई अतः प्राकृत अर्थ समझ गईं (इत्याशयाद मृतोक्ति का भाव है) अथवा प्रातः शैय्या से उठते ही श्रीप्रियाजी की जो झाँकी थी कि—अनेक प्रकार से विलास किये, तो रात्रि-विलास में जो रस पोषक (रतोप-मर्द्द) रति सुख में अङ्ग प्रत्यङ्ग का मसलना हुआ था उसके चिन्ह अङ्गों पर प्रत्यक्ष दीख रहे थे और इस उद्भट रति रण का प्रमाण देने वाले चिन्ह (नख क्षत, दन्त क्षत, ताम्बूल, अलक्तक, मषि, विन्दु, तिलक दर्शनादि) तथा उलटे - पलटे वस्त्र, आभूषण, अङ्गराग वस्तु स्थिति को सजीव भान करा रहे थे, परिश्रमातिरेक के कारण आलस ही आलस भरा था (रात्रि को पूर्ण निन्द्रा प्राप्त हो तो आलस नहीं होता) नींद ले न सकीं तो मुखारविन्द पर जृम्भा (जम्हाई,उबासी) बार-बार आ रही थी जिससे स्वास वायु में भरे हुए, हृदय कमल के संचित कामाग्नि कषायित, मिश्रित कणों की सुगन्ध से निवास गृह (लता गृह अथवा विलास गृह) सुगन्धि हो रहा था, कि प्रियाजी के मुखारविन्द को सुगन्ध से तो सबकी नासिका पूर्ण परिचित थी पर जब कुछ मिश्रित विलक्षण गन्ध सूँघने को मिली तो सब जान गईं कि लालजी के स्वास की वायु भी जम्हाई द्वारा नासिका प्राप्त कर रही है तो सब कुछ रहस्य सब कोई समझ गईं और समस्त परिजन को परमानन्द प्रदान करने वाली अवतरिणि का प्राप्त हो गई ! उस समय श्रीप्रियाजी देखनेमें विलक्षण प्रतीत हुईं पर वे भी परम चतुर शिरोमणि हैं अतः सखीजनों की कौतूहल और जिज्ञासा मयी दृष्टियों से समझ गईं कि मेरी अतीत स्थिति इनके सामने प्रत्यक्ष है तो झट

श्रीहित अलीजू के पास आकर उन्हीं के (हित सखी के) जैसे व्यवस्थित वस्त्र, वचन और केश बनाकर (बोलीं) इस प्रकार की श्रीप्रिया राधा वाणी के माध्यम से तो बताई नहीं जा सकती, केवल संवेद्य शक्ति से परमानन्द प्रापिका के रूप में अनुभव ही की जा सकती है, अपनी प्रिया है इष्ट स्वरूपा है इसी से अनुभव पथ पर प्रति फलित होती है तो मुझ परम अन्तरङ्ग हित करने वाली हितमयी प्रिय सखी से जो विश्वास पात्र थी, (अपनी स्थिति बताने को बोलीं) श्रीप्रिया इस प्रकार सारी रात विलास के द्वारा सताई जाय इस योग्य तो थी नहीं इसीसे (विलासातिशयसे) अव्यवस्थित, रति विक्षिप्त हो गई तो ऐसी अवस्था में पड़ी हुई प्रिया को सम्हालने वाली, सावधान करने की आज्ञा और अधिकार प्राप्त, हित सखी से बोलीं– प्रियतम से भी बोलीं (हित सहचरी और लालजी में भेद नहीं है उन्हीं की लीला निर्वाहिका तत्स्वरूपा हित अलीजू श्रीकृष्ण ही हैं) कि जिस रस में समस्त रात्रि अवगाहन किया है उसका वियोग नहीं चाहती उसी रसमें अवगाहन करतीही रहूँ(यह अति सूक्ष्म-संयोगात्मक भावना है कि उद्भट रतोपमर्द्दित कामिनी उस रस को छोड़ नहीं सकती, लौकिक काम केलि में खण्डित हो जाने के कारण असमर्थ दशा में, परिश्रम के कारण भौतिक देह साथ नहीं देता है तब रस छूट जाय पर दिव्य विग्रहों में जहाँ खण्डित होने का नाम भी नहीं है 'आत्मारामोप्य खण्डित:' परस्पर सुख प्रदान की होड़ में सुखी होने के धर्म में रस परित्याग होता नहीं इसी से रास के अन्त में 'अनिच्छन्त्यो ययु र्गोप्य:' कि गोपियाँ अपनी इच्छा से न गईं भेजी गईं) कि जब मैं (हित सखी) कभी–कभी वचन कौतूहल का आस्वादन करने लगती थी कि यमुना किनारे फलफूल तोड़ने जाऊँ, कि नये-नये फूलों से आभूषण गजरे बनाकर लाती हूँ आपको सजाऊँगी ,और थोड़ा चली भी जाती थी तो ऊँचे स्वर से श्रीप्रियाजी

बोल उठतीं 'कृष्णामृतं चल' मुझे नहीं सजना है मुझे इसी दशा में इसी रस में डूबे रहने में सहयोग दे।

श्रीकिशोरीजी में किशोरावस्था के साथ ही समस्त विद्या कलादिक विदग्धता के गुण प्रकट हुए, कहने मात्र से शब्द का, श्लेषार्थ (जुड़े हुए अर्थ) और भाव जान लेतीं, सबके संकेत (इशारे) के दूसरे नाम जो अपने कार्य निर्वाहक और रस पोषण में सहायक, अनुकूल होते, उनको बोलतीं, और भी विशेष गुण यह कि परम करुणा और कृपा मय सहज स्वभाव के कारण चित्त द्रवित (पिघला) रहता था (सहज स्वभाव परयो नवलकिशोरीजू को मृदुता दयालुता कृपालुता की राशि हैं) तो कर्कश वचन सुनने से ही डरती, परम सुकुमारी, समस्त दुःखों को देने वाले यमराज की बहिन यमुना, इस भाव को प्रकट करने वाले नाम को लेती नहीं, यमुना, जमना बोलती ही नहीं। कभी भी एक पलक का भी वियोग नहीं होता था ऐसा विचित्र प्रेम था। भानुजा होने से श्रीराधा का और यमुना का परस्पर सखी भाव भी है ! (यमुना, सूर्य पुत्री होने से भानुजा है और श्रीराधा, श्रीवृषभानु पुत्री है, जब वृष राशि पर भानुसूर्य आते हैं तब बड़े प्रखर होते हैं वृष राशि पर बैसाख, ज्येष्ठ मास में आते हैं तब उनकी प्रभा सर्वश्रेष्ठ होती है तो श्रीराधा वृष के भानु की प्रभा जैसी सर्व श्रेष्ठ हैं, सूर्य के गुण हैं ताप और प्रकाश, ये गुण राधा में भी हैं विरह ताप और गुणों का प्रकाश, और सूर्य प्रभा जैसे श्याम घन से सम्बन्ध रखती है वैसेही ये भी घनश्याम से अति सम्बन्धित हैं) यमुनाजल में स्नान, पान, क्रीडा आदि से सुख प्राप्त होता है. यमुना सुख देती है तो दास्य भी है सुख देने के कारण दासी भी है। प्रियतम का जैसा नाम है श्यामवर्ण है और पारस्परिक कलह को मिटाने में सहयोग दे कर सहचरी भी बनती है (यमुना का नाम कालिन्दी

भी है ये 'कलिकलहं यति खण्डयति' इस व्युत्पत्ति से कलह को भी मिटाने वाली प्रेमास्पद, प्रेम पात्र सहचरी हैं—एक बार परस्पर मनो मालिन्य होगया तो श्रीराधाजी मान करके बैठ गईं, श्यामसुन्दर मनाते-मनाते थक गये बड़ा श्रम हुआ, तो श्री यमुनाजी में डूबकर प्राण त्याग करने गये और यमुनाजी से कहा 'हे कालिंदीत्वयि मम निधि: प्रेयसी क्षालितोऽभूत' कि तुम्हारे पास मेरी आराध्या राधा का अङ्गराग है उसको हृदय से लगाकर जीवन का उत्सर्ग करूँगा निर्विशेष रूप में, आत्माराम रूप में अवस्थित रहूंगा—'लीला विहारी आत्मा राम रूप में भी श्रीराधा का अङ्ग राग पास में रखते हैं इसीलिए, निकुञ्ज के श्रीकृष्ण सर्वोत्कृष्ट और प्रथक ही हैं जिनका परिचय गीता में—'यो मामेव मसंम्मूढो जानाति पुरुषोत्तमं'—अर्जुन को भी इन्हीं की शरण में जाने की आज्ञा दी थी—'तमेव शरणं गच्छ' शरण जाने के लिए तो तीन हैं 'बुद्धौशरणमन्विच्छ'–मामेकं शरणं व्रज, पर पूरी तरह से 'सर्व भावेन भारत' तमेव शरणं गच्छ' श्रीयमुना ने कहा आप अपना शृङ्गार मुझे दें मैं आपका जैसा रूप बनाकर मान भंग करूँगी, तब श्रीयमुना श्रीकृष्ण जैसी बनकर मान दूर करने गई तो उन्हें देखकर श्रीराधा को हँसी आ गई कि रूप तो वैसा ही धारण किया है पर वैसा हृदय कहाँ से लाओगी, हँसी आगई तो मान भंग हो गया तब से यमुना का नाम पड़ा कालिन्दी, कलह का दमन करने वाली) श्रीकृष्ण जैसा रूप शृङ्गार होने से 'कृष्णा कृष्णयोरभेद:' यमुना भी प्रियतास्पद सहचरी हुई।

तदमृत सलिल निमज्जन क्रीडैव परम इष्टा—इस पंक्ति में तत् शब्द से लालजी ही हैं वे ही अमृत सलिल रूप में श्रीराधा के लिए परम इष्ट हैं तो श्रीकृष्णामृत सलिल में निमज्जन करना ही है (एक बार निकुञ्ज में श्रीकृष्ण अकेले ही विराजमान थे तब वैष्णव शिरोमणि शिव उनके पास जाकर बोले कि आज आपको एक अश्रुत

पूर्व गीत सुनाने आया हूँ जिसका नाम 'गोपी गीत' है यह आपने इस लिए नहीं सुना कि तव आप निर्विशेष रूप में अवस्थित थे आप श्रीराधारानी तथा समस्त व्रज सीमन्तिनीयों को छोड़ गये थे तब सबने मिलकर गीत रूप में एक अपूर्व भाव व्यंजना अभिव्यक्त की थी, श्यामसुन्दर बोले तो अवश्य सुनाओ, गोपीश्वर ने उसी भाव में ओत-प्रोत होकर उसी स्वर में गोपी गीत सुनाया, श्रोता वक्ता दोनों के ही नेत्र भावावेश में बन्द थे, उसी गीत को सुनकर श्रीकृष्ण तो द्रवीभूत हो गये, जलके रूप में बन गये।

'श्रुत्वा तद्गोपिकागीतं गोपिका स्वर भूषितं, चकितः कम्पितः द्रवीभावं समागत'—शिवजी ने सुनाने के पश्चात् नेत्र खोले तो सामने लालजी नहीं दीखे, बड़ी उलझन में पड़े तो शब्द हुआ कि मैं द्रवित हो गया हूँ इस मेरे जल रूप को तुम हृदय में धारण करो तब शिव ने सूर्य रूप से वही कृष्णद्रव, प्रेम द्रव, हृदय में धारण किया और फिर लोक कल्याण और लीला प्राकट्य के पूर्व वह जल छोड़ दिया, तभी से श्रीयमुना सूर्य पुत्री नाम से प्रसिद्ध हैं 'जयति पद्मवन्धोः सुता' सूर्य और शिव एक ही हैं (उभयोरन्तरं नास्ते आदित्यस्य शिवस्य च) श्रीयमुना श्रीकृष्णा ही है इसीसे श्रीराधा की परम इष्टा है अतः केलिश्रम निवर्हण के लिये केलिश्रमापनोदन के लिये ऐसा कहा गया है 'कृष्णामृतं चल विगाढुम्'। कृष्णा श्री यमुना परम ममता और परम स्नेहमयी है (ममता और स्नेह भाजन है) अथवा कृष्णा के आवेश में, भावावेश में, कृष्ण रस के प्रतिरूढ़ होने के कारण जो आवेश हुआ उससे विवश होकर कृष्णामृतं ऐसा निकल गया (रसावेश में प्रिया प्रियस्य प्रतिरूढ़ मूर्तयः' हो जाती है और 'कृष्णोऽहं पश्यत गतिं' विवशता से कह जाती है। अन्दर जो एक प्रेमास्पद छुपा बैठा है उसके रसावेश में खो जाती हैं और गोपन शीला गोपी, भी छुपाने में असमर्थ हो जाती है वह बाहर प्रकट हो

हो जाता है तो सब क्रम विगड़ जाता है नेम नहीं निभाता 'चन्द्रसखी या व्रज में वसिकें नेम निभायो कौन' मुग्धा का नेम नष्ट होकर प्रगल्भा रूप हो जाता है (रास में 'नय मां यत्र ते मनः' कहकर एक विचित्र क्रम उपस्थित किया जिसके कारण लालजी को अन्तर्ध्यान होना पड़ा) यह रस रीति शारदा के लिए भी समझना कठिन है इस रस रीति को समझने में शारदा की भी मति कुण्ठित हो जाती है पर यह रस रीति जिस तरह रस पोषण करती है और रस के साथ भाव का सम्मेलन करती है वह समझ ने योग्य है। (यह रीति रास प्रकरण में देखनी चाहिये)

रसकुल्या टीका

प्रिय पक्षे, अमृतं अधराद्यासवास्वादं, नित्य परमाप्यायन जीवातूत्सवरूपममृतं विगाढु मिति। प्रियेण सहकरि-करिणो वद्विगाहनार्थं वा सखि यूथगतांजलिसेचन मज्जन तरणादि क्रीडार्थश्च वृषभानुसुते इति वाल्यत एव स्वस्य तत् क्रीडानुगति गतिरेव वक्ष्यति च 'कदा वा खेलंतौ बृजनगरवीथोषु हृदयं हरंतौ' इति 'कार्यो विवाहोत्सवः' इति च अतः स्वयं तल्लालन शोलाभिज्ञा श्रीमत्यपि कदा कदाचिदप्युल्लंसित तद्वचना ततएव मिथोनर्म्म व्यवहार सिद्धिः। कदेति सेव्यसेवक भावेनगौरवार्थं दत्ताधिकारेपि दास्या प्रसादार्थं अँतरङ्गत्वेपि नित्याभिलाषविरतिदर्शनार्थं च, परिहासस्तुदास्ये सख्यापरमोत्तम भूमिकारोह निष्ठोहि। अथवा रसद केलीत्यत्रार्थान्तरम्। इत्थं विहसनानन्तरं प्रतिज्ञातं यमुशतश्चलिता मार्गकेलि कदम्बाटव्या (कदम्ब वाटयां) वा केल्यार्थकदंम्बवाटयां कृष्णेङ्गितमिलितालीकृत

विविधप्रशंसाहेतु निरीक्षणकौतुकं प्रविष्टागतिं प्रतीक्षमाणेन प्रियेण सहरसदसंङ्गमो अकस्माज्जातस्तदा हितसखोप्रार्थयति एतादृश दम्पतिविलासावलोकनानन्द मानं कदा प्राप्स्ये ।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

कृष्णामृतं, पद में कृष्ण शब्द से प्रियतम अर्थ स्वीकार करके, कृष्णामृतं में अमृत शब्द का अर्थ अधरामृत ही आसव होगा जिसका स्वाद, नित्य निरन्तर परम तृप्ति की आशा देकर, जीवन धारण कराने में, जीवित रखने में उत्कृष्ट यज्ञ (उत्कृष्ट यश उत्सव) के फल का भागी बनेगा, ऐसे अमृत में अवगाहन करने के लिये चल। (प्रियतम श्यामसुन्दर के अधर में रहने वाला ही अमृत है देवभोग्यामृत या कथामृत, चरणामृत सब उस अधर से नीचे हैं पर वह अधरामृत अधर रूपी खजांची के पास है जिसका स्वभाव लोभी है खजांची को लोभी होना चाहिये नहीं तो खजाना खाली कर देगा तो 'लोभआदरदच्छात्' अधरामृत पान करने का लोभ (वस्तु में साहचर्य के कारण) बढ़ता ही है तो यह आसव हो गया पानेच्छा बढ़ाना आसव धर्म है, तो ये स्वाद (व्यसन) बुरा नहीं है इससे विप्रयोग जन्य प्राण वियोग रोग पर प्रतिबन्ध लग जाता है। आसव पीते हैं तृप्ति और शान्ति के लिये किन्तु बढ़ती है अतृप्ति और अशान्ति ये छोड़ दें तो प्राण चले जायें अतः प्राण नहीं जायेंगे इस आशा से पीते हैं पर तृप्ति नहीं होती तो न छोड़ सके हैं न पीते हैं—यह 'तप्त इक्षु रस पान न्याय है' गरम ईख का रस न निगला जाता है न थूका जाता है अधरामृतास्वादासव अथवा आसवास्वाद भी ऐसा ही है जिसका पान करने से पिपासा बढ़ती है न पान करने से प्राण जाते हैं तो प्राण रुके रहेंगे इस आशा से पान करना पड़ता है)।

अथवा 'करीन्द्रवन सम्मिलन्नवकरिण्युदार क्रमा:' परम कामी करि, हाथी के साथ, करिणी हथिनी की तरह (निकुञ्ज नामक श्रीकृष्ण वृन्दावन कलभ नाम से विख्यात है) जल में अवगाहन, जल में केलि विलास करने के लिए. अथवा सखि समूह के साथ क्रीड़ा में परस्पर अंजलि में भर-भर कर जल उलीचने के खेल के लिये, डुबकी लगाने, तैरने आदिक खेल के लिये कहा कि कृष्णामृत में अवगाहन करने चल। वृषभानुसुता इस शब्द से वाल्यावस्था की ओर ध्यान जाता है कि वाल्यकाल से ही खेल में मन था। भावुकों की अभिलाषा रही कि बृजनगर की गलियों में खेलते हुए, मन मोहक रूप की झांकी कब होगी' विवाहोत्सवादि कार्यों में भी कब झांकी होगी अत: स्वयं लालन-पालन करने वाली, मन की इच्छा भी जानने वाली कीरत रानी राधा के बात न मानने पर भी कोमल व्यवहार करतीं, इच्छा ही पूरी करती। जैसा राधा चाहती करतीं? 'मानं कदा' पद में कदा (कब) शब्द का अर्थ यह बताता है कि सेव्य सेवक भाव से दासी का मान बढ़ाने के लिये, जिसे अविकार के कारण प्रमाद होना सम्भव है और अन्तरंग दासी होने से (अन्तरंग होने पर भी) नित्य अभिलाषा के प्रति विरति (अरुचि) हो जाय परिहास का प्रसंग तो दासी के साथ, सख्य सम्बन्ध से परमोत्तम भूमिका पर चढ़ाने के कारण ही सम्भव माना जा सकता है।

अथवा, रसद केलि, इस शब्द का दूसरा भी अर्थ स्वीकार किया जा सकता है जो परम गुप्त है केवल रसिक मण्डली ही इसको समझ सकती है। इस प्रकार एक हँसी सी करके (द्वयर्थक शब्द बोलने से) समझा भी गया, हित सखी समझ गई कि ये जिस लिये केलि कदाम्बटवी की ओर चली हैं, केलि के लिये कदम्ब वाटिका

में गई तब वहाँ पहले ही लालजी ने अपनी 'सखाई हुई सखियों को इशारा दे रखा था कि तुम वहाँ जाते ही प्रिया की प्रशंसा कर देना कि जीत तुम्हारी ही होगी और सखियों को भी तो ये रतिरण देखने की इच्छा थी, तो प्रियाजी के प्रवेश करते ही वहां सखियों ने बढ़ावा दे दे कर तैयार किया, जो पहले ही वहां छुपी हुई थीं, श्रीप्रिया जी जैसे ही कदम्ब वाटिका में गई, लालजी वहां छुपे हुए बाट देख ही रहे थे, बस पकड़ ली और प्रियाजी का लालजी के साथ अकस्मात (एकाएक) रसद सङ्गम होने लगा और हित सखी उस आनन्द को देखने लगीं—(हित सखी यह सब कल्पनामय चित्र बना रही है) हित सखी हृदय में बैठी प्रिया से कह रही है कि ऐसा दम्पत्ति विलास दर्शन जन्य आनन्द मैं कब देखूंगी और इस लीला के अन्त में कृतज्ञता पूर्वक प्रिया मुझ से कब कहेंगी कि यह आनन्द तुम्हारी सहायता से प्राप्त हुआ तब मेरा सबके आगे मान बढ़ेगा ऐसा अवसर मैं कब प्राप्त करूँगी—ये अभिलाषा है। इस अभिलाषा को पूर्ण कराने वाली भावना (रात्रि) रजनी सजनी आवे तो, कृष्णामृत में अवगाहन हो।

रसकुल्या टीका

यद्वा तत्र अकस्मात् प्रियेमिलिते भुजापीडं परिरम्भमाणे च सति सारोषं हसति स चकित हसितयाप्रियया तदानीं प्रणयकोपेनोक्त साधु साधु सखिरिव संङ्गिनी परिपन्थिन्यसि प्रियतमेङ्गित मिलिताऽसिकितव प्रशंसित वंचकत्वप्राप्तोत्कर्षाऽसीत्येवं भूतकेलि कदम्बजातं सख्यरसात्मकं मानं वा तत्रत्य कदम्बपुष्पेण पतितेन वा वचितेनताडनात्मकं, पूर्ववत् कमलताडनवन्मानं, ममत्वेतदेव परमपूजनं

वा प्रियेण निजाऽभिमत पूरणहेतुक प्रशंसनं, प्रसादानत दृष्टिसूचितं, त्वत्सहायप्राप्तौ ताहृशानन्दोहमितिमानं। अथवा इत्थं मया हसितं तदा श्लेषार्थेन रात्रिगत सर्वरसद-केलिः स्फुरिता तदा प्रेमरसमूर्तौ रोमाञ्चितान्यञ्चितानि यथा कुदम्बपुष्पेषु सूक्ष्मकेसराः कंटकिता इव दृश्यमाना-भवन्तीति रोमाञ्चोपमा कदम्बपुष्पा इव यत्र तत्र काव्ये-प्रसिद्धा यथाहवृन्दावनशतके—'वाचे वाद्भुत दम्पती नव नवानंगै कुरङ्गाकुलौ। गौर श्यामल दिव्य मोहन तत् कैशोर एव स्थितौ। श्रीवृन्दावन मण्डलेतिनिभृत श्रीकुञ्ज पुंजे मुहुः। प्रेमौत्कण्ठ्य भरात्स्मरामि पुलकोद्भेदैः कदम्बायितौ ॥१॥

अतः उच्यते रसदकेलिहेतुक कदम्बो रोमाञ्च वद्भास मानत्वेनसखिभिः संङ्केतितं वा तेषां जातं समूहमपि तदेवार्थकं मानमितिरसोद्दीपक यथार्थ प्राप्तस्ववचनोत्कर्षं साध्वीमदुक्ति, चातुरीसिद्धा, इत्येवं हर्षं कदा प्राप्स्ये यथा वाणोत्कर्षो लक्ष्यवेधस्ताहृश रसोक्ति ताहृश रतिहासाश्रु रोमाञ्चादि सात्विकभावोद्गम एव वाक्योत्कर्ष इति। अथवा मानं मनसि प्रसह्यातद्रोमाञ्च गोपनच्छलेन सख्य-कौतुकेन परिष्वंगात्मकं मानमिति—'प्रीता परिष्वजतु मां वृषभानु पुत्री' इत्युक्तमेव ॥१४॥

रसकुल्या टीका का हिन्दी अनुवाद

अथवा, उस कदम्ब वाटिका में अकस्मात प्रियतम के मिलने पर और दोनों बाहुओं में भरकर जोर से आलिंगन करने पर, भाव में भरकर हँसने पर चकित होकर (चौंककर) हँसती हुई मेरी

प्रिया राधा जब प्रेममयी गुस्सा में कहें अच्छा-अच्छा सखी की तरह सङ्गिनी होकर विरुद्ध चली (प्रतिकूल होगई) प्रियतम श्यामसुन्दर के इशारे पर चलने लगी—अन्दर से उनके साथ मिलगई) छलिया की प्रशंसा से छलना सीख गई और ठगी में अपना गौरव मानने लगी। इस प्रकार की भावमयी केलि परम्परा, जिसमें सख्य रस की प्रधानता होगी, उस मान को कब प्राप्त करूँगी।

अथवा, वहां पड़े हुए कदम्ब पुष्प से मुझे मारकर (उस स्थान के कदम्ब के फूल से मुझ को मार कर) जैसे पहले कमल का फूल मारकर (कमल से मुझे मारकर) मेरा मान, सन्मान, पूजन किया, ममत्व में, अपनी सखी के साथ इसी प्रकार का व्यवहार ही मान सम्मान होता है (ऐसी क्रिया मैत्री की सूचक है) ऐसा मान (सन्मान) कब प्राप्त करूँगी। लालजी के द्वारा भी सन्मान (उत्कर्ष) कब प्राप्त करूँगी। लालजी की इच्छा पूरी होगी, उनका मनोरथ सिद्ध होगा तो वे मेरी प्रशंसा करेंगे, प्रसन्न होकर कृतज्ञता सूचित करने के लिये दृष्टि नीची करेंगे कि तेरे उपकार के भार से मेरी आँखें झुक रही हैं, यह प्यारा उपकार आँखों में (दृष्टि में) रखा है, नजर में है और इसका बदला न चुका सकने के कारण लज्जा से आँखें नहीं मिला सकता हूँ आभारी हूँ ! कि तेरी सहायता पाकर इतना बड़ा आनन्द प्राप्त कर सका मेरा उत्कर्ष ही मान है।

अथवा, प्रिया ने कहा 'कृष्णामृतं चल विगाढु'' तो मैंने हँस कर उत्तर दिया कि रात होने दो। इस तरह हँसी करने पर, श्लेषार्थ के द्वारा (एक शब्द में से निकलने वाले अनेक अर्थों से) रात में हुई या होने वाली सभी रसोत्पादक रसमयी लीलाएँ पूरी सामने आ गई तो प्रेम रस की मूर्ति श्रीराधा के अङ्गों में रोमोद्गम हुए, रोमाञ्चों से भर गई कि समस्त श्री अङ्ग में रोमाञ्च हो गये,

जैसे कदम्ब पुष्प में झीने झीने केशर जैसे तन्तु होते हैं वे खड़े पतले काँटे जैसे दीखते हैं रोमांञ्चों की उपमा काव्यों में प्राय: कदम्ब पुष्प से ही देते हैं कि कदम्ब के फूल में खड़े तन्तु जैसे रोमाञ्च हो गये, ऐसा एक उदाहरण श्रीवृन्दावन शतक में भी है 'कि श्री वृन्दावन में एक अद्भुत नव दम्पति की जोड़ी है (जाया और पति है) एक गौराङ्गी नव किशोरी हैं तो दूसरे नीलेन्दीवर सुन्दर नव किशोर हैं, इस मोहन मोहनी की जोड़ी का दर्शन, निभृत निकुञ्जों में अनेक बार हुआ। उन्हीं का, प्रेम और उत्कण्ठा से, स्मरण करके मैं कदम्ब पुष्प जैसा रोमाञ्चित हो जाता हूँ। कि उन नव दम्पति का स्मरण होते ही मैं रोमों से लदा चलता फिरता कदम्ब बन जाता हूँ। इसीसे यहां कहा है कि रसमयी केलि विलास स्मृति पथ पर आई कि रोमाञ्च हो गये। अथवा, मेरे इस प्रकार कहते ही कि 'ऐसा समय आने दो जो रंजन कराकर मुझे भी दर्शन करावें) आपकी इच्छापूर्ण करने वाली योगमाया रंजनी शक्ति प्रकट हो 'रजनी सखी यावदेति' कि बस केलि कदम्ब (जिसके नीचे केलि होनी थी) खिल उठा, सारा रोमाञ्चित जैसा प्रतीत होने लगा। प्रिया-प्रियतम सत्य सङ्कल्प हैं उनकी इच्छा हुई कि केलि विलासोपयोगी उपकरण तैयार, आज्ञा देने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती है और नित्य लीला के सभी वृक्ष, लता, कुंज, निकुंज भी कायव्यूह रूप नित्य चिन्मय हैं तो केलि कदम्ब भी दिव्य है अत: श्रीप्रिया की इच्छा होते ही सज-धजकर तैयार हो जाते हैं)।

अथवा, केलि कदम्ब का पुष्प- रोमाञ्च युक्त दीखने लगा, अथवा सखियों के इशारे मात्र से समस्त कदम्ब वन, पूरी कदम्ब वाटिका तथा कदम्ब के झुण्ड के झुण्ड रोमाञ्चित हो गये, इस परम रसोद्दीपक प्रत्युत्तर से सारा कदम्ब वन रोमाञ्चित हो उठा, कि जड़ों में भी इस भाव व्यंजना ने रोमोद्गम प्रकट कर

दिये, कैसा उत्तर दिया यह बोलने वाली का बड़ा उत्कर्ष है बस इससे श्रेष्ठ मान और क्या होगा। रसोद्दीपक शब्दावली ने उचित सन्मान पाया, वास्तव में अपने वचनों का, जैसा उन्हें उत्कर्ष मिलना चाहिये था, सन्मान हुआ। मेरी उक्ति बहुत अच्छी रही, चतुरता की छाप पड़गई, इस प्रकार से हर्ष कब प्राप्त करूंगी। जैसे बाण का उत्कर्ष (बड़ाई) लक्ष्य वेधने से होती है इसी प्रकार शब्द बाण की भी महिमा इसीमें है कि वह मुख से छूटते ही प्रशसा पात्र बने। तो ऐसी रसमयी उक्ति (बात) जिसने हृदय को गुद-गुदाकर हंसी, (आनन्दोत्थ) आनन्दाश्रु रोमाञ्च आदिक सात्विक भावों को पैदा कर दिया, इससे अधिक और क्या वाक्योत्कर्ष होगा।

अथवा, मान माने, मन में अति प्रसन्न होकर अपने शरीर में उठे हुए रोमाञ्चों को मुझे न दिखाने के लिए (तेरी बात सुनकर इतना आनन्द हुआ है और इतना हर्ष हुआ है कि बस मेरी सखी ने चतुरता की हद करदी तो, प्रशंसा के बदले पुरष्कार देने के हेतु रोमाञ्चित अङ्गों से आलिंगन करके, बाहर फूट निकले हुए आनन्द को सखी के शरीर में लेपन करने के लिए, सर्वस्व भूत परिष्वंग, सर्वोत्तम पुरुष्कार आलिंगन कि जिसके लिये लालजी भी लालायित रहते हैं यह बताने को कि तू मेरी अत्यन्त प्यारी है कि आनन्द से विलीन कर लूं कि रोमाञ्चों को देखकर हित सखी को गर्व न हो जाय कि मैं इतनी बड़ी चतुर हूँ गर्व से अपनी ही नजर लग जाती है, आलिंगन किया) मुझे जोर से छाती से चिपका कर, सखियों के जैसा खेल करके कि खुशी होने पर एक दूसरी को छाती से लगा लेती हैं मैं आलिङ्गनात्मक मान को कब प्राप्त करूँगी। कि ऐसी भावना भी राधिका रति निकुंज मण्डली में प्रचलित हैं— मुझे प्रेम से, प्रसन्न होकर, वृषभानुनन्दिनी हृदय से लगालें ये ही ठीक है, ऐसा मान मिले कि किशोरी मोहे कब अपनायेंगी।

लीला माधुरी

ग्रीष्मऋतु संध्या का समय प्रियाकुण्ड के समीप प्रिया जी की बगीची में श्यामसुन्दर लाड़िलीजी के श्रृंगार के लिए मल्लिका के पुष्पों का चयन करते समय चन्द्रावलि उसी बगीची में मनमोहन के समीप आईं और पूछने लगीं कि प्यारे मोहन आप फूल किस काम के लिए बीन रहे हो आप बोले आज प्यारीजी को फूलन को श्रृङ्गार करने के लिए मल्लिका के पुष्प तोड़ रहा हूँ। चन्द्रावली जी बोलीं हे प्यारे आपने पुष्प बहुत ही अल्प तोड़े हैं पुष्प तो अधिक चाहिये और अब अन्धेरी रात्री आ रही हैं अंधेरे में आप कैसे पुष्पों का चयन करेंगे मैं आपको सहायता करके शीघ्र ही पर्याप्त फूल दे दूँगी कहकर चन्द्रावली जी श्यामसुन्दर के साथ फूल तोड़ने लगीं और हँस-हँसकर बातें करती जा रहीं।

उशीर के बंगला में विराज रहीं वृषभानलली ने चित्रा सखी से कही कि हे चित्राजी अभी तक श्यामसुन्दर फूल लेकर आये नहीं आप हमारी बगीची में जाकर प्यारे को बुलाय लावो रात्रि होने आ रही है प्यारे क्यों न आये देखो चित्राजी वाटिका के द्वार पर पहुंची तो बाटिका में मालती लता के नीचे चन्द्रावली के साथ प्यारे हँस-हँसकर बातें करते हुए पुष्पों का चयन कर रहे हैं यह देखकर चित्रा जी लौट गईं और प्यारीजी के पास जाकर कह दिया कि हे स्वामिनी जी प्यारे तो चन्द्रावलिजी के साथ वाटिका में हँस-हँस कर बातें कर रहे हैं और पुष्प तोड़ रहे हैं। यह सुनकर प्यारीजी को विरहाभास हो गया मानकर विराज गईं ललिता जी प्यारीजी के मान को देखकर विचारने लगी कि इस समय प्यारे आ भी जावेंगे तब भी प्यारी जी अनुकूल नहीं बनेगीं। और प्यारीजी का

चित्त व्याकुल हो गया है विरह ताप और ग्रीष्म का ताप दुगुनों ताप कैसे शीतल हो । सहचरियों में मुकुटमणि श्रीललिता जी अपने मन में विचार कर रही है कि ऋतुग्रीष्म को ताप एक दूसरा लाल के बिना उनके वियोग कौ ताप ये दोनों दूर होवें तब हम सहचरिगण को शान्ति और आनन्द हो । इस समय आप (प्रिया) तो मानकर बैठी इनको अभिसार भी न बने और लालजी को यहाँ ले आवें तब भी अमर्ष से प्रिया बोलेगी नहीं मान में नायिका झुकजाय तो रस को भंग है प्रेम तो सदा वाम धर्मी है अब ऐसी कोई लीला रची जावे जिसमें दोनों को मिलन हो जावे न लाल को ही मनाने को श्रम करनो पड़े न प्यारी को नीचो होनो पड़े सहज में मिलन होकर प्रिया की अनुकूल्यता पूर्वक प्रेम लीला बन जावे दोनों को परम सुख हो जावे जिससे हम सबको महा सुख की प्राप्ति हो जावे । इस समय लाल तो प्रिया की सेवा ही में सलग्न हैं इसलिये निरपराधी बिना अपराध ही भ्रम के कारण प्रिया मान कर विराजी है बिना अपराध दण्ड मिले यह भी अन्याय है तीसरी बात चन्द्रावलि जी की है चन्द्रावलि जी निर्दोष हैं वे तो श्री प्यारीजी की सेवा के लिये सदा लालायित ही रहती हैं ।

इस समय प्यारीजी की सेवा में तत्पर हैं लालजी की सहायक होकर सुन्दर सुन्दर पुष्प राशी के चयन में लगी है जिनसे प्यारीजी को पुष्पों का शृङ्गार बनेगा इसलिए चन्द्रावली जी की इस सेवा के उपहार में अधिक सेवा चन्द्रावलि को भी मिल जावे ऐसी रचना हम करें यह विचार कर लीला को निश्चय मन में करके वृन्दासखी को नेत्रों से संकेत द्वारा लीला के लिये तैयारी करने की अनुमति दे दी फिर ललिताजो ने रङ्गदेवीजो को भी नेत्रों ही से मूकभाषा में संकेत कियो कि आप लालजी के समीप

जाकर प्रियाजी के अकारण मान हो जाने की सूचना देकर लाल को समझा देवें कि आप मानसरोवर पर पधारो वहाँ जल क्रीड़ा के बिहार में प्यारीजी का मान दूर करें और परमानन्द बिहार सुख बिलसैं यह दोनों कार्य संकेत द्वारा ललिताजी ने सम्पन्न कर शान्त भाव से ललिताजी विराज गईं। प्यारीजी का विरह ताप बढ़ने लग्यो अब प्यारीजी श्रीहित अलि से बोलीं कि हे सखि 'कृष्णामृतं विगाढुं चल' ताप से व्याकुल चित्त मेरा हो रहा है अतः कृष्णामृत (यमुना जल में) अवगाहन करने को ले चल। हित सजनीजी प्यारीजी के द्वयर्थक श्लेष वाक्य को समझ गई प्यारीजी के शब्दों का वाक्यार्थ तो यमुना में डुबकी लगाने को केवल होता है किन्तु आशयार्थ (भाव) तो प्यारे श्रीकृष्ण के रस में अवगाहन करने को ले चल विरह-असह्य हो गया है तब हित सजनीजी ने ललिताजी को संकेत से समझाया और ललिताजी स्नानकी सोंज और ग्रीष्म बिहारोपयोगी वस्त्रालंकार लेकर साथ हो गई श्रीहित सजनीजी और श्रीललिताजी प्यारीजी को बंशीवट होते हुए यमुना का पुल पार कर उस स्थान पर ले गई जहाँ वृन्दा सखी ने एक सुन्दर सरोवर की रचना करके सब सोंज सजा रक्खी थी। वहाँ प्यारीजी को स्नानोचित वस्त्राभूषण धारण कराके दोनों सहेलियाँ प्यारीजी को करग्रहपूर्वक यमुना के मणिमय घाट पर ले आई और यमुना में अवगाहन करने को प्यारी जल में कण्ठ विमग्न हुई दोनों सखियाँ प्यारी से कुछ दूरी पर जल में खड़ी हैं। रात्री का आरम्भ हो गया है ग्रीष्म ऋतु की सुखद रात्री है सरोवर के तटवर्ती फूलों के भार से झुकी हुई सुगन्धित तरु शाखाओं से सुवासित सुमन की वर्षा हो रही है शुक सारिका पारावत पक्षी कुल का विवाद हो रहा है इस जल विहार के दर्शनार्थ सखि कुल पक्षियों का रूप धारणकर कदम्ब वृक्षों पर विराज रहा है अब लाल

रङ्गदेवीजी द्वारा संकेत के अनुसार सहचरी रूप धारण करके उस सरोवर के एकान्त स्थल में (एक कोण में) आकर जल में डुबकी लगा ली और जल के भीतर-भीतर तैरते हुए प्यारीजी के समीप आ पहुँचे हैं और धीरे - धीरे प्यारीजी के चरणों में आकर अपने मुखारविन्द में प्यारीजी के पादांगुली (अंगुष्ठ) को लेकर चूमने लगे अमृत पान का सुख लेने लगे कि प्यारीजी चौंक पड़ीं और सखिन से कहने लगीं कि सखियो आवो दौड़ो मेरे चरणामृत के लोभी किसी जलचर ने मेरे अँगूठे को चुम्बन किया है दौड़ो-दौड़ो छुड़ावो श्रीहित सजनी बोली—प्यारीजी घबरावो मत कोई जलचर नहीं है हम पहरा लगा रही हैं आप सुखपूर्वक कृष्णामृत में अवगाहन करो इतने में प्यारे श्यामसुन्दर सहचरी का वेश धारण किए जल से ऊपर होकर प्यारीजी का परिरंभन किया प्यारी-प्यारे हैं यह देखकर मुस्करा गई सहज ही मान भङ्ग होकर दोनों जला-जली आदि जल क्रीड़ा करने लगे इस सरोवर में मान टूटने के कारण इस सरोवर का नाम सखियों ने मानसरोवर रक्खा।

पद—राग धनाश्री

मान करि मानसरोवर खेलति।
ग्रीष्म ऋतु रजनी सजनी संग, विरह ताप पग पेलति ॥
बुड़की जल ही जल आये, हरि सहचरि को वपु धरि।
थाह लेत ही जहाँ राधिका, धाई धरी आंको भरि ॥
परिरंभन चुंबन पहिचान्यो, नागरि जान्यो नागर।
इहि विधि जलथल विहरत छलबल, 'व्यास' प्रभू सुखसागर ॥

(व्यास वाणी)

यहाँ विहार की लीला हो रही है और चन्द्रावलीजी विशाखा जी और चंपकलताजी के साथ उस मानसरोवर के शृङ्गार कक्ष में आकर प्रिया-प्रीतम के लिये पुष्पों के आभूषण पुष्पों की साड़ी पुष्पों की कंचुकी और वेणी आदि की रचना कर नख से सिख तक के वस्त्राभूषण अलंकार तैयार किये। वृक्षों पर चढ़कर बैठी पक्षी रूपमें सहचरी जल क्रीड़ा आदि के गान मधुर स्वर पूर्ण सरस कण्ठ से गा रही हैं मधुप (भँवर) हंस शावक (मराल) मोर पिक शुक आदि मनोहर पक्षीगण विहर रहे हैं उनको युगलकिशोर देख-देखकर फूल रहे हैं। तरुलता इन (प्रिया-प्रीतम) को निरख-निरख कर फूलों की वर्षा करके फूल रहे हैं पुष्पों के गुच्छों पर उड़-उड़कर कुसुम पराग उड़ा रहे हैं यह सुगन्धित पुष्प पराग उड़कर मानसरोवर पर मेघ की तरह छा रहा है इस अनुपम शोभा को निरख कर दोनों युगलकिशोर मधुर स्वरसे सारङ्ग राग मानसरोवर के तट पर चारों ओर झीने वस्त्रालंकार से सुसज्जित हुई सखीगण नानाविध बाजों के स्वर मिलाकर स्वर से गा रही हैं। इस प्रकार परमानन्द में डूबकर और मानसरोवर के अमृत जल में डुबकी लगा - लगाकर विविध प्रकार की जल क्रीड़ा करके घाट पर आये। हित सजनी जू साम्हने कमल के दो पुष्प लेकर खड़ी हैं एक पुष्प तो विकसित है दूसरा कमल पुष्प मुकुलित (बन्द) है स्वामिनीजी ने हितसखी के हाथ का मुकुलित पुष्प छीनकर मन्द-मन्द मुस्कराती हुई प्यारीजी ने हित सजनी के पीठ पर एक पुष्प का हलका-सा प्रहार और ललिताजी के पीठ पर एक प्रहार करती हुई बोली कि तुम बड़ी चतुर हो यह विद्या तुम किन गुरुओं की पाठशाला में पढ़कर आई हो सुनकर ललिता बोली प्यारीजी हमने यह विद्या तो वृषभानुलली लाड़िली प्यारीजी की पाठशाला में सीखी है गुरु दक्षिणा तो देना

शेष ही है यह सुनकर प्यारे प्रीतम दोनों मुस्करा गये। इस तरह केलि कदम्ब जातं मानं कदा लप्स्ये की वाञ्छापूर्ण हुई। सखियों ने अंग अंगोछकर द्योत वस्त्र दोनों को धारण कराये और शृङ्गार भवन में पधराये वहाँ दोनों (युगल किशोर राधा और बल्लभ दोनों) का पुष्पों का शृङ्गार किया विविमणि युत आभूषण धारण कराये रास मंडल और शय्या मंदिर को सजाया मधु पूरित स्वर्ण के पात्र शय्या मंदिर में रक्खे पुष्पों की मृदु कलियों से शय्या रची, इस समय की लीला को देखकर स्वामिनी की दासी विशाखा सखी मधुर स्वर से बीना के तार मिलाकर झंकार युक्त मुखरित हो गान करने लगी।

राग सारंग

रति-रस सुभग सुखद जमुना तट।
नव-नव प्रेम प्रगट वृन्दावन,
विहरत कुंवरि नागरि, नागर नट॥
शीतल तरल तरंग अंबु कन,
वरखत पद्म-पराग पवन वर।
कुसुमित अमित कुसुम-कुल परिमल,
फूलत युगल किशोर परस्पर॥
विविध विलास रास परमावधि,
गावति मिलि दोऊ रीझति अति।
मधुप, मराल, मोर, खञ्जन, पिक,
विथकित अद्भुत कोटि मदन-रति॥
कुम कुम कुसुम शयन मंजुल मृदु,
मधु पूरित कंचन मय भाजन।

रजनी मुख सनमुख दल साजत,
सुभट न जूझत लाजन ॥
अति आतुर कंचुकी बंध खोलत,
बोलत चाटु बचन रचना रचि ।
नेति नेति कल बोल स्रवन सुनि,
चरन कमल परसत मोहन लचि ॥
इहि विधि करत विहार मगन दोऊ,
पोषत रति सुख सागर ।
'व्यास' ललित लीला ललितादिक,
देखत रसिक उजागर ॥६६७॥

(व्यास वाणी)

इस तरह लीला करते देख सखियों के मन में पावस ऋतु की लीला सुख सरसावन दोनों युगल सरकार को वर्षा ऋतु के सुख को दिखाकर परम सुखी देखने की इच्छा हुई। इच्छा होते देर लगी किन्तु वृन्दा सखी को वर्षा ऋतु को लाने में विलम्ब हुआ श्याम घन घोर घटा नभ में छा रही है मोर मोरणी हरी हरी द्रुम पर नाच रहे हैं इन्द्र वधू मरकत मणि सम सुशोभित हरी द्रुम पर कतारबद्ध चल रही हैं मेघ मंडित आकाश में विद्युत (दामिनी) दमक रही है। नन्ही नन्ही बूँद अंबुकी झलक रही है प्यारी जी नृत्यलीला रच रही हैं लाल वेणु बजाते हुए गा रहे हैं कोमल कंचन रेणु मंडित यमुना पुलिन सुहावनो लग रह्यो है यमुना जी में नलिन कमोदनी विकसित हो रही है मंद सुगंध शीतल त्रिविध मारुत बह रहा है। चंद्रमा विथकित होकर थक गया और स्थिर हो गया है प्यारी जी की उरप थिरप सुधंग नृत्य देखकर यमुना वारि जमकर बरफ बन

गया, बहाव रुक गया है। सखी समाज चकित होकर नेत्रों से प्रेमाश्रु धारा बहा रहा है। प्यारी जी के अङ्ग सुधंग देखकर मदन का गर्व रूपी पर्वत ढह गया, चकना चूर होकर गिर गया है अर्थात् रति पति काम मूर्च्छित हो गया है श्यामसुन्दर को सुध-बुध नहीं रही और वंशी हाथों से गिर पड़ी अर्थात् तिरप, उरप, सुलप की गति निहार कर श्यामसुन्दर इस मरम को नहीं जान पाये आश्चर्य में डूबकर चित्रवत खड़े रहे। प्यारी जी नृत्य करती हुई कमल पुष्पों की पंखडी पर नृत्य करने लगी जिस पखड़ी पर चरण धरकर नृत्य कर रही थीं उस पर बैठे हुए मधुप को पता ही न लगा कि राधा प्यारी पंखडी पर नृत्य कर रही हैं अर्थात् उस कमल की पंखडी के कंपन की भी खबर(उसी पुष्प पर बैठे भंवर को)लगी ही नहीं प्यारी जी के चरण कमल की पराग उस पंखड़ी पर बिखरी उस पराग सुगंध से मत्त होकर समस्त मधुप कुल यूथ मुग्ध होकर कमल की सुगंध को छोड़कर उड़े और प्यारी के चरण कमल के समीप आने का प्रयास कर रहे हैं किन्तु प्यारी के चरण कमल पराग की सुगंधमें मत्त होकर मादकता से मूर्च्छित होकर वहीं बीच ही में अचेत हो गिर पड़े तो ऐसे मालुम हुए कि आकाश से बादल आकर प्यारी जी को प्रणाम करते हुए बिछोना से बिछ रहे हों।

प्यारी जी के नृत्य में कुटिल भ्रकुटी मन्द मुसकान युत प्यारे की ओर नेन सेन सुख चेन युत निरखन की छवि को वर्णन कौन कर सके।

नृत्य करते-करते प्यारी का आगमन प्यारे की ओर ऐसा लगे मानो सुर गंगा उमड़कर सागर की ओर चली है। यमुना समीप के निवासी देव मनुष्यों के आधिभौतिक, आधि-दैविक-आध्यात्मिक सब ताप चले गये। सखी समाज नृत्य की

अद्भुततामें छककर तकि झकी सी जहां की तहां ठिठुरकर ही चित्र के समान स्तब्ध होकर खड़ी रही ।

विशाखा सखी क्षीण स्वर में मधुर कंठ से गा रही ।

राग मलार

प्यारी के नाचत रंग रह्यौ ।

पिय के वेनु बजावत गावत, सुख नहिं परत कह्यौ ॥
कोमल पुलिन नलिन मंडल महँ, त्रिविध समीर बहचौ ।
विथकित चंद मंद भयो, पथ चलिवे कहँ रथ न रह्यौ ॥
कंकन किंकिनि नूपुर सुनि, मुनि कन्यनिको मन उमहचौ ।
उलट बहचौ यमुना को जल, सबहो के नैननि नीर बहचौ ॥
अंग सुधंगि देखत, गर्व पर्वत ते मदन ढहचौ ।
तिरप, उरप, सुलपनि को गति को,पति नहिं मरम लहचौ ॥
निरखत श्यामहि काम बढ्यो, रस भंग न परत सह्यौ ।
'व्यास' स्वामिनी नैन सैन दे, नागर बिहंसि गह्यौ ॥

(व्यास वाणी ६७५)

पावस ऋतु को रास पुलिन महं श्याम रच्यौ ।

तैसोई घुमरि-घुमरि घन बरषत, गावत नाचत रंग सच्यौ ॥
कहत रमा वृन्दावन रूप, शील, गुन, रस कछु न बच्यौ ।
ताल,मृदंग,झांझ,डफ बाजत, सुनत श्रवन सुख-पुंज खच्यौ ॥
कुंवरि सुकेसी मिलवत देसी, नटवर अंग सुधंग रच्यौ ।
मंद हंसन सेननि रति नांचति, चल भ्रूभंग अनंग लच्यौ ।
'व्यास'सकल लोकन सों मूरख, विनहि काज विरंच पच्यौ ॥

राग मलार

पावस की शोभा अधिकाई ।

गगन सघन वन मिले विराजत, लाजत उपमा देति सकुचि छबि,

अध उरध छवि कही न जाई ।।
दोऊ नाइक संघट पट साजैं, गावत नाँच बजावत,
रीझत रूप की निकाई ।
विविध वरन मन हरन छबीले, नाना धुनि स्रवन सिरानैं,
बरषत हरषत विधि सुहाई ।।
मंद हास कल, भ्रू-विलास चल, नैन सैन, सुख चेन, ऐन भरि,
उमगि चले तिहि सागर माई ।
जीव-जंत मयमंत भये सब, तरनि तनया परिताप गये,
'व्यास' हिं प्यास न भई अघाई ।।

विशाखा अली गा रही कि श्यामसुन्दर ने तुङ्गविद्या की तरफ दृष्टि करके कहा कि अहा, प्यारी चंद के समान चमक रही कैसी अद्भुत छवि सो राजे है यह बात नृत्य करती हुई प्यारी जी ने सुन-ली चन्द्र की उपमा अपने प्यारे के मुख से सुनकर प्यारी जी मान-कर मान सरोवर की बगीची में अशोक के वृक्ष के नीचे विराज गई ।

अचानक प्यारी जी को रूठनो देख श्यामसुन्दर का मुख कमल मुरझाय गया और एक बकुल तरु के नीचे जाकर मूर्छित हो गये श्री किशोरी जी का मान कुँवर से सहन नहीं हुवा सखियां दौड़ पड़ी और उपचार करने लगीं परन्तु सुध न आई श्री विशाखा जी सखियों से कह रही है ।

राग मलार

मनावो मानिनी मान अली री ।
विलपत विपिन अधीर श्याम, कहि पठई बात भली री ।।
घन दामिनि कबहुं नहिं बिछुरत, मधु कर कमल करो री ।
सारस, कोक, मराल, मीन जल, प्रीति रीति कुसली री ।।

सहचरि वचन रचन सुनि सुंदरि, मुरि मुसकाई चलीरी।
'व्यास' त्रास तजि विहरत दोऊ, रति संग्राम थलीरी।

(व्यास वाणी)

राग मलार

श्याम को काम करत अपमान।
सुन्दर सुघर कुलीन दीन अति, दाता रूप निधान ।।
तासौं रूसत क्यों मन मान्यौ, जान्यो तेरो जान।
साधुहि हठ अपराध लगावति, व्यौरो करति सयान ।।
तेरो नाऊं जपत विलपतरी, करत रहत गुन-गान।
मोहू कत बत रस बौरावति, बाढत बहुत बखान ।।
वचन सुनत उठि चली अली संग, छोड्यौ निज करि मान।
पिय के हिय हँसि लगी 'व्यास' की स्वामिनी दे जिय दान ।।

यह लीला हो रही कि दक्षिण और उत्तर दिशा से घन गरजने लगे और अँधियारी छा गई थोड़ी थोड़ी पानी की बूंदे आने लगीं इसको देखकर प्यारी जी को मन अकुलाय गयो और श्यामसुन्दर के कंधे पर प्यारी जी ने अपनी भुजा रखकर चिबुक विलोयकर मृदु वचनों की रचना करती हुई प्यारी कहने लगी कि हे प्यारे अब मेरी सुरंग चूनरी भीग रही है लाल अपने पीत पीताम्बर से मेरी चूनरी को ढक दीजिये नई चूनरी भीज जावेगी देखो प्यारे दोनों ओर से बादल उमड़ कर आ रहे हैं और अब अँधेरी रात्री आ रही है बिजली कड़क रही है मेरो जिया घबरावे है शीघ्र बंशीवट की छैयां में ले चलो गलियों में कीच हो गई है मेरी पायल कीच में लथ पथ हो जावेंगी मुझ को अपनी गोद में उठाकर ले चलो। अहो

प्यारे बंशीवट यमुना तट के मार्ग में गोखरू कांटे हैं (यहां के मार्ग में वृक्ष झाड़ी नहीं हैं सखियों का नृत्य होता रहता है उनके पद के भूषणों में जड़े हुए मणियों के गोखरू खिर-खिर कर बिछ जाते हैं वे ही कांटे से लगते हैं) चुभेंगे तब आप मुझ को अपनी गोद में लेनो चाहोगे क्योंकि मेरी विपति सहन नहीं करोगे। यह वचन सुनकर प्यारे के हृदय में गुदगुदी सी हो गई प्रिया की अति अनुकूलता देखकर प्रेम के पारखी श्याम बड़े मुदित हो प्यारी गोद में ले लीं उछंग और प्यारेके वक्षस्थलमें प्यारी के नव उरोजका स्पर्श हुआ स्पर्श प्राप्त कर प्यारे तो धन धनी होकर कुचघट का कर कमलों से स्पर्श करते हैं। विशाखा जो गाकर प्रसन्न हो रही हैं।

राग मलार

सुरंग चुनरी भीजत, लाल उड़ाउ पीतपट ।
झला झकोरत आवत दुहुं दिसि, निशि अँधियारी,
दामिनि कौंधति, वेगि चलहु प्रीतम बंशीवट ।।
वीथिनि बीच कीच मची है, तब मोहि लयो चहोगे कनियां,
कंटक विकट घने यमुना तट ।
लई उछंग 'व्यास' की स्वामिनि रसिक मुकुट मनि,
धनि-धनि मोहन बार-बार कर परसत कुच-घट ।।

(व्यास वाणी ६८२)

बंशीवट के समीप पहुंचते ही वर्षा ऋतु की बूंदें मंद हो गईं सब सखी यूथ गाता बजाता सङ्ग आ रहा है। बंशीवट पहुंचकर सखियों ने झूला डाला और ललिता जी का संकेत प्राप्त कर प्यारे ने अपनी प्राण प्यारी को झूले पर विराजमान कर आप झोटा देने लगे सखियां कल्याण राग में झूला गाने लगीं।

राग कल्याण

देखो गोरिहिं श्याम झुलावहिं ।
वर्षा रितु वृन्दावन हित करि,
रखि हिंडोरना गावहिं ॥
डोलत बक, बोलत चातक-पिक,
घन दामिनी वन-वन आवहिं ।
रिम झिम बूंद परत तन भींजत,
मन परिताप बुझावहिं ॥
कबहुँ हिलमिल प्रीतम दोऊ,
जोबन जोर मचावहिं ॥
उर सों उरज परसि हँस रसिया,
अधर सुधा रस प्यावहिं ।
वरषत विटप कुसुम कुल व्याकुल,
सुर वनिता सिर नावहिं ।
ताल मृदंग बजावति दासी,
'व्यास' निरखि सुख पावहिं ॥

(व्यास वाणी ६८०)

हित की सखियों ने बलिहार किया । झूले से दोनों प्रिया-प्रीतम उतर गये प्यारी जी ने हित सजनी को कहा कि अहो मेरी प्यारी सखी आज तो तिहारी सेवा चातुरी ने हम दोनों को बहुत सुख दिया यह वचन हित सजनी को मान प्रद हुआ मानं कदा लप्स्ये का मनोरथ हित सजनी का पूर्ण हुआ ।

द्वितीय लीला

श्रीहित सजनी को प्यारी जी ने कहा हे सखि कृष्णामृतं विगाढुं चल (हे सखि यमुना जल में अवगाहन करने को ले चल) ऐसा कहा तब स्नान अर्थात् जलविहार की सेवा करने वाली सखि गण और तदुपयोगी सम्पूर्ण वस्तु के सहित प्यारीजी को यमुना के घाट पर सखि ले गई। मणिखचित घाट परम रमणीय सुन्दर सीढ़ियों से सुशोभित हो रहा है। आस पास तटवर्ती वृक्ष लताएँ पुष्पों से युक्त मन को हर रही हैं शुक पिक चातक मयूर आदि पक्षी समूह इन वृक्षों पर बैठे हुए निर्निमेश दृष्टि से श्री प्रियाजी को निरख कर जीवन का सौभाग्य प्राप्त कर रहे हैं। मणिमण्डित घाट पर श्रीराधा प्यारी खड़ी हैं। इनकी शोभा युक्त अनुपम छटा को देखकर सहचरी यूथ में स्थित एक सहचरी चकित होकर अपनी एक सहेली से प्रिया की रूप माधुरी का इस प्रकार वर्णन करने लगी कि–

हे सखि देखो तो प्यारीजी के केशपाश की रचना कितनी अद्भुत है इसमें मालती जुही मल्लिका आदि परम सुगन्धित पुष्प गुंथ रहे हैं जिनकी सुगन्ध से मत्त हुए भ्रमरों के झुण्ड के झुण्ड गुञ्जार कर रहे हैं। इनके गण्ड स्थल में (कपोलों में) कस्तूरी आदि से रचित सुन्दर पत्रावलि मन्मथ (कामदेव) के गर्व का नाश कर रही है यह कितना सुखद केशपाश है कि प्यारी के रूप की छटा प्यारे श्री श्याम सुन्दर को भी मोहित कर रही है।

श्लोक (पृथ्वी छन्दे)

समुद्रग्रथित मालती कुरुबकादि पुष्पावली–
गलत्परिमलोन्मद भ्रमर यूथसन्नादितम् ।

उदारमति चित्रितं मृगमदादिभिर्बिभ्रती–
मनोभवमदापहं किमपि केशपाशं सखि ।।

श्रीकृष्ण तो चन्द्र हैं और केशपास विधि ने मानो उनकी चन्द्रिका ही रची है जो कोई दिन (समय) भी नखचन्द्र छटा इनसे पृथक् होती नहीं है ।

केसर कस्तूरी मलयागिरि चन्दन से चित्रित सुगन्धि पुष्प मंडित यह प्यारीजी के केशपाश नहीं मानो विधि ने कामदेव के बाण रखने वाला तूणीर ही बनाया है ।

गीति छन्दे–

श्यामेन्दोरनुरूपां विधिरचितां तारकामहंमन्ये ।
तत्तत्कर नखकिरणा न जातु संख्यस्त्यजन्तीमाम् ।।
कुंकुममलयज मृगमद चित्रितकुसुमं तदीयधम्मिल्लम् ।
नो किन्तु कुसुमधनुषस्तुणीरं सज्जितं विधिना ।।

दूसरी सखी बोली––

हे सखी यह प्यारीजी की वेणी क्या है मानो सौन्दर्य और अमृत भरे मेघों का ही समूह है । और वेणी में लगे हुए फूल नहीं ये तो इन्द्र का धनुष ही है ।

हे सखी वेणी के नीचे लटकता हुआ मोतियों का गुच्छा क्या है यह तो स्पष्ट ही वर्षा जल की बूंदें हैं ।

और प्यारी के सीमंत में सिन्दूर की लकीर ही सुन्दर विद्युत की लता (छड़ी) ही है ।

शिखरिणी छन्दे—

न धम्मिल्लो सौग्ध्यामृतजल मुचामेषनिचयो ।
न पुष्पाणीमानि त्रिदशपति मौर्वी परिणतिः ।

न मुक्तागुच्छानि प्रकटसुषमाम्भः कणभरो ।
न काश्मीरोद्भूता सुभगतररेखातड़िदिमम् ।।

तीसरी सखी बोली--

देखो सखी प्यारीजी की झीणी साड़ी से ढका हुआ अति सहज सुन्दर विलक्षण यह केशपाश क्या है यह तो इनके हृदय में छिपाया हुआ प्यारे के प्रति गूढ़ भाव ही मानो सुरक्षित कर रखा हो ऐसा दीख रहा है।

गीति छन्दे-

निस्वर्ग सुन्दरोऽप्यालि सूक्ष्मचित्राम्बरान्तरे ।
गूढोभावैतस्या सोऽदृश्यत विलक्षणः ।।

प्यारी के सीमन्त में सिन्दूर रेखा पर मैंने मोतियों की लड़ धारण कराई थी वह मुक्ता की लड़ अति सुशोभित हो रही है। यद्यपि सिन्दूर की रेखा पर केशों में यह मोतियों की लड़ ही है परन्तु यह तो ऐसी मालूम पड़ रही है कि मानो राधा के सौभाग्य रूपी समुद्र के झागों की पंक्ति है।

अनुष्टुप छन्दे-

मत्समर्पित सिन्दूररेखोपरि परिस्थिताम् ।
मुक्ताफलावलीमालि सीमन्तेविभतीवभौ ।।
नसा सिन्दूर रेखालिमुक्ताहार युतापितु ।
स फेन राजिराभाति पूरः सौभाग्यवारिधेः ।।

चौथी सखी ने कहा-

देखो सखी कैसा आश्चर्य है, मुक्ताभरण विभूषित प्यारी के मुखचन्द्र की देदीप्यमान किरणों के प्रकाश से प्रकाशित शिर के बाल काले होते हुए भी चमक रहे हैं और इनकी चिकनी घुंघराली

सुहावनी सुन्दर अलकावलि जो कि इनके मुखारविंद पर डोलती हुई कैसी शोभा दे रही है।

वदनसुधाकरकिरण प्रसृतेर्मुक्तात्ततेरिदं चित्रम्।
यत्कचनिचय तमोऽपि प्रियसखि सततं प्रकाशयति।
सुस्निग्धामल कुञ्चित मेचकसुभगालकावलि तरुणि।
वदनाम्बुजस्यपरितो दधतीरेजे सरोजाक्षि॥

पांचवीं सखी ने कहा—

हे सखी प्यारीजी के मुख रूपी कमल का मकरंद (मधु) सुख विलास में गलित ललित मधु (मकरंद) रूपी मंद मुसक्यान कितना सुन्दर सुखद हो रहा है इस मकरन्द पान के लोभी अलकावलि अलकों की पंक्ति तो मानो इस मकरन्द पान करने के हेतु भ्रमरों की पंक्ति ही हो, जो सोभा दे रही हैं। और मानो इस मुखारविन्द के मकरन्द का पान करके मदोन्मत्त हो गये हैं।

हे सखी सबसे बिलक्षण और आश्चर्य तो यह है कि भ्रमर वृन्द जो सुवास मकरन्द पान के लोभी त्रिभुवन के समस्त भ्रमर यहाँ आकर अपना नैसर्गिक मंजु गुञ्जार (ध्वनि) को भी भूल गये हैं और यहाँ प्यारीजी के मुखारविन्द के मकरंद पान के लिये स्थिर और शांत होकर बड़े आनन्द से मकरंद पान में मत्त हो रहे हैं।

झूलण छन्दे

ईषद्धास विकाश विभ्रमगलल्लावण्य मध्वानना—
म्भोजस्यालकषट्पदालिरमला मत्तापिराधासखि।
यत् स्वाभाविकझंकृतिरपि मुदा विस्मृत्यनित्यंपिब—
त्यस्पन्दं तदिदं विभाति भुवनेपङ्केरुहात्यद्भुतम्॥

(श्री विट्ठलेश रचित शृङ्गार रस मंडने)

दूसरी सखी ने कहा—

और सखि, यह प्रिया को मुखारविंद क्या है यह तो निर्मल गगन का शरत्पूर्ण चन्द्र लगे है और यह प्यारीजी की केशमाला नहीं, यह तो नेत्रों के ताराएँ हैं।

गीतिछन्दे

नैतन्मुखं प्रियाया राकापतिरेव राजतेविमलः।
नेयं कुन्तल मालासुषमा मुग्धाः सखीदृशां ताराः ॥

सखियों ने श्री प्यारीजी से कहा कि प्यारी आप अब श्रीयमुना में अवगाहन करिये हम आपको उबटना कर सुगंधि तेल से कुन्तल शोधन कर लेती हैं। रजनी सखी ने प्यारीजी को उबटन कर केशों में सुगन्धित तेल लगाया अनन्तर सखियां हाथ पकड़ कर प्यारीजी को यमुना जल में (कटिपर्यन्त जल में) ले जाकर स्नान कराया। यमुना में कमलों के पुष्प खिल रहे हैं नाना प्रकार के पक्षी वृक्षों पर बैठे हुए इस जल विहार को देखकर राधा यशोगान कर रहे हैं। प्यारीजी सखियों के साथ जलविहार करने में निमग्न हैं इतने में लता कुञ्ज से निकल कर अचानक श्यामसुन्दर प्यारीजी के समीप यमुना जल में आकर ठाड़े हो गये सखियों ने जय-जयकार करके बलैयां लीं तथा दोनों युगलवर को यमुना जल से सिंचन करने लगीं जल क्रीड़ा सुविधि से करके दोनों को घाट पर ले आईं और दोनों को मणि मंडित कुञ्ज में चौकी पर विराजमान कर फिर से उबटन करने लगीं।

श्रीरङ्गदेवी जी बीणा लेकर गाने लगी—

❀ दोहा ❀

आये मंजन कुञ्ज अस, पावन तटनी तीर।
कलीखिली विकसे सुमन, चहके डारन तीर ।।१।।
अनेक रङ्ग सुरभित धरे, धोवन केश सुदेश।
अंगन मर्दन हित अतर, ले अलि करी प्रवेश ।।२।।
मणि चोकिन बैठे तहां, सुखद वसन तन धारि।
सुभग सयानी सहचरिन, भूषण धरे उतारि ।।३।।
कछु अति सुघर सुहावने, भूषण छोड़े अंग।
करत अतर मर्दन परस, सरसत हरष तरंग ।।४।।
गुरु निदेश भावुक अली, प्रमुदित धरि निज शीश।
जोवन दीपक जगमगी, पुलकि पाय अशीष ।।५।।
हुलसि हिये नव नेह की, संग पाई गई भूमि।
लगी अतर अंगन मलन, युग पद पंकज चूमि ।।६।।
लाल कमल कर परसते, प्यारी जू सकुचाय।
लाज भरे मादक पलक, उठत न मनहि लजाय ।।७।।
वा छविको रस पानकर, लोचन लोभी लोल।
छटपटात आलिगन चरन, मीड़त पुनि रस घोल ।।८।।
नेह विवश मुसकात दोऊ, मीडि परस्पर गात।
मनहु स्फटिक चूरहि लिये, तन दरपन उजरात ।।९।।
भई विवश पुलकनि बढी, परसि सरस प्रत्यंग।
घेरि लये दोऊ रसिक, साजी सैन अनंग ।।१०।।
तन मन सिहरो स्वेदकन, आई उमड़ि प्रीति।
भावुक अलि समरायतन, पाई नव रस रीति ।।११।।
पुनि गुरु वचन प्रमान ते, लयो उबटनो हाथ।
मृदुल अंग मीडन लगी, जीवन भयो सनाथ ।।१२।।

लखी स्वामिनी सखी, सकल कला आगार ।
अनुगामिनी चित चाहकी, उमगाई उर प्यार ॥१३॥
करी सराहना कमलकर, शिर धरि सहित सनेह ।
पिय अरु भामिनि स्वामिनी, बरसायो रस नेह ॥१४॥
गुरु अलि कृपा प्रसादते, महल टहल नई पाय ।
भाग्य अवधि जिय सोचिके, फूली उर न समाय ॥१५॥
(भावना विलास)

(श्री हरिवंशी सखी ने बीन उठाय बजाकर गायो) राग पञ्चम

देखिरी देखि अति कुञ्ज कौतिक--
बनो तहँ मन मुदित भये लाल प्यारी ॥
विविध जल जंत्र मनु मंत्र अवनि--
पढति छुटत रोचक महा नाद भारी ।
मुकर मणि सहज नहिं देहलि मनमथ--
रहे कुसुम के गुच्छ छवि सुच्छ न्यारी ।
वृन्दावन हित जहाँ मणिनु चोकी बनी--
तहाँ मज्जन करन मन विचारी ॥

अब सखी ने प्यारीजी के केशों का जूरा खोला तब श्री ललिताजी बोलीं अरी विशाखा जी अब बीच में (अंतर वास) कपड़े का परदा कर दो, कहीं लालकी दीठ न लग जाय । यह सुनकर श्री विशाखा सखि ने अंवरपट परदा कर दिया ।

कराई उबटन अंग सखियनि केशजूरा खोलिकैं ।
देहु आड़ो तानि अंवर कह्यो ललिता बोलिकैं ॥
राजित मनो घन विगत दामिनी कुंअरि गोरे तन दिपै ।
वदन पर रहीं झूमि अलकें, राहु गृह मनु शशि छिपै ॥

प्यारीजी की दोनों भुजा उबटन करने वाली सखी के अंश पर धरी हैं और सखी प्यारी के अंग (पीठ) पर मर्दन कर रही है झीने पट अंतर से लालजी श्रीअङ्ग निहार कर बलैयां खाते हैं।

उभय भुजा सखि अंसनि सोहे।
मर्द्दन करत लाल मन मोहे॥
मनु (मानो) मृदु कनक लता विवि शाखा।
निकसि चली बढ़िवे अभिलाषा॥

यह छवि प्यारी की देखकर लाल के नेत्र अकुलाय रहे हैं मानों ये भंमर परदे को पारकर प्यारी के उरज कमलन का मकरंद पीने को दौड़े जा रहे हों।

अर वरात लोचन वसन,
ओलें छवि अनेक जु विधि भरो।
मनु मधुप पांति विदारि खञ्जन,
उड़नि की गति मन धरी॥

सखी ने प्यारी जी को सुगन्धि जल से स्नान कराकर धौत झीने वस्त्र धारण कराये।

लाल प्यारी की इस झांकी को देखने के लिये मानो चन्द्रमा को देखने के लिये चकोर तड़फत है इस तरह अकुलाय रहे हैं और

उझकत श्याम प्रिया तन ओरी,
लोचन भये विधु वदन चकोरी।
मोहन परम रसिक री माई,
बिनु देखे अति ही अकुलाई॥

श्यामसुन्दर अधीर होकर विशाखा जी से दीनता पूर्वक बोले हे विशाखा जी आप अब प्यारी के दर्शन करावो।

अकुलाई मोहन दरस कारन, प्रेम तन मन छाइयो।
वृन्दावन हित रूप सजनी, वचन श्यामहि दीजिये ॥
बलि गई नागर नेकु विरमौ, आपु मज्जन कीजिये ॥

तब विशाखा जी बोली हे प्यारे नेक ठहरो पहिले आप भी स्नान कर लें फिर मैं प्यारी जी के दर्शन कराऊंगी यह मैं सत्य कह रही हूँ धैर्य धारण करें।

सखी लाल को स्नान कराती है।

(राग विलावल)

मोहन तन उबटन करैं सहचरि मन दीयैं।
लाड़ लड़ावति लाल कौं प्यारी रुचि लियैं ॥
कोमल करनि संवारई अलकै छवि देनी।
वास विवस मुख कमल मनु छाई अलि सेनी ॥
अंग-अंग सोभा गहर कछु वरनि न जाई।
कोटि मनोभव मन हरैं छवि छटा निकाई ॥
ललित कपोलनि में दिपै मणि कुण्डल झांई।
मनु अम्बुद में प्रातहि रवि की अरुनाई ॥
डह डहे आनन पै सखी सौरभ जु लगायौ।
मनहु कमल शशि पूजि के अरि भाव मिटायो ॥
जल सुगन्धि सींचति सखी दामिन छवि पावैं।
पावस ऋतु दै राज घन अभिषेक करावैं ॥
मृदु पट अंग अंगोछि के पहिराई वसन वर।
पुनि शृङ्गार मन्दिर चलें बैठे चोकी पर ॥
रतननि मणि भूषण कुसुम चुनि वसन नवेली।
प्रथम शृङ्गारति कुँअरि तन हित रूप सहेली ॥

पट ओले राख सखिनु इत नागरि उत हरि ।
वृन्दावन हित बलि गई पिय दुरि देखन करि ॥

प्रथम पट अंतर करके प्रियाजी को श्रृंगार सखियां करती हैं और लाल दर्शनों के लिये आतुर होकर छिपकर प्यारी की तरफ झांक रहे हैं।

लाल की अनुपम झांकी देख देखकर सखियां बलि बलि जा रही हैं।

दोहा—या छवि को रस पान कर, लोचन लोभी लोल ।
छट पटात अलिगन चरन, मीडत पुनि रस बोल ॥

सखियों ने रच पचकर नख से शिख पर्यन्त षोड़ष श्रृङ्गार दोनों के किये दोनों के हस्त कमल में दर्पण देकर कज्जल रेख बनाई ।

श्रृङ्गार करके मेवा तर मिठाई को थार सखि गण ले आईं और दोउन को मनुहार कर कर आरोगाये अचव बीड़ी देकर बन-विहार के लिये मदन वाटिका में दोउन को ले चली आगे आगे प्यारी जी सखियों के साथ गमन कर रही हैं।

प्यारीजी की गमन शोभा का वर्णन

राग—विहागरो

लटकि चलति प्यारी लाल हूँ ते आगे-
पाछे पिय वैंनी की निरखि छवि विथकित ।
मनु मदमाती खेलैं कंचन के चोहटे में-
पन्नगसुता निरसंक भरि अति हित ॥
रतननि फौंदना धरी ढिगमणि मानो-
बिहरति ताही के प्रकाश में भरी सुचित्त ।

वृन्दावन हित रूप हौं बलि गई–

श्याम दृष्टि मग जोये शोभा लखी री अपरिमित ॥

लाल अब ऐसी बानि परी है।

पाछेई रहिवो सुहात, विसरत पल न घरी है ॥
चंचल बेनी नचति पीठ पे, जब तें दृष्टि करी है।
वृन्दावन हित रूप बलि गई, सुधि बुधि पिय की हरी है ॥

सखियों के साथ दोनों प्यारे रास मण्डल पर पधारे सब सखी समाज चारों ओर खड़ी वाद्य बजाने लगीं सखी मण्डल मध्य गलवाहीं दिये दोनों प्यारे खड़े हैं।

(राग हमीर ताल चचेरी)

पद— उदित उडुराज हरि देखि कौतिक करत।
चित्त आकर्षिनी अमीर रस वर्षिनी,
रास रमिवें रसिक हरषि अधर निधरत ॥
सप्त सुर स्रोत ह्वै नाद रस उमगि कैं,
विश्व थिर चर सबै सर सरित उर भरत।
सुखित सब किये पै जुवतिमणि राधिका,
जूथ जुवतिनु लिये लाल दिस अनुसरत ॥
किये पल पाँवड़े रसिक नागर कुँअर,
प्रणित सादर प्रिया रास रस विस्तरत ॥
चक्रगति फिरत चहुं ओर सब सहचरी,
बीच नव रंग जोरी सुगति लै ढरत।
तत्त थेई वदित श्याम-श्यामा सुघर,
उभै विधु वदन तें बीज आनन्द झरत।
चाहि सन्मुख चलत पवन अञ्चल हलत,
वृन्दावन हित मिथुन मान मन मथ हरत ॥

प्रिया प्रीतम रास रस पान करके सिंहासन पर आ विराजे। कुंवरि को श्रमित जानकर ललितादिक सखी अपने अंचल से पवन करने लगीं प्यारे श्यामसुन्दर ने प्यारी के नासापुट पर चुटकी दीया। प्यारी जी रीझ कर तिरछी चितवन से लाल की ओर देख रही हैं प्यारे प्यारी के रूप रंग को निहार कर निहाल हो रहे हैं, प्यारी के सलज नयन प्यारे के हृदय में चोट कर रहे हैं इस मद भरी चितवन को देखकर मदन (प्रेम) ने पञ्च कुसुम बाण फेंक दिये और स्तब्ध हो गया।

❀ पद ❀

चञ्चल दृग पिय मन हरत है।

बांके निपट चलत तिरछी गति,
सलज्ज ढरारे ढार ढरत है॥

रूप रंग रेलनि उझलत है,
जाई लाल के हिय भरत है।

घूमत झूलत अति रस छाके,
दाई भाई सो चोट करत है॥

दिखियति सरस अनियारी,
छवि गरूर अति सूर अरत है।

वृन्दावन हित मदन पञ्चसर,
जिन आगे तजि लजि जु डरत है॥

प्रियाजी के गौर मुख पर अपनी काली काली अलक लट छूटकर कपोल पर झूम रही है उस लट का प्रतिविम्ब गोरे कपोल पर घूमता झूमता देखकर रूप अहारी लाल की आंखें निर्निमेश हो गईं लाल चित्र से हो रहे।

इस छटा को देखकर वृन्दावन दासी बोली—

* पद *

गौर वदन पर लट लटकारी ।

मनु विधु सुधा पान को उतरति,
अहि यूथनि तजि पन्नग नारी ॥

किधौं निशा तम फन्दा डारयौ,
अरि सौं कोप धरयौ मन भारी ।

वृन्दावन हित रूप जाऊं बलि,
किधौं बहि चलि है कलंक लंक पनारि ॥

लाल को प्रेम सरोवर में निमग्न देखकर प्यारीजी हित सजनी के कान में अपनी हृदय की बात कहने लगीं ।

* पद *

कहति सखी के श्रवन लगि श्यामा,
मोहि तो श्याम माई प्रान ते सत गुनो ।

हरष पुलक तन हिय भयो सजनी,
श्रवित अमी सम वचन जब सुनै ॥

प्रीतम की साधुताई नेह की निकाई माई,
प्रेम को उदौ करति सुधि करि आपुनै ।

वृन्दावन हित रूप बिहारिनी बिनु,
मित प्रीति प्यारी ते बस कियो उनै ॥

और हित सजनी को मान देकर कह्यो तेरे बिन ऐसो सुख कौन दे सकती है इस सुख का कारण तो तू ही है ।

मूल श्लोक—

पादांगुली निहित दृष्टि मपत्र पिष्णुं ।
दूरादुदीक्ष्य रसिकेन्द्र मुखेन्दुबिम्बम् ॥
वीक्षे चलत्पदगतिं चरिताभिरामां ।
झंङ्कारनूपुरवतीं बत कर्हि राधाम् ॥१५॥

पदच्छेद:—पदांगुलिनिहितदृष्टिम्, अपत्रपिष्णुम्, दूरात्, उदीक्ष्य, रसिकेन्द्रमुखेन्दुविम्बम्, वीक्षे, चलत्पदगतिं, चरिताभिरामाम्, झङ्कारनूपुरवतिं, बत, कर्हि राधाम् ।

अन्वय—चरिताभिरामां राधां बत कदा वीक्षे (कथं भूतां) पादांगुलीनिहितदृष्टिं (पुनः कथं भूतां मुखेन्दुविम्बं) अपत्रपिष्णु दूरात् रसिकेन्द्र मुखेन्दुविम्बं उदीक्ष्य चलत् पदगतिं, (अतएव) झंकार नूपुर वतिम् ।

हिन्दी अनुवाद—

प्रियाजी ने रसिक पुरन्दर अपने प्रियतम श्रीश्यामसुन्दरके मुखचन्द्र विम्ब को दूर ही से देखकर जिन्होंने लज्जा से पूर्ण अपनी दृष्टि को अपने निज चरणों की अंगुलियों पर निहित कर (लगा) लिया है । और फिर मन्थर गति से (प्रासाद की ओर) गमन कर दिया है जिससे चरणारविन्दों के नूपुर झंकृत हो उठे हैं । हाय, उन सुखदायी श्रीराधा को मैं कब देख पाऊंगा । अर्थात् उनका दर्शन मुझको कब प्राप्त होगा ॥१५॥

(इस श्लोक के द्वारा लज्जायुक्त गतिमति श्री लाड़िली जी की शोभा सौन्दर्य के दर्शन की अभिलाषा व्यक्त हुई है)

भावार्थ कवित्त में—

लाज भरे लोयन सों लसित ललाई पग,
अंगुरी निहारत ही सहज सुभाइकैं।
देख्यो प्रतिविम्ब मुखचन्द्र रसिक नायक को,
दूर सों परचो नखचन्द्रन में आइकैं॥
देखत ही चमक झमक उठी दमक दामिनी सी,
भामिनी अभिराम चाल चली चित्त चाइकैं।
झनक झनक झनकार चारु धुन नूपुर की,
सुनहों कब राधे नैन नैननि मिलाइकैं॥१५॥

(हित भोरी)

करखा छन्द—

राधिका चरन मन हरन मृदु आंगुरी,
सोहिनी ललित जावक रचीली।
दूर ते जु इन्दु मुख विम्ब निज श्याम घन,
देखि इक टक रह्यो छवि छबीली॥
समझि मन ही मनैं विहंस वर भामिनी,
चली झट झमकि आतुर लजीली।
सुनो कब ललित झनकार नूपुर पगन,
नागरी नवल शोभा सजीली॥१५॥

(श्रीहित वाणी)

एवं मानदर्शन विचार्य हृद्यदर्शने किंचिदुद्विग्नं स्वात्मानं समालक्ष्यतयोः संगमावस्थां भावयति। पादांगुलीति। बत खेदे। अहं राधां कदा वीक्षे पश्यामि। कथं भूतां राधां। पादांगुलीनिहित दृष्टिम्। स्वपादांगुलीषु निहिता दत्ता दृष्टिर्यया तां। किं कृत्वा।

दूराद्रसिकेंद्रमुखेन्दुमुद्वीक्ष्य। रसो हृदि विद्यते येषां ते रसिकाः तान् रसवर्षणेन जीवयतीति रसिकेन्द्रो नंदात्मजः। तन्मुखमेवेन्दुविम्बं वीक्ष्य। अनेन स्व वदनैकवत्वं संपाद्य रसिकेन्द्र मुखेन्दु त्वं संपादित मित्यर्थः। एवं सर्वाङ्गसामग्री तस्मिन् तत् संपादितैवेत्यवधेयं रसिकैः। वास्तवार्थस्तु रसिकेंद्रमुखेन्दुविम्बं दृष्ट्वा स्व पादांगुलीषु तत् साम्यं पश्यति नत्वंगुष्ठयोः। तयोर्महत्वात् तारतम्यज्ञानार्थ मितिभावः। 'श्रीर्यत् पदांबुजरजः' इति श्रीमद्भागवते। तदधिकत्वादंगुलिनखेषु।

यद्वा। अंगुलीनखमुकुर एव मुखेंदु विम्ब पश्यामीति क्रिया वैदग्ध्यं। क्रियासूचनमवगम्यमानं तं विदितवती विशिनष्टि। पुनः कथं भूतां राधां।। अपत्रपिष्णु। लज्जा सहितां। इदं विशेषणं तत् ज्ञाननिदान द्योतनात्मकम्।। पुनः कथं भूतां। चलत् पदगतिं। चलंती-पदयोर्गतिर्यस्याः। पुनः कथं भूतां। चरिताभिरामाम्। स्व चरितैर्यथा यथमभितो रमयतीति या ताम्। श्रवण सार माह।। पुनः कथं भूतां। झङ्कार नूपुरवतीम्। झंकार युक्तौ नूपुरौ यस्याः ताम्। इयमप्येका क्रियेतिभावः।।१५।।

(श्री कृपालाल)

अन्वयार्थ—रसिकेन्द्र मुखेन्दु विम्बं रसिकेन्द्रस्य श्रीकृष्णस्य मुखमेवेन्दु तद् विम्बं प्रतिविम्बं दूरात् उदीक्ष्य दूरस्थितापि स्व हृदय मुकुरे प्रति फलितं दृष्ट्वा अपत्र पिष्णु लज्जा शीलां यथास्यात्तथा पादांगुली निहित दृष्टिश्च पादांगुलीषु दत्ता दृष्टिर्यया तां चरिताभि-रामां एतादृशैश्चरितैः स्वभावैः अभिरामां अभि सर्वतोभावेन रम-यति या तां। चलत् पदगतिं चलत् पद्योर्गति यस्यास्तां झङ्कार नूपुरवतीं झङ्कार युक्तौ नूपुरौ यस्याः तां, राधां, वृत संतोषे विस्मये वा अहं कर्हि कदा वीक्षे पश्यामि।

बङ्गला टीका से—

तात्पर्य—रात्री शेष रहते हुए विलासमयी श्रीराधा सखियों के साथ श्री यमुना जल केलि के लिये चल रही हैं।

दोहा—सब सखि गण मेलि करल पयान।
कौतुके केलि कुण्ड अवगान। (गोविन्ददास)
जल केलि आधे चलु धनि राधे। (शेखर)

चलते-चलते यमुना जल को देखकर राधा उद्दीपन विभाव के वश होकर अपने हृदय दर्पण में रसिकेन्द्र के वदन चन्द्र ज्योंही प्रति विम्बित हुआ तुरन्त उसी समय संभोगानन्द की स्फूर्ति हो उठी जो श्रीकृष्ण रस वर्षण द्वारा रसिकजन को जिलाते हैं अतः श्यामसुन्दर रसिकेन्द्र हैं। श्री श्यामसुन्दर की स्फूर्ति से रसिकिनी की मुकुट मणि राधा के हृदय में रस का उद्दीपन हो गया अतः श्यामसुन्दर रसिकेन्द्र कहलाये। विनोदवती श्रीराधा इसी तरह कान्त के मुख प्रति विम्ब जनित विलास के भाव उदय होने से अपत्र पिष्णु अर्थात् लज्जा शील लज्जावती बनकर, अपने पादांगुलियों को देख रही है। अथवा (३) अपत्र शब्द का अर्थ होता है निर्लज्जता। रसिकेन्द्र मणि श्याम-सुन्दर के मुख कमल को देखकर निर्लज्जता वश हो गई तथा श्याम-सुन्दर के मुख कमल की तुलना के लिये अपनी पादांगुलि स्थित नखचन्द्र को निहार रही हैं। इसी तरह अपूर्व रमणीय चरित्रवती होकर शनैः शनैः चल रही हैं जिससे श्रीप्यारीजी के नूपुर श्रीचरण लग्न में नूपुर ध्वन्यंतर हो रहा है। सहचरी सखी के भाव में मग्न हुए श्री ग्रन्थ कर्ता प्रार्थना करते हैं। हाय इसी प्रकार श्रीप्यारीजू को चलते हुए कब देखूंगा ॥१५॥

———

रसकुल्या टीका

इति खेदानुकम्पा सन्तोष विस्मयामन्त्रणे बतेत्यमरः, बतेत्यनुकम्पा शंसने पादेत्यादि विशिष्ट रसिकेन्द्रमुखेन्दु विम्बं दूरादुदीक्ष्य चलदित्यादि विशिष्टां राधां कर्हि वीक्षेऽह मित्यन्वयः।

स्व पादांगुली निहित दृष्टिमिति लज्जानुभावः। लज्जासापत्रपान्यतः अपत्रपिष्णुं इति 'कदम्ब वाट्यां' अचिर मेवाऽधुना विलासो वृत्तः। कथं पुनरद्यैवासन्तोषं व्यनज्मि इत्याशयेन वाम्यभियाऽभिलाषाऽश्ववलगना कर्षादि वनत दृष्टि प्रियातो लज्जाशीलम्। अतएव रसिकेन्द्र पद प्राप्तिः।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

चरणों की अंगुलियों पर दृष्टि लगाये हुए, सलज्ज, रसिक शिरोमणि श्री लालजी के मुखचन्द्र मण्डल को दूर से देखकर चञ्चल पदगति वाली, चरित (प्रीति प्रधान चरित्र और कृपा भाव से चलित चलने) से रमणीया झंकारते हुए नूपुरों वाली श्रीराधाजी को भला मैं कब देखूंगी।

खेद, दया, सन्तोष, विस्मय और आमन्त्रण इन अर्थों में वत शब्द का प्रयोग होता है, यह अमरकोष में है। यहां वत शब्द का प्रयोग दया वा अनुकम्पा का भाव गृहीत हुआ है। 'पादांगुली निहित दृष्टि' और 'अपत्र पिष्णुँ' यह दोनों शब्द रसिक शिरोमणि के मुख रूपी चन्द्र मण्डल के विशेषण हैं, ऐसे मुखचन्द्र मण्डल को दूर से देख-,

कर 'चलत्पदगतिं' 'चरिताभिरामा' 'झङ्कार नूपुर वतीं' यह तीनों श्रीराधाजी के विशेषण हैं। ऐसी श्रीराधाजी को मैं कब देखूंगी। यह श्लोक का अन्वय है।

'अपने चरणों की अंगुलियों पर दृष्टि लगा रक्खी है' यह लज्जा का कार्य है। अपत्रपा और दूसरे से लज्जा दोनों शब्द समानार्थक हैं। कदम्ब वाटी में अभी-अभी कुछ ही समय पूर्व विलास हुआ है। फिर अभी से कैसे असंतोष प्रकट करूं इस अभिप्राय से, और प्रियाजी की रतिवामता (सहज बाहिरी प्रतिकूलता) के भय से अभिलाषा रूपी अश्व की लगाम खींचने के कारण झुकी हुई दृष्टि वाले, प्रियाजी से लज्जाशील (शरमा रहे) अतएव इनको 'रसिक शिरोमणि' पद की प्राप्ति हुई है।

रसकुल्या टीका

अस्य स्वनायकोत्कर्ष त्याग पूर्वक सेवनोत्तम धर्मानुगतित्वं तदिन्द्रत्वं तस्मिन्नेव बुद्धिपूर्वक स्वोत्कर्ष मनन मिति तेन प्रसरत् कीर्त्यैवाह्लादक चन्द्रिका स्वैर जात मण्डलम्। एतादृश ममतास्पद शोभा प्रसादक सौशील्यगाम्भीर्याद्यनुकम्पनीयतोद्दीपकं मुखचन्द्रं दूराद्यावदनुभाव दर्शनं तावद् व्यवहित प्रदेशादुदीक्ष्य समीक्ष्य किमिदमद्यैव चकोरायमाणैकाग्रदर्शन प्रवण नयनयोर्नमन मिति चतुरचूड़ामणित्वात्तद्गत लालसा वैदग्धीं ज्ञात्वापि स्फुटं तु किमशक्य विचार परोऽसि, प्राणाधिक सर्वस्वं कथय गोप्यहार्द्दमप्यगोपनीयं निजजन इति खेदानुकम्पा संतोष दान विस्मयामन्त्रण साङ्कर्येण चलत् पदगतिं तद् बहु विध प्रशंसित प्रार्थितचर

हंस गजादिगञ्जनगत्यातदभिलषित वरदानार्थमिव पदा चलन्तीं तत्रापिचरितं लडिलात्वलावण्य वालितभुजकराञ्चल समीकरण वक्षोऽनिर्वचनीयशोभादर्श नासामुक्ता कुण्डल-ग्रैवेयां मदचलनभ्रू न्नयन सस्मितस्मयभंगी पूर्वकादि सहृदय गम्यैर्दृष्ट स शिरोधूनन स पुलककम्प विस्मयश्लाघापादन निदानैरभिरामां प्रियसम्मुख—क्रीड़ाकौतुकागमनां सर्वतो मनोहरां झंकारमधुरवविशिष्ट श्रेष्ठनूपुरां राधां प्रियपरमां-नन्द सिद्धिरूपां। अयाचित भजनोत्तर फलरूपामिवर्कार्हि भाग्योदये दौर्लभ्ये कदावक्षे। चरितदर्शनानन्दस्थगितनिर्नि-मेष दृष्ट्या कदा पश्यामीत्यर्थः।

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

क्योंकि अपने नायकपन के उत्कर्ष को त्याग कर सेवा करने के उत्तम धर्म के अनुगामी होना, तथा ऐसे सेवा धर्मानुगामियों में इन्द्रयामुख्य होना, और इसी में अपना उत्कर्ष मानना तथा इससे फैलती हुई कीर्ति रूपी आनन्दप्रद चांदनी से आवेष्टित मण्डल सदृश होकर इस प्रकार की ममता की पात्र, शोभादायक सुशीलता और गम्भीरता आदि से कृपा करने की योग्यता (अनुकम्पनीयता) के उद्दीपक मुखचन्द्र को दूर से इतनी दूर से कि जिससे मुखचन्द्र के दर्शन भी हो सके उतनी दूरी से भली प्रकार देखकर (ऊर्ध्व दृष्टि से देखकर क्योंकि लालजी श्री प्रियाजी से कुछ ऊँचे हैं) अहो यह क्या बात है कि आज ये चकोर की तरह एकाग्रह भाव से दर्शन करने में तत्पर रहने वाले नयन झुक रहे हैं।

इस जिज्ञासा के साथ स्वयं चतुर चूड़ामणि होने के कारण श्री प्रियाजी प्रीतम के हृदय में स्थित लालसा की विदग्धता (चतुरता) की जानकारी भी—प्रकट में किसी असम्भव वस्तु के विचार में पड़े हों, प्राणों से भी अधिक प्रिय सर्वस्व जैसे छिपाने योग्य अपने मनोरथ को कह दो। अपने जनों के आगे कोई बात छिपानी नहीं चाहिये। इस तरह से दुःख, दया, सन्तोष, दान, विस्मय, और आमन्त्रण का सांकर्य हो जाने से चञ्चल चरणों से गति वाली, अर्थात् पहले अनेक विधि से प्रशंसित और प्रार्थित हंस, गज आदि को लज्जित करने वाली गति से प्रियतम को मन चाहा वर-दान देने के लिए ही मानो श्री चरणों से चलती हुई, उस पर भी अपने लाड़लेपन के कारण विशेष शोभा लावण्य के साथ भुजाओं और करकमलों को घुमाकर, चांचल्य को बराबर करके वक्षस्थल की अनिर्वचनीय शोभा के दर्शन, नासिका की मुक्ता, कानों के कुण्डल, कण्ठग्रैवेयक से युक्त (श्रीराधा की) मदमत्त चाल, भ्रकुटी के उन्नयन (तनाव) मुसक्यान सहित गर्वपूर्ण चेष्टा आदि जितनी वस्तुएँ क्रियाएँ सहृदयों को यहाँ प्रतीत होती हैं उन सबसे—जो कि देखने वाली सखी मण्डली द्वारा सिर हिलाने, रोमाञ्च, कम्प प्राप्त करने, आश्चर्य तथा प्रशंसा करने का कारण है—अभिराम (अति सुन्दर) बनी हुई प्रिय के सम्मुख क्रीड़ा कौतुक से आ गई। सब प्रकार से मनोहारिणी, झङ्कारते हुए मधुर शिञ्जन से युक्त श्रेष्ठ नूपुरों वाली श्री राधा को—जो प्रियतम के लिये परमानन्द सिद्धि रूपा हैं—बिना मांग ही भजन के बाद प्राप्त होने वाले फल के स्वरूप में विराजमान सी हैं, उनको दुर्लभ होने के कारण—कब भाग्योदय होने पर देखूंगी, अर्थात् उनके चरित्र दर्शन से प्राप्त आनन्द के कारण स्थिगित हो गई। अतएव निर्निमेष (अपलक) दृष्टि से कब दर्शन करूँगी।

रसकुल्या संस्कृत टीका

अथवा प्रियां पादांगुलीनिहितदृष्टि पूर्वं नागर वरेणपरि-रम्भरसोत्सवे प्राथिततया नहिनहीत्युक्त तद्भियाऽवचनेनैव प्राथितम् किंचेयं याचकरीतिर्दैन्यमेव दातृमनोद्रावयति । मम चरणावेवशरणमेतत्कृपयैव सर्वं सेत्स्यति इतिद्योतकं पाददृष्टित्वं मुखदर्शने लज्जितं वा अपीति गतलज्जं स्वाभि-लाषभावनाकृति परम्पराजातवैवश्येन सखीजनपरिहास विस्मृतिः ईदृङ्मुखेन्दुदृष्टाचलदिति वाम्यकौतुकेनपाद हत्यनुभावेन ज्ञातपादस्पर्शतदभिलाषस्य प्रत्याख्यानमिव कृतम् इति ।

आहो स्वित्प्रमत्तदुर्घट दास्याधिकार चिकीर्षोः सखी-समक्षमेव गतलज्जतया स्थितिरित्यस्थाने इतिभावः अतएव झंकारनूपुरवतीं तदानीं यद्भंग्याझङ्कारः स सहृदयैकगम्य-एवंकिंच चरितैः सस्मितभ्रूभङ्गपादचलन क्रियावैदग्ध्यरूपै-रभितो मनोहरन्तीं पादांगुलीति पादगौरवेण स्वदैन्याधिका-रमन्यतया अर्वागेवांगुलीषु निहितादृष्टिर्येन दूरादितिनैक-टयेतु नैवमभिलाषव्यञ्जने शक्तिर्न च मुखचन्द्रावलोकान्त रायंसोढुंशक्तः किंचिद् दूरतएव स्वलालसाव्यञ्जनं कृतं पुनरपि पादचालनेऽपितदेव बहुकृपां मन्यमानं तत्रैवनिहित-दृष्टिं वीक्ष्यतदनन्तरमासक्तानुग्रहणीय शीलविवशा स्वयं ललितगत्याप्रिय अभिमुखमाजगामेत्यत्रगन्तव्यम् इति भावः ॥

रसकुल्या का हिन्दी अनुवाद

अथवा यहाँ प्रियाजी अपने चरणों की अंगुलियों पर दृष्टि रखी हुई हैं। पहिले नागरवर (श्रीश्यामसुन्दर) ने परिरम्भरसोत्सव (आलिंगन के आनन्द का एकक्षण माँगा था। तब प्रियाजी ने 'नहीं-नहीं' कहकर उसका प्रत्याख्यान (अस्वीकार) कर दिया था। उसी भय से आज प्रियतम ने बिना बोले ही उस परिरम्भरसोत्सव (आलिंगन) की पुनः मांग की, क्योंकि मांगने का सही तरीका भी यही है। प्रत्याशी की दीनता ही दाता के मन को द्रवित कर देती है। मेरे तो चरण ही शरण हैं इन्हीं की कृपा से सब ही मनोरथ सिद्ध होंगे, इस भाव को सूचित करने वाला यह प्रियाजी का चरणों पर दृष्टि लगाना है। अथवा प्रियतम प्रियाजी के मुख दर्शन से लज्जित होकर चरणों पर दृष्टि लगाये हुये हैं, अथवा अपत्रप का अर्थ लज्जा दूर करके अपनी अभिलाषा और भावना तथा प्रियतम की दैन्यभरी आकृति परम्परा से जाग उठी विवशता से प्रियाजी सखीजन के परिहास को भी भूल गईं और प्रियतम के बसे मुखचन्द्र को देखकर चलत् पद गति अर्थात् स्वभाव ही से रति में वामता या प्रतिकूलता के कौतुक से पादाघात के अनुभाव से, पादस्पर्श के द्वारा जानी गई प्रियतम की अभिलाषा का प्रत्याख्यान सा किया। अर्थात् अस्वीकार सा किया यह भी तात्पर्य हो सकता है।

अथवा प्रमादीजनों के लिये दुर्लभ दासत्व से अधिकार के अनुरूप कार्य करने के लिये उत्सुक श्री श्यामसुन्दर की सखीजनों के समक्ष ऐसी लज्जाहीन सी स्थिति है, यह अनुचित है यह भी भाव हो सकता है। अतएव प्रियाजी को झंकारते हुए नूपुरों वाली कहा गया है, जिस चेष्टा में यह नूपुर झंकार हुई उसे केवल सहृदयी ही जान सकते हैं—और भी एक बात है—कि मुसकान के साथ भ्रकुटी

को बांकी करना, चरणों का चलना आदि क्रिया की निपुणता से जो मन को हर रही है ऐसी श्रीराधा जी को मैं कब देखूँगी। पादांगुली निहित दृष्टि से तात्पर्य है कि प्रियाजी के चरणों के प्रति गौरव (आदर भाव) से और अपने आप में दीनता का अधिकार मानने के कारण श्री चरणों की अंगुलियों के समीप ही जिन्होंने दृष्टि लगाई है ऐसे श्यामसुन्दर। 'दूर से' कहने का अर्थ है कि समीप में ऐसी अभिलाषा व्यक्त करने की प्रिय की शक्ति नहीं है, प्रियाजी के मुखचन्द्र के दर्शन में किसी प्रकार के विघ्न को सहन करने में भी वे असमर्थ हैं। इसी लिये उन्होंने कुछ दूर से ही अपनी अभिलाषा को व्यक्त किया। इस पर प्रियाजी ने श्रीचरण हिलाये, उनके श्री चरण हिलाने को भी बड़ी कृपा मानते हुए उन पर ही दृष्टि लगाते हैं। प्रियतम की यह स्थिति देखकर उन (आसक्त श्रीश्यामसुन्दर) पर अनुग्रह करने के स्वभाव से परवश हुई प्रिया स्वयं रमणीयगति से प्रिय की ओर आईं, ऐसा समझना चाहिये। यह भाव है ॥१५॥

तात्पर्यार्थ

पादांगुली इत्यादि उपरोक्त श्लोक का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि कृष्णामृतं चलविगाढु श्लोक में श्रीहित सखी के द्वारा परिहास में (हँसी में) कहने पर वहीं पर श्रीराधा प्यारी जी ठहर गईं (तावत् सहस्व रजनी या वदेति) सुनकर रुक गई, इस प्रकार का भाव मानने से यह अर्थ होगा कि—प्रियाजी के रुक जाने पर मिलने के लिये प्रियाजी के पास स्वयं लालजी पधारे।

अथवा केलि कदम्ब वाटका के कुञ्ज से आकर यमुना में दोनों का स्नान हुआ श्री प्रियाजी सखियों के साथ चलदीं और लालजी वहीं यमुना तट पर रुक गये, इसका यह अर्थ हुआ कि लाल की रति (प्रेम) विहार से तृप्ति न हुई और वे चाहते

हैं कि प्रियाजी सखियों को भुलावा देकर अकेली यहाँ पधार जावें अर्थात् किसी दूसरे कुञ्ज के द्वार से निकल कर यहाँ अकेली ही आ जावें। इसी लिये रुक रहे थे। लाल अपनी प्यारीजी के समक्ष साक्षात् तो अतृप्ति और पुनः विलास के लिये कह नहीं सकते थे क्योंकि पहले एक बार परिरम्भरसोत्सव के लिये प्रार्थना करने पर नहि नहीति कहकर अस्वीकार कर दिया था अब इस समय कहने में मान हो जाने का भय है तथा कुछ ही समय पूर्व तो विलास सम्पन्न हुआ ही है। इस समय पुनः प्रस्ताव प्रियाजी के समक्ष रखने में लज्जा भी आती है।

प्रियाजी चतुर चूड़ामणि और लाल के सुख में ही सुखी हैं जीवन धन प्रियाजी का लाल ही है अतः सदा सर्वदा लाल को सुखी ही देखना चाहती हैं। प्रियाजी लाल के हृद्गत भावों को समझ गईं। और बिना कहे ही लाल की अभिलाषा पूर्ण करती हैं प्रियाजी लाल के भाव को समझ कर कृपा करके स्वयं आईं। विद्वत्ता एवं भावुकता पूर्ण परिचय देते हुए भावुक विद्वान् श्रीहर-लालव्यास जी ने स्वपादांगुली निहित दृष्टिमिति लज्जानुभावः इस पंक्ति के द्वारा प्रेम का यथार्थ स्वरूप व्यक्त किया है। तथा लालजी की आराधना तथा प्रियाजी का मधुरोज्ज्वल स्वरूप प्रकट किया है। इस रसात्मक प्रक्रिया का अनुभव तो श्री राधिका रति निकुञ्ज मण्डली के (अंग संगी कृपा पात्र सखीजन) रसिक लोग ही कर सकते हैं (असम्भाव्य तद्भाव गम्भीर चित्तान्) जैसा कि श्रीरूप सनातन गोस्वामीपाद ने श्री गदाधरभट्टजी को लिखा था वास्तव में यह सत्य ही है कि श्रीराधा निकुञ्ज मण्डली सखी परिकर की कृपा बिना राधा-कृष्ण निकुञ्ज लीला का यथार्थ रस का अंकुर भी नहीं उत्पन्न होता है। यह विषय बुद्धिगम्य नहीं है।

अपने पांवों की अंगुली पर दृष्टि रखना लज्जा के ही कारण हैं, किन्तु श्लोक में लालजी को 'अपत्रपिष्णु' व्यक्त लज्जा, निर्लज्ज कहा गया है। (यह विचारणीय रहस्य है।) बन माने खेद का विषय है कि कदम्ब वाटिका में जो विलास किया उसको अभी-अभी हुए देर नहीं हुई फिर कैसे दुबारा विलास करने के लिये अभी असन्तोष व्यक्त किया जाय इसी अभिप्राय से मुख से तो कुछ लालजी बोलते नहीं हैं बोलने में डरते हैं कि प्यारीजू क्या कहेंगी, यह कि ये अति रस लम्पट हैं अति लुब्धक हैं और प्रिया को बार-बार रतिश्रम देना भी तो निर्लज्जता है, पर प्रेमोत्कर्ष शान्त नहीं होता है, अतः बल पूर्वक प्रिया को बुलाने के लिये दृष्टि नीची करली है, प्रिया के आगे अपने अभिप्राय को भावों द्वारा व्यक्त करके अपने असंयम से स्वयं लज्जित हैं (नायक की प्रधानता है 'पुरुषः प्रधानं अन्यत्सर्वं तदुपकरणम्' इस श्रुति के आधार पर नायक ही श्रेष्ठ है "उलटी रीति यहाँ सब" इसलिये प्रधानता नायिका की रसानुकूल है तभी स्रक् ताम्बूलादिक प्रत्येक वस्तु पहिले नायिका को अर्पण करके नायक को प्रसादी भोक्ता, अथवा प्रसाद ग्राही बनना पड़ता है और विशुद्ध प्रेम का विवर्त परम दैन्य ही माना गया है तो लाल का व्यक्तित्व प्रिया के आगे नत मस्तक ही है 'श्रीराधा चरण विलोडित रुचिर शिखण्डं हरिं वन्दे' इसीसे लाल सदा प्रिया के आगे लज्जित अर्थात् पराभूत है) अतएव श्यामसुन्दर को रसिकेन्द्र की उपाधि मिली है, सेवक नायक अपना नायकत्व झुकाये और उसकी महत्ता को त्याग करके नायिका धर्म प्रगति, हाथ जोड़कर माथा झुकाये रखना ही नहीं ऐसा करने वालों के सम्राट पद पर आसीन रहना है (अर्थात् अपना पुरुषत्वाभिमान छोड़कर अत्यन्त दीन भाव से झुके रहने वालों का सरदार बनना है) इसी प्रकार से बने रहने में अपनी बड़ाई मानते हैं 'अत्यन्त प्रेमी नायक अपना

अस्तित्व प्रेमास्पद पर न्यौछावर कर देता है उसे शास्त्रों में 'धीर ललित नायक कहते हैं'–षण्णवति नायकेषु श्रीकृष्णो धीर ललितः) छियानवें प्रकार के नायकों में सर्वश्रेष्ठ धीर ललित नायक श्रीकृष्ण हैं कारण 'प्रायशः प्रेयसी वशः' सदा प्रियतमा के आधीन रहते हैं, लौकिक कामी भी तो नायिका के आगे नायकत्व का परित्याग करते ही हैं, सिंह सिंहनी को आत्म समर्पण किये रहता है, सर्प सर्पणी को और सम्राट भी एक नगण्य कुमारी के आगे दीन हीन रहता है तो बलात् काम शक्ति ही आत्म समर्पण करा लेती है फिर प्रेम शक्ति की तो बात ही क्या है। यही उत्कृष्ट नायक की उत्कृष्टता है यही उसकी शोभा है–'बुद्धि पूर्वक स्वोत्कर्ष मननमिति तेन प्रसरत्कीर्त्येवाह्लादक चन्द्रिका स्वैर जात मण्डलम्' प्रियतमा के चरणों में प्रणत जीवन ही जीवन की सफलता मानने वाला प्रेमी, प्रेमचन्द्र की बिखरी हुई चन्द्रिका जैसी आह्लाद दायिनी कीर्ति चन्द्रिका से सुशोभित होता हैं।

इस प्रकार के, ममतास्पद (ये अपने ही हैं) और शोभित, शील, गम्भीरता आदिक गुणों से विभूषित, प्रिया की अनुकम्पा को जाग्रत करने वाले (अनुकम्पा योग्य) मुखचन्द्र को दूर से ही देखकर, मुख पर प्रतीत होने वाले भावों को जानकर, मुखचन्द्र को ऐसे स्थान से देखा जहां से देखने में कुछ रुकावट न पड़े, (स्पष्ट रूप से अच्छी प्रकार देखकर और तद्गत भावों को अच्छी प्रकार से समझकर) अच्छी तरह विचार करने लगीं कि ये क्या बात है. लाल अभी तक चकोर की तरह एकाग्र भाव से, निर्निमेष दृष्टि से, टक टकी लगा रहे हैं। इनकी ऐसी अवस्था तो सहन नहीं करूंगी, प्रिया चतुर चूड़ामणि हैं–अतः लालजी के हृद्गत भावों को (जो मुख दर्शन के अनुभाव से प्रतीत भी हो रहे थे) और लाल के हृदय

में उत्पन्न लालसा तथा उनकी कुशलता को और (कि आपनी उत्कट लालसा को इस लिये छुपा रहे हैं कि प्रिया को पुनः श्रम देना और पुनः पुनः विलास के लिये आग्रह करना माने प्रिया के गौरव को और प्रभाव को अपनी इच्छा के लिये लघु कर देना) लाल जी की विदग्धता, निपुणता, और सन्नायकता को प्रिया तो समझ गई पर सखियों के आगे अपने प्रिय के गुण को प्रकट करने के लिये कि लाल जी कैसे रसिक शिरोमणि और चतुर चूडामणि हैं तथा मेरा स्थान उनके हृदय में कैसा है इसको स्पष्ट करने के लिये रहस्य का उद्घाटन करना चाहती हैं और 'स्फुटं तु किमशक्य विचार परोऽसि' ऐसा निश्चय करती हैं कि लाल किस लिये किस बात को अशक्य (जो पूरी न हो सके) समझ कर विचारों में पड़े हो कहो तो तुम्हारे लिये, तुम्हारी प्रसन्नताके लिये कुछ भी अशक्य कभी भी नहीं है— 'प्राणाधिक सर्वस्व'—प्राणों को भी अनुप्राणित करने वाले प्राण स्पन्दन स्वरूप, मेरे जीवन में सर्वस्व सब कुछ तुमही हो, राधा रूप में श्रीकृष्ण तुमही तो हो, तुम्हारे रूप में राधा ही तो है फिर तुम्हारे लिये, राधा द्वारा अशक्य ? कहो, हृदय की बात जो हृदय में छुपाए बैठे हो जिसके लिये तुमने कुछ भी छिपा नहीं रखा ऐसे निज-जन से छुपाना, इसी लिये खेद है बात कह कर खेद प्रकट करती हैं और लालजी की अनन्य चित्तता पर अनुकम्पा, कृपा सजीव हो रही है (कृपा में सर्वस्व अर्पण किया जाता है और दया में कुछ दिया जाता है दयालु अपनी सम्पत्ति में से कुछ देता है पर कृपालु सर्वस्व दे डालता है, अनुकम्पा तो कृपालुता से भी अधिक है) असन्तोष यह कि मैं, मेरे प्राणाधिक को तृप्त न कर पायी मेरा प्रियतम अतृप्त है, दान, देनेकी त्वरा, विस्मय यह कि इनकी अतृप्ति परम सुखप्रद है

यह अपूर्व आनन्द का विषय है (प्रेम में अतृप्ति ही, निस्सीमता ही मुख्य स्वरूप लक्षण है) आमन्त्रण, अपनी ओर से इच्छा प्रदर्शन (यह तो मेरी इच्छा पूर्ण करने को मेरा प्रस्ताव है) इन सभी भावों के साथ 'चलत्पदगतिं' बढ़ने वाले थिरकने वाले, पैरों की गति विधि (अनिर्वचनीय) जिस पद गति की लाल जी मन ही मन अनेकानेक प्रकार से प्रशंसा कर रहे हैं और सराहना करते हैं (हित सखी भी देख कर मन मन में प्रशंसा कर रही हैं) इस प्रकार से प्रिय सम्मिलन की त्वरा अभिव्यक्त करने वाली चाल की प्रशंसा लाल जी और सखीजन भूरि भूरि मुक्त कण्ठ से करते हैं प्रार्थना भी करते हैं कि ऐसे पद विन्यास का दर्शन हो, लाल जी भी इसी प्रकार की चलन की प्रार्थना मूक भाषा में कर रहे थे (चरणों पर दृष्टि का उद्देश्य भी यही था कि श्रीराधिका के चरण उस गति का दर्शन करावें जो लाल जी के लिये भी अनिर्वचनीय है लाल जी चरणों पर दृष्टि समर्पित करके चरणों से ही प्रार्थना कर रहे थे 'धनि धनि राधिका के चरण—श्याम जिनकी शरण' और जिनकों वन्दत नित्य ही छैल छबीले श्याम' चरणों पर दृष्टि समर्पित करके, नेत्रों से चरणों की पूजा, ध्यान, सन्मान कर रहे थे तथा प्रेम देव की उपासना भी बता रहे थे कि 'श्री राधा पददास्यमेव परमाऽभीष्टं मुदा धारयन्' कि ये ही चरन 'मधुपतेः स्मरतापमुग्रं निर्वापयत्परम शीतल' है) ये पद गति—रसोन्मत्त दशा में चलने वाले मराल (राज हंस) की गति को भी तिरष्कृत करती, इसी प्रेम में झूम झूम कर चलने वाले गज की गति को भी पराभूत करती कि—'विदधतिरुचि गर्व दुर्विधं' मराल गति और गज गमन के रुचि गर्व को दुर्विध करती ये गति—लाल जी की अभिलाषा पूर्ति के लिये मनोनीत वरदान रूपा थी, इस प्रकार की गति से (जैसे चातुर्मास में वेगवती नदी

सागर के प्रति अग्रसर होती) है लाडिली लाल को हृदय में सम्हालती हुई (ऐसी लाल की अद्भुत झाँकी को हृदय में बसाकर) चञ्चल कराञ्चल से पटाञ्चल को व्यवस्थित करती हुई अनिर्वचनीय वक्षस्थल की शोभा दिखाती हुई (पटाञ्चल को वक्षस्थल पर ढकने की कृपा से मानों हृदय में लाल जी की इस छवि को छुपाकर, उन्हें ये सब कुछ ज्ञात न होने देने के लिये, गोपनशील, मुग्धा नायिका, अपनी चातुर्य सीमा को गुप्त रख कर रस गोपन भी करती रहती हैं और नायक के सतत मनन और अध्ययन की भी सामिग्री बनी रहती हैं इस रस प्रकरण को रस गङ्गाधरकारनें प्रथम परिच्छेद में समझाया है विशेष ज्ञान के लिये वहीं पर देखना उचित है) नासा की मुक्ता (वेसर) हिल कर यह बता रही थी कि मैं गन्ध सूँघने वाली, तुलसी दासी की तरह, तुम्हारे लिये आतुर हूँ, कुण्डल-हिल कर बचन श्रवण की अभिलाषा व्यक्त कर रहे हैं, ग्रैवेयक, ग्रीवा का आभूषण-आकृष्ट रस मग्न होकर रति रण में कष्ट ग्रहण की सूचना देता है, अङ्गद, फड़क कर शुभ शकुन के साथ पुरुषायित (विपरीत वन्ध) का द्योतन करता है, भ्रून्नयन, विजय के गर्व से सज्जित मन्मथ धनुष बन रहा है तथा प्रणय कोप के स्थाई भाव को प्रकट कर रहा है—सस्मित स्मय भङ्गी तृप्ति की उत्तरावस्था सूचित करती है ये सब सहृदय सम्वेद्य—प्रौढा-नुभव सिद्ध भाव हैं जो लीला साक्षात्कार के समय दृष्टि पथ पर प्रस्फुरित होते हैं, ये सब देखते समय, माथा भूमने लगता है, रोमाञ्च हो जाते हैं, विस्मय से अवाक् होकर हृदय सराहना के प्रवाह में बहने लगता है तो इन्हीं सब कारणों से (भावोद्गर्भ कराने वाली) वह परम अभिरामा वामा श्रीराधा, प्रियतम की ओर क्रीडा कौतुक

करने को झपट कर अग्रसर होती है तो सर्वतो भावेन मनोहर झंकार (मणि मय नूपुर सिंजन से) की मधुर ध्वनि विशिष्ट श्रेष्ठ नूपुरों वाली श्री राधा प्रियतम के लिये परमानन्द की मूर्ति मती सिद्ध बन जाती है, बिना मांगे हुए ही परिपूर्ण भजन फल रूपा हो जाती हैं, ऐसी राधा का दर्शन, कब और कौन से दुर्लभ पुण्य परिपाक से बने हुए भाग्य के उदय होने पर होगा ? इन चरित्रों के दर्शन से उत्पन्न आनन्द में विभोर होकर विनिमेष दृष्टि से अर्थात् टक टकी लगाकर बिना पलक गिरी आखों से कब दर्शन करूँगा ?

अथवा, प्रिया के चरणों की अंगुलियों पर दृष्टि रखने वाले (इस भाव के सम्बन्ध में) पहले जिन नागर शिरोमणि (गमार नहीं नागरिक व्यवहार में कुशल, चतुर शिरोमणि) ने आलिंगन सुख की प्रार्थना की थी पर प्रिया ने नहीं नहीं ऐसा प्रत्युत्तर दिया था, तो फिर अधिक आग्रह करने से तो प्रिया नाराज हो जातीं इससे भयके कारण मुख से तो कुछ बोले नहीं केवल भावों से अपना आग्रह प्रकट किया ? और लालने मन में तर्क वितर्क भी किया कि ये मेरी 'याच-करी' अत्यन्त दीन भाव से की हुई मांग (आलिङ्गन की प्रार्थना) का परिणाम, दाता की ओर से दीनता के रूप में ही फल स्वरूप होकर मनः सङ्कोच प्रदान करेगा। मेरी तो शरण (गति अथवा पुरुषार्थ) श्री राधा के चरण ही हैं, अर्थात् मैं श्री राधा के चरणों की शरण हूं अपना सब कुछ इन्हीं पर न्योछावर कर रखा है तो मुझे आशा है कि इन्हीं की कृपा से सब कुछ (मनोकामना) पूरी होगी, इस भाव की पूर्ति में निस्संदेहता प्रकट करने वाली कृपा दृष्टि ही है जो लाल जी के मुख दर्शन के साथ ही स्वामिनी जी के नेत्रों में स्पष्ट है; 'अपत्र-पिष्णुं—इस शब्द का अर्थ, लज्जित या लज्जा रहित दोनों प्रकार का हो सकता है (अपगता, इतीरिता, अत्रपा, निर्लज्जता 'वष्टि भगुरि

रल्लोप:' अकार का लोप होने से लज्जित अर्थ भी सङ्गत है और अप-गता त्रपा ऐसा समास करने से निर्लज्ज भी अर्थ हो सकता है।) कि लालजी के हृदय में आलिङ्गन की उत्कृष्ट अभिलाषा हुई तो वह भावना भिन्न-भिन्न रेखाओं के और आकृतियों के रूप में मुख मण्डल पर प्रकट होने लगी तथा, चरणों पर दृष्टि पात और दैन्यादि प्रद-र्शक अनेकानेक क्रियाओंने लालजी को विवश कर दिया, यह लज्जा है कि भाव सङ्गोपन न कर सका तथा सखी जनों की अनेक प्रकार की हंसी के प्रति निर्लज्ज हो गये अथवा लालजी की सखियोंको, धृष्टता की हंसी उड़ानी पड़ी पर लालजी यह सब कुछ भूल गये कि मेरी दशा पर सखी समूह में मेरे प्रति कैसी मनोवृत्ति एवं धारणा उत्पन्न हो रही है। इस प्रकार के मुख चन्द को देख कर 'चलतपद गति' चरणों की अनिर्वचनीय गति से चलती हुई, इस वाम्य कौतुक से 'वाम्य कौतुकेन' यह भाव बताया है कि पैरों पर लाल जी की दृष्टि थी तथा पैरों की (चरणारविन्दों की शरण थे उन्ही के आश्रय से सफलता प्राप्त करना चाहते थे तो पैरों की) गति विधि भी चलायमान हो गई और पादस्पर्श (जो दृष्टि से नेत्रों से हो रहा था) रूप पूजन का फल—अभिलाषा पूर्ति के लिये, मूर्ति मान वरदान हो गया। अर्थात् पैरों का भजन पूजन किया तो पैर अभिलाषा पूर्ण कराने को ले आये।

अथवा, सदा सेवा में सावधान सखी जनों के सामने लालजी, की ऐसी निर्लज्ज अवस्था अनुचित है (श्री राधारानी की स्थिति और स्वरूप के सम्बन्ध में इतना ही जानना पर्य्याप्त है कि जो परात्पर पर-

तत्व 'ब्रह्म रुद्र शुक नारद भीष्म मुख्यैरालक्षितो न सहसा' ब्रह्म, शिव, शुक, नारदादिक के लिये भी सर्वथा अगम्य है वह श्रीराधिका के चरणरज की एक रेणु (कण) के आगे क्रीतदास जैसा है तो अखिल कोटि ब्रह्माण्डान्तर्गत महा-महा शक्तियों को सशक्त बनाने वाली 'हिमाद्रिजा पुलोमजा वरप्रदे' महा भाव रूपा निकुँजेश्वरी का गौरव वाणी के माध्यम से अथवा लेखनी द्वारा व्यक्त नहीं हो सकता, उनके सामने सर्वथा मर्यादा के अनुशासन में ही रहना पड़ता है, निभृत निकुंज में परम अन्तरंग सखी जनों के आगे, स्वभाव के कारण लाल जी शठ, धृष्ट नायक रूप प्रकट करें तो श्री प्रिया मुग्धा स्वरूप में अवस्थिति के कारण ध्यान न दे पर कुञ्ज, निकुँजादिक लीला में, जहां स्थानों के अनुरूप सखियों की नियुक्ति है वहां, स्थिति के प्रतिकूल चलने पर लाल जी सखियों द्वारा शासित रहते हैं तो 'प्रमत्त दुर्घट दास्याधिकार चिकीर्षो सखी समक्ष एवं गत लज्जतया स्थिति, इत्ययोग्यमिति अस्थान इति भाव' इस पंक्ति के द्वारा टीका कारने सब कुछ स्पष्ट कर दिया है कि—दासियां अपने अधिकार उत्तरदायित्व के प्रति सजग हैं उनके सामने प्रमत्तता दुर्घट है, अघट नहीं है प्रमत्तता की घटना घट तो जाती है पर अपवाद रूपसे, नगण्य दशामें, जिसका स्वरूप परिहास और मनोरंजन तक ही सीमित रहता है, किन्तु श्री प्रियाजी तो स्वभावत: 'मृदुता दयालुता कृपालुता की राशि हैं' इस लिये लाल जी के प्रति भी इस स्वभाव का उपयोग करती ही हैं, सखी समक्ष में दयालुतासे उस निर्लज्जतादिक धृष्टताको सहन कर लेतीं हैं सखी समझती हैं कि स्वामिनी मुग्धा हैं पर चतुर चूडामणि परम नागरी श्रीराधा,लालजी की स्थिति को पूर्ण रूपेण समझती

हैं कि यह सब कुछ अपराध नहीं है, परवशता है, परवश जन्य स्थिति है जिससे प्रिया का गौरव ही बढ़ता है कि लाल जी प्रिया के आगे बलात् ऐसी दशा में पड़ जाते हैं, प्रिया के आगे लाल की सिट्टी गुम हो जाती है अब गुप्ताऽवोधात्मा, अखण्ड ज्ञान, ज्ञान धन प्रिया मुख पर सुशोभित काले तिल को देख कर स्तब्ध हो जाते हैं जैसें कमल पर बैठा हुआ भ्रमर स्तब्ध रह जाता है। गत लज्जतया स्थिति, अर्थात् निर्लज्जता की स्थिति स्थान के विचार से अयोग्य अवश्य है पर लालजी भी तो निर्दोष हैं, इस बात को सखी नहीं समझती हैं और लाल को सावधान करने के लिये भ्रूभंग करती हैं कि प्रिया तत्क्षण इस बात को रोकने के लिये नूपुरों की झंकार कर देती हैं झंकार रूप में नूपुर ध्वनि सखियों को डाटती है कि तुम अभी लाल जो की नहीं समझ रही हो ' तदानीम् भङ्गया झङ्कार' उस समय की भाव भङ्गी के कारण झंकार ध्वनि हुई, जिससे सखियों की कुटिल भ्रकुटि सम हो गई और लाल को आश्वासन प्राप्त हुआ तो आशाने विवशता दूर करदी। इस प्रकार लाल का सन्मान हो गया, सखियों को मुँह से कुछ कहना न पड़ा, यह सब कुछ सहृदय गम्य वस्तुस्थिति है। सहृदय माने 'बाहिरी रसिक नहीं श्री राधिका रति निकुंज मण्डली का कृपा पात्र है इसके अतिरिक्त तो यह रस 'सबके मननि अगम्य है श्री राधिका रति निकुञ्ज मण्डली के पारस्परिक सम्भाषण में इन सब रहस्यों का स्पष्टी करण होता रहता है (एक बार यही प्रश्न हुआ कि इस नूपुर झंकार में कौनसा संकेत निहित है जिससे प्रिया के मुख पर मन्द मुसकान आजाती है तब अन्तरङ्ग वर्ग ने बताया कि एक बार श्री प्रियाजी अपने भवन में माता पिता भाई बन्धु आदिक गुरुजनों के साथ, बड़ीनिपुणता के साथ, गृह कार्य

कर रही थीं, भोजन आदिक आवश्यक कार्य चल रहा था, श्री राधा परोस रही थीं माता पिता सब भोजन कर रहे थे, इसी समय अभि-सरण निश्चित था, पर राधा ने सोचा लालजी आवेंगे तो प्रतीक्षा में रहेंगे,जायेंगे नहीं,इसी कारण यहां गृह कार्य ध्यान से सम्भाल रही थीं, लाल जी को प्रतिक्षा करते करते बहुत समय हो गया तो काल यापन करना असह्य हो गया और श्रीराधा के महल के पास की एक कुञ्ज में प्रवेश किया और जोर से वह कुञ्ज हिलादी जिससे उसमें बैठे हुए पक्षी हड़बड़ा कर उड़े, उसका कोलाहल सुनते ही राधा समझ गई कि नाराज होकर लालजी इस कुञ्ज में पधारे हैं और नाराज पक्षियों पर प्रकट की है श्रीराधा का प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग शिथिल हो गया, प्रिय के आगमन से आनन्द हुआ जिससे प्रसन्नता के कारणी अधरों पर मन्द मुसकान दौड़ गई कि कितनी त्वरा है कितने नागर हैं मुझे किस प्रकार से संकेत दिया है कि मैं आ गया हूँ प्रतीक्षा असह्य हो गई है, तुमने इतनी देर क्यों की है क्या ? गृह कार्य ही प्रधान है, नहीं जानती हो—प्रेमी को एक पल की प्रतीक्षा में प्रलय प्रतीत होता है,लाल जी के हृद्गत रोष की अभिव्यक्ति से प्रिया की भ्रकुटि धनुषा-कार हो गई और चलदी पर चाल में भी रोष था कि 'गुरुजनों की सेवा से हटा कर मुझे विवश करके इस प्रकार अधीर होकर आक-र्षण करना, क्या ? ठीक है ये सब भाव लिये हुए 'चरितैः सस्मित भ्रूभंग पाद चलन, वैदग्ध्य रूपैरभितो मनो हरन्ती' श्री राधा चली है। यह रहस्य सखियों द्वारा एक श्लोक के रूप में गाया जाता है पर इस भाव को बहिरङ्ग सखि नहीं समझ पाती हैं श्लोक का प्राकृत रूप है—'वाणीर कुण्ड गुड्डीन श्रउणि कोलाहलं श्रृण्वन्तियेऽधर कम्प मान ०' इत्यादि इसका संस्कृत अनुवाद इस प्रकार है 'वाणीर कुँज उड्डाण शकुनि कोलाहलं श्रृण्वन्त्या, गृह कर्म व्यापृताया वद्ध्वा

सीदन्ति अङ्गानि, (प्रियाजी इस समय इसी बात को बताती हुई चली हैं) सस्मित, कुछ कुछ मन्द मुसकान करती हैं कि मैं इस रहस्य को समझ रही हूँ सखी क्या जाने (कै जानें वृषभानु नन्दनी कै वह कान्हर कारो–प्रीत की रीति कौ पैंड़ो ही न्यारौ) भ्रूभङ्ग इस लिये कि तुम्हारा हठ मुझे विवश कर देता है, तुम सदा इसी तरह से अपनी अड़ा देते हो, पाद चलन क्रिया में विदग्धता यह है कि, पूर्व लीला का संकेत है, वर्तमान स्थिति के लिये आश्वासन है और प्रियतम को यह भी बता रही हैं कि तुम मेरे आधीन नहीं हो आधीन तो मैं तुम्हारे हूँ इस प्रकार चलत्पदगति से अपने प्रेम को अभिव्यक्त कर रही हैं और चरितै: चरित्र से अत्यन्त अभिरामा हैं कि सर्वथा गौरवास्पद तुम्हारे लिये सब कुछ गौरव त्याग बैठी हूँ तो मनो हरंती लाल के मन को स्वायत्त करने वाली।

पादांगुली–कहने से चरणों का गौरव प्रकट होता है और लाल की दैन्यता प्रकट है, यदि चरणों को अधिक महत्व न दिया जाय तो जैसे समस्त अङ्गों पर दृष्टि जाय वैसे ही अगुलियों पर भी दृष्टि, ये सब दूर से दीखे निकट आने पर तो संयोग जन्य अनिर्वचनीय सुख में 'नान्तरं वेद न वाह्यम्' सुषुप्ति काल में संयोग सुख अनिर्वचनीय होता है कारण उस समय, वोद्धा, सत्ता, ज्ञाता, तद्रूप रहता है, अनुभव तो जाग्रत अवस्था में होता है 'सुखमहमस्वाप्स्वं' निकट में संयोग के कारण अनुभव और अभिलाषा अनिर्वचनीय कोटि में रहती है 'सन्ने यदिन्द्रिय गणेऽहमिव प्रसुप्ते कूटस्थ आशयमृते तदनु स्मृतिर्नं' इस भागवत के श्लोक में कूटस्थ आशय का अर्थ उस देह 'संयोग कायिक 'अनिर्वचनीय सुख है' आशेरतेरनिर्वचनीया अनुभूतिर्यस्मिन्निति कूटस्थ आशय:' इसी कारण टीकाकार मानते हैं कि 'नैकटये तु

नैवं अभिलाषा व्यंजने शक्तिः' और दूर होने के कारण प्रिया मुख चन्द्र दर्शन में देश गत अन्तराय भी सहन नहीं कर सकती, कारण यहाँ तो सर्वथा संयोगात्मक स्वकीयात्व पक्ष है, दूरी माने विप्रयोग सुख, परकीया भाव, इसमें आपत्ति सर्वथा स्पष्ट है कि परकीया और विप्रयोगावस्था के उपासक यह स्पष्ट कहते हैं कि विप्रयोग सूर्यवत् है जैसे सूर्य ताप और प्रकाश देता है वैसे ही विप्र योग, विरह ताप और गुणों की स्फूर्ति रूप प्रकाश देता है तभी तो वियोग काल में गोपियों ने गोपी गीत द्वारा 'अपने प्रियतम को अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक और समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा का द्दष्टा कहा है' निभृत निकुञ्ज मण्डली इस प्रकट लीला को और उसके विदग्ध नायक की अपेक्षा श्रेष्ठ तम 'धीर ललित, प्रायशः प्रेयसी वश नायक को प्राथमिकता देती हैं और सर्वाराध्या राधा की अपेक्षा धीर ललित नायक के उपयुक्त मुग्धा नायिका श्रीराधा को ही परमाराध्या मानती हैं। वियोग काल में प्रिया प्रियतम दौनों में अनुभूति और ज्ञान मानना पड़ेगा तो 'जाकी भ्रू विलास वश-पशुरिव' स्थिति रह न सकेगी अतः रसावेश में परमाद्भुत ज्ञान' राधाचरण विलोडित रुचिर शिखण्ड प्रियतम ' धीर ललित और सर्वथा सहजस्थिता मुग्धा स्वकीया कारण श्रुतिने इस प्रकार की स्थिति विवाहित पत्नी की बताई है 'तद्यथा प्रियया भार्यया सम्परिष्वक्तो नान्तरं वेद न वाह्यं' यहाँ भार्या शब्द से परकीया श्रुति सम्मत नहीं है तो जैसे विप्रयोग का अनुभव करने के लिये संयोग में ही उसकी कल्पना कर लेते हैं (अंकस्थितेपि दयिते किमपि प्रलापं) वैसे ही अभिलाषाओं का अध्ययन करने को दूरी की कल्पना है कारण (नच मुख चन्द्रावलोकनान्तरायं सोढुं शक्तः) अन्तराय, वियोग तो सहन हो नहीं सकता और बिना अन्त राय के अभिलाषा व्यक्त नहीं होती है इस लिये अन्तराय, दूरी वास्तव में नहीं है कल्पित ही है।

तथा चरणों से चलने में भी लाल जी अपने ऊपर बड़ी कृपा मानेंगे, कारण लाल की दृष्टि चरणों पर ही है तो प्रिया का हृदय लाल की इस अभिलाषा पर आसक्त है,तो अनुग्रह करने वाले स्वभाव से विवश होकर स्वयं प्रिया ललित गति से प्रियतम की ओर आई यही टीकाकारका भाव है अन्य भाव आपत्तियों के कारण स्वीकृत नहीं है। (अन्य टीकाकारों ने भिन्न-भिन्न भाव व्यक्त किये हैं जैसे कृपालाल जी ने प्रिया की दृष्टि अपने चरणों पर ही मानी है ये मान की स्थिति है पर मुख चन्द्र दर्शन से मान भङ्ग हो गया कि प्रियाने अपनी नखमणि में ही प्रिय का दर्शन किया है। अन्य मत यह है कि लाल जी को अपने चरणों की अगुलियों के नखों में प्रतिविम्बित प्रिया के रूप पर दृष्टि है, इस भाव में तो प्रियाका गुरुत्व लघु होता है, और रसकुल्याकारने जो स्वतंत्र पक्ष माना है कि प्रिया की अंगुलियों पर लाल जी की दृष्टि है यह सर्व श्रेष्ठ प्रतीत होता है। उसका इशारा टीकाकारने प्रथम ही किया है।

लीला माधुरी

'झङ्कार नूपुरवतीम्'

चार सौ वर्ष की बात है कि गिरिराज श्री गोवर्द्धन की परिक्रमा में गोविन्द कुण्ड पर एक दिन स्वामी श्रीहरिदास जी महाराज कीगुसांई जी श्रीविठ्ठलनाथजी के शिष्य श्री गोविन्द स्वामी से भेट हुई (मिलना हुआ) श्री स्वामी जी महाराज ने श्री गोविन्द स्वामी से पूछा कि आज कल आपकी दिनचर्या क्या है कैसे दिन व्यतीत हो रहा है, गोविन्द स्वामी ने कहा कि श्री गोकुल की रमण रेती में बैठे

रहते हैं श्री स्वामी जी ने फिर पूछा कि वहां क्या करते रहते हैं तब गोविन्द स्वामी ने कहा कि वहां पद गाते रहते हैं, फिर स्वामीजी ने पूछा कि आप अकेले ही रहते हैं या और भी आपके पास वहां रहता है ।

गोविन्द स्वामी ने कहा कि वहां श्री श्याम सुन्दर भी आजाते हैं श्री स्वामी जी ने पूछा श्याम सुन्दर आपका गाना सुनते ही हैं कि वे भी गाते हैं। गोविन्द स्वामी ने कहा कि कभी श्याम सुन्दर भी गा देते हैं।

फिर श्री स्वामी जी ने पूछा कि श्याम सुन्दर का गाना कैसा है और क्या विशेषता है गोविन्द स्वामी कहने लगे कि गाने की राग तो वही है जिसको हम लोग गाते हैं किन्तु उनका कण्ठ ऐसा है कि वैसा कण्ठ किसी का है नहीं अर्थात् गाने में सुन्दरता और मधुरता कहीं है ही नहीं गोविन्द स्वामी की इस बात को सुन कर श्री हरिदास जी महाराज कुछ मुसकराये उनकी मुस्कराहट को देख कर गोविन्द स्व मी को बड़ा आश्चर्य हुआ और श्री स्वामी जी से पूछ बैठे कि स्वामी जी महाराज आप मुस्कराये क्यों तब श्री स्वामी जी बोले कि आपने तो गाने की मधुरता की सीमा ही कह दी आपके समझ में तो यह है कि श्यामसुन्दर के कण्ठ की मधुरता से अन्य किसी की मधुरता ही नहीं सर्वोत्तम मधुरता तो श्री श्यामसुन्दर के गाने में ही है। तब गोविन्द स्वामी बोले कि स्वामी जी क्या श्यामसुन्दर से भी बढ़ कर मधुरतम कोई गा सकता है मैं तो यही समझता हूँ कि इन से अधिक माधुर्य तीनों लोक में किसी का भी नहीं है इतना सुन कर श्री स्वामी जी बोले कि आप जिनके गाने की माधुर्य्यता की बड़ाई करतें हो वें हा श्री श्यामसुन्दर श्री स्वामिनी जी (श्री राधा) के गानेको सुनकर मोहित हो जाते हैं अर्थात् श्री श्याम सुन्दर गा के

सामने अपने गायन के माधुर्य को कुछ भी नहीं मानकर अपने आपको न्योछावर करते हैं ।

यह श्री स्वामी जी की बात सुनकर गोविन्द स्वामी हाथ जोड़कर विनती पूर्वक बोले कि हे प्रभो कृपाकर मुझको श्री स्वामिनी जी के अनुपम गान सुनाने की कृपा करो और मुझको श्रीस्वामिनी जी (राधाजी) के पास ले चलने का अनुग्रह करो ।

तब श्री हरिदास स्वामी जी कहने लगे कि हे गोविन्द स्वामी आप अपने गुरु श्री विठ्ठलनाथ जी महाराज से प्रार्थना करो वे सर्व समर्थ हैं वे कृपा करें तो आपको स्वामिनो श्री राधाजी के पास ले जा सकते हैं ।

स्वामी जी महाराज के कहने के अनुसार श्री विठ्ठल प्रभु से प्रार्थना गोविन्द स्वामी ने की कि कृपानाथ आप इस दास पर अनुग्रह करें तब श्री गुसांई विठ्ठलनाथ जी ने कहा कि गोविन्द स्वामी श्री स्वामिनी के दर्शन श्री गोपियों के अतिरिक्त होना अति ही कठिन है गोविन्द स्वामी श्री गुसांईजी के चरणों में गिर पड़े और प्रार्थना की कि हे प्रभो इस दास पर कृपा करें और इस दास की प्रार्थना पूर्ण करो तब श्री गुसांईजी ने आज्ञा की कि हे गोविन्द शरद पूर्णिमा की रात्रि में मेरे साथ चलना प्रभु की इच्छा होगी तो दर्शन दे देंगे । शरद रात्रि में मेरे साथ चुपचाप चलना तुम्हारी अभिलाषा को श्रीस्वामिनी जी पूर्ण करेंगी । आश्विन शुक्ल पक्ष पूर्णिमा के दिन चार घड़ी रात्रि व्यतीत हो जाने के बाद गुसांईजी श्रीविठ्ठलनाथ जी महाराज रात्रि के १२ बजे बाद गोकुल से निकलकर श्री वृन्दावन के लिये चलने लगे और गोविन्द स्वामी को साथ ले लिया । मार्ग में चलते हुए श्रीगुसांईजीने गोविन्द स्वामीको समझाया कि तुम अपनी भावना से गोपी भाव धारण कर लो (गोप्यैक भावाश्रया श्री स्वामी जी हैं) ।

गोपी भाव बिना श्रीराधा प्यारी की निकुञ्ज लीला के दर्शन असम्भव हैं गोविन्दस्वामी सखा भाव को भूलकर गोपी भावापन्न हो श्री गुसाईं जी (अपने गुरु) के पीछे पीछे चलने लगे यमुनाजी के तीर से आ रहे हैं मथुरा से आगे वृन्दावन की ओर चलने लगे मार्ग में विविध वृक्षलताओं के कुञ्ज यमुना घाट और विविध प्रकार के दृश्य दीखने लगे अलौकिक सौंदर्य और माधुर्य लीला पूर्ण दृश्य देखते-देखते वंशीवट के पास पहुँचे वहाँ वंशीवट के नीचे अनेक सखियाँ वस्त्रालंकार से सुसज्जित होकर खड़ी हैं और नाना प्रकार के नृत्य कला उचित बाजे बजा रही हैं बीच में श्रीकृष्ण प्रियाजी के सामने नृत्य करके श्रीराधा प्यारीजी को रिझा रहे हैं श्रीराधा प्यारी बीच में चुपचाप खड़ी-खड़ी देख रही हैं अद्‌भुत नृत्य विलास श्यामसुन्दर दिखा रहे हैं नृत्य करते-करते जब तिरप गति लेकर अद्‌भुत गति से मुड़े तब श्रीराधा प्यारी हाथ को नचाती हुई (हाथ मोड़ती हुई) उसी तिरप छटा पर रीझकर नूपुर की झङ्कार पूर्वक इतना ही मुख से बोली कि वाह, प्यारी का अदा पूर्वक वाह शब्द का उच्चारण सुनकर गोविंदस्वामी देहानुसंधान रहित होकर गिर पड़े और प्रियाजी के मुखारविन्द से निकले हुए एकमात्र वाह शब्द के माधुर्य को सुनते ही प्रेम समाधी में ग्रस्त हो गोविन्दस्वामी गिर पड़े ३ घंटे तक बेहोश पड़े रहे बाद में जब चेत आया तब श्री गुसाईंजी ने उनको सम्भाल कर गोविन्दस्वामी को अपने साथ गोकुल ले आये श्रीगुसांई जी विठ्ठलेश प्रभु ने गोविन्दस्वामी को आज्ञा कीनी कि प्रिया-प्रीतम श्रीहरिदास जी की गान कला को देखकर बहुत प्रसन्न हैं और कभी-कभी स्वामी श्रीहरिदास जी प्रिया-प्रीतम को अपना गान सुनाते-सुनाते ताल चूक जाते हैं तब श्रीप्रिया जी उनको सम्भालती हैं और आप स्वयं ताल दे देती हैं ऐसे परम रसिक शिरो-मणि श्री हरिदास महाभाग लीला परिकर के स्वरूप हैं लीला

के प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त करके यशको गाते हैं श्री स्वामी जी अपने पदों में श्री हरिदास के स्वामी श्यामा कुञ्ज विहारी यह छाप लगाते हैं इस चिन्मय वृन्दावन में आज भी मधुर लीला श्री राधा कृष्ण की हो रही है जिन पर प्रिया जी कृपा करें उन को आज भी दर्शन होता है।

दैवी जीवों पर कृपा करने के लिये अवतरित श्रीमद्वल्लभनन्दन को वैष्णव जन श्री मदाचार्य महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य का कोटिशः प्रणतयः गुण-गान स्तुति मंगल स्मरण करते हैं।

चिन्ता संतान हन्तारो यत्पादाम्बुजरेणवः ।
स्वीयानान्तान्निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥

राग भैरव

प्रात समय उठि करिये श्री लक्ष्मण सुत गान।
प्रकट भये श्री वल्लभप्रभु देत भक्ति का दान।
श्री विट्ठलेश महाप्रभु रूप के निधान।
गिरिधर श्री गिरिधर उदय भयो भान।
श्री गोविन्द आनन्द कन्द कहा वरनों गुण गान।
श्री बाल कृष्ण बाल केलि रूपहि सुहान।
श्री गोकुल नाथ प्रकट कियो मारग बखान।
श्री रघुनाथ लाल देख मन्मथ ही लजान।
श्री यदुनाथ महाप्रभु पूरण भगवान्।
श्री घनश्याम पूरण काम पोथी में ध्यान।
पांडु रङ्ग विठ्ठलेश करत वेद गान।
परमानन्द निरख लीला थके सुर विमान।

(परमानन्ददास जी)

यदनुग्रहतो जन्तु सर्व दुःखाति गो भवेत् ।
तमहं सर्वदा वन्दे श्री मद्वल्लभनन्दनम् ।

श्री राधा महारानी की निकुञ्ज लीला श्रवण भी बिना अधिकार निषेध की आज्ञा:—

सम्बत् १९६७ दिसम्बर तारीख १६ की एक सत्य घटना है कि उक्त दिसम्बर मास में आगरा नगर (उत्तर प्रदेश) में कुछ भक्त पुरुषों ने श्री मद्भागवत जी की २१ दिन की कथा का आयोजन कर के वृन्दावन सेवा कुञ्ज मोहल्ला निवासी पण्डित श्रीकिशोरी रमण जी भागवती कथा व्यास जी महाराज को बुलाया इन्होंने २१ दिन की कथा का आरम्भ किया इस कथा को श्रवण करने वाले श्रोता दो सौ के लग-भग थे। दशम स्कंध की कथा आरंभ हुई और रास पञ्चाध्यायी की कथा हो रही थी उस रास की कथा को कहते हुए 'केश प्रसाधनै कामिन्या:' कामिना इस श्लोक के प्रसंग में उक्त पण्डित जी वृन्दावन के रसिक महात्माओं की रस युक्त गम्भीर मधुर रस भरी वाणी का वर्णन करने लगे। श्रीकृष्णचन्द्र ने अपनी प्यारी श्री राधिका जी की वेणी की रचना पुष्पों की रची सुन्दर कुसंभी रंग की कंचुकी के श्रृङ्गार का गहरा मधुर वर्णन कर रहे थे कि इन पण्डित जी श्री किशोरीरमण जी के गाल पर अज्ञात रूप से एक जोर से चपेट किसीने लगाई थप्पड़ की आवाज सब ही श्रोताओं को सुनाई दी किन्तु मारने वाला कोई व्यक्ति नहीं दीखा पण्डित जी का मुँह लाल हो गया थप्पड़की वेदना का अनुभव हुआ कथा बन्द हो गई। पण्डित जो चिन्तित हो अपने मुकाम पर सो रहे तो निद्रा सी लग गई एक स्वप्न हुआ स्वप्न में यह आवाज सुनाई दी कि विना अधिकारियों को यह रहस्य की कथा कहने का तुझ को क्या अधिकार है खबरदार विना अधिकारी को ऐसी कथा सुनाना अनिष्ट होगा, यह सुन कर पण्डित जी ने तब से वृन्दावन के बाहिर रस युक्त निकुञ्ज लीला कहना ही छोड़ दिया।

॥ चतुर्थ प्रकरण समाप्त हुआ ॥